दुख-सुख के सफर में

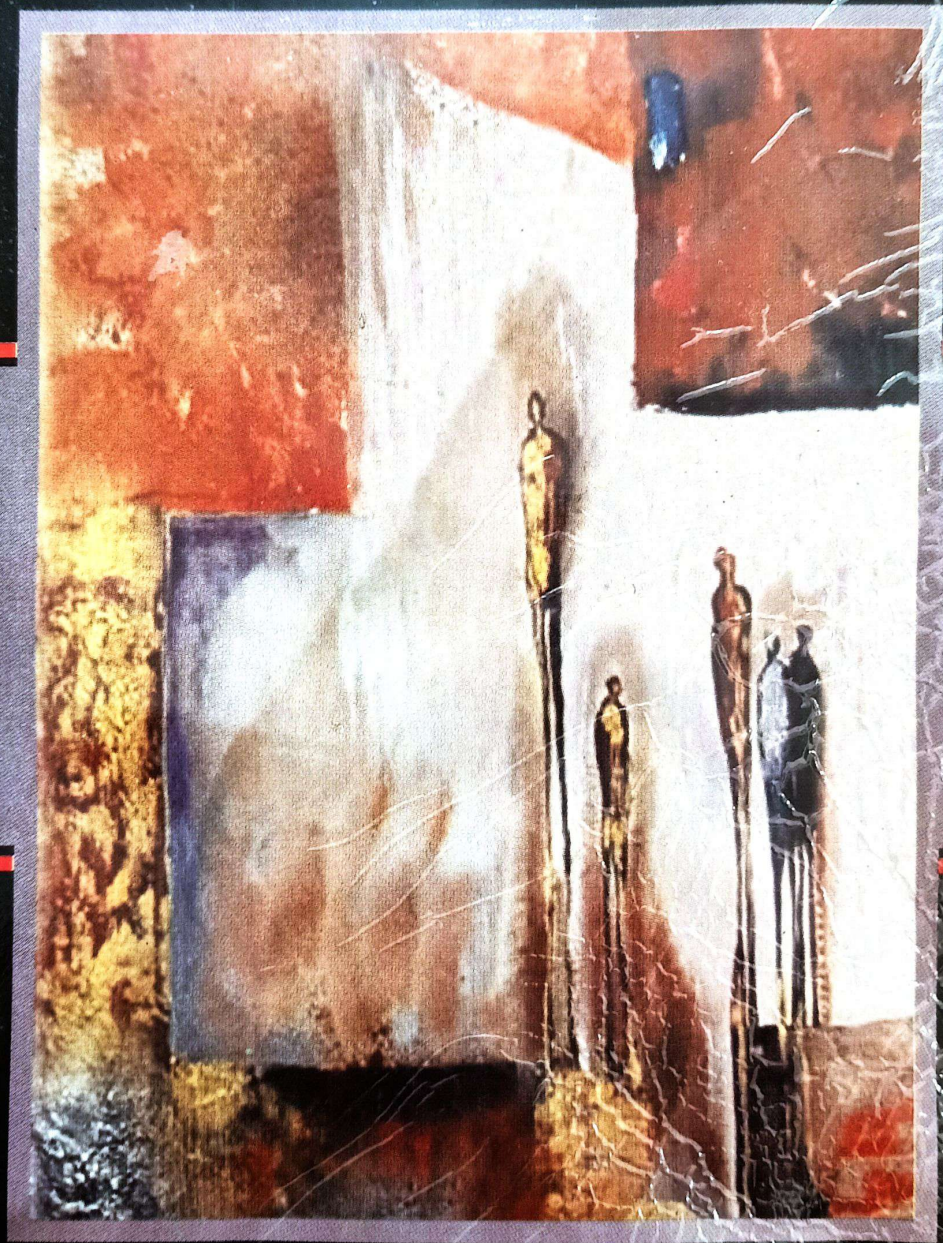

डॉ. उमेश कुमार सिंह

दुख-सुख के सफर में

डॉ. उमेश कुमार सिंह

साहित्य सदन
गाजियाबाद-201102

I.S.B.N.: 978-81-89482-98-4
© डॉ. उमेश कुमार सिंह
₹ : 350.00
प्रथम संस्करण : 2014

प्रकाशक :
साहित्य संस्थान
E-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी (निकट सत्यम् सिनेमा),
लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद-201102
मोबाइल : 09717507223
E-mail : fatehchand058@gmail.com

शब्द संयोजक : विशाल कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, दिल्ली-91
मुद्रक : रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

Dukh-Sukh ke Safar mein by *Dr. Umesh Kumar Singh*

भूमिका

दलित जीवन का एक और सच

एक सच्चे आत्मकथाकार को गंभीर आत्ममंथन और द्वंद्व की अदम्य प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। त्रासद मैं इसलिए नहीं कहूंगा कि हमारी पिछली तमाम पीढ़ियां सह गईं, पर बिना कहे ही दुनिया से गईं, हमें कम-से-कम सहने का दुख और कहने का सुख मिला है। लेखक को तय करना है कि वह क्या-क्या न लिखे? सच न लिखे तो एक तो उसका अपना लेखक मन असंतुष्ट रहेगा और पाठक तो नीर, क्षीर, विवेक संपन्न होता ही है, उस दाई से पेट नहीं छिपता। लेखक झूठ भी लिखे तो पाठक सच तक पहुंच जाता है।

दूसरा क्या सच सुनने, देखने और पढ़ने की किसी की तैयारी है? सच में सब कुछ अच्छा-अच्छा नहीं है। व्यक्ति का सच समाज के बड़े हिस्से का सैंपल सच है।

डॉ. उमेश कुमार ने अपनी पांडुलिपि पकड़ाते हुए पहला वाक्य कहा, ''भाई साहब, आपका रोना-धोना तो हो गया, अब आप ये लो, मेरी आत्मकथा पढ़ो और इसे बदतर या बेहतर जैसा चाहो सिद्ध करो'।

मुझे ये दोनों ही बातें परेशान करने वाली थीं, परंतु मैंने अंग्रेजी का एक शब्द पैसैंस का मतलब पढ़ो और सहो लगा रखा है।

डॉ. उमेश कुमार से मेरी मुलाकात 1992-93 में जे.एन.यू. के एक छात्रावास में हुई थी। रिसर्च करते-करते विदेश चले गए और यदा-कदा वहां से फोन पर हालचाल पूछते रहे, परंतु एक बदमाशी पूरी तरह करते रहे। मैंने पूछा! 'भैया जरा मुझे भी बताओ, मैं क्या करूं? दो-चार साल में भी बाहर रहकर आऊं,' सो बताते नहीं थे। अमरीका में जब विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ तो तारीख गुजार जाने के बाद ही मुझे खबर दी। हालांकि मैं जा नहीं सकता था, क्योंकि एडवांस स्टडी में फैलो को विश्व के किसी भी देश में सेमिनार के लिए जाने का प्रावधान नहीं था। खैर, वे वर्धा में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय में नौकरी पा ली। गृहस्थी के खूंटे पर भी लौट आए। परिवार संभाल रहे हैं। कुछ किताबें उनकी आई हैं, मुझे

कथाकार राजेंद्र यादव के हंस के दलित विशेषांक (अगस्त, 2004) में अतिथि संपादक बनने का मौका मिला था, तब मैंने उमेश से कहानी लिखवाई थी। मुझे खुशी हुई कि डॉ. उमेश कुमार सिंह ने पूरा कहानी-संग्रह लिखा।

अब मेरे हाथों में उनकी आत्मकथा की पांडुलिपि है। मेरा उनके प्रकाशक से विनम्र आग्रह है कि वे इसका प्रूफ ठीक से दिखवाएं और इसे छापें, जितनी अधिक आत्मकथात्मक रचनाएं आएंगी उतना ही समाज की स्थिति समझने में मदद मिलेगी।

मुझे यहां उमेश के मजदूर पिता, निरक्षर मां, कच्चा घर, गरीबी और बीमारी भी एक पृष्ठभूमि जानने को मिली। आत्मकथा की अतीत ही वर्तमान होता है, वर्तमान से भविष्य तय होता है। बालपन का कुपोषण अस्वस्थता का असर जीवन भर रहता है तो यह कहना कि दलितों को गैर दलितों के पूर्वजों के अन्याय, जुल्म-ज्यादतियों की रोशनी में आज के सवर्णों को नहीं देखना चाहिए, सही आग्रह नहीं है। जबकि उनकी ओर से कहीं भी प्रायश्चित नहीं, कहीं भी क्षतिपूर्ति करने की इच्छा नहीं, क्षमा मांगकर मानवीय बनने की सहृदयता नहीं। समता, बंधुता और स्वतंत्रता में साझादारी देने की लोकतांत्रिक नैतिकता नहीं? बिना साहित्य अकादमी, सम्मान प्रोत्साहन, बिना ज्ञानपीठ, बिना सरस्वती (बिड़ला) सम्मान और बिना किसी सरकारी सहायता के हिंदी दलित साहित्य की सेवा का सिलसिला जारी है। सौ स्वयं भू सम्मानित द्विज लेखक पर एक गैर-सम्मानित दलित भारी है।

'पूना पैक्ट' के बाद जैसे दलित को उसका नेता (राजनीति में) नहीं मिलता, उसका आरक्षण भी उसके काम का नहीं है, चूंकि आरक्षित क्षेत्र का नेता भी दलितों से ज्यादा गैर-दलितों के मतों पर निर्भर होता है। वह अपने मतदाता के प्रति वफादार रहते हुए दलितों का कोई काम नहीं करता तो हमने आश्चर्य चकित करने वाली कोई बात नहीं है। यह ऐतिहासिक त्रासदी है।

अकादमी सम्मान में दलित का कोई हिस्सा पहले से निर्धारित नहीं है। उसके अधिकारियों को साठ साल से आज तक सरकार का कोई दिशा-निर्देश दलित साहित्यकारों की हिस्सेदारी को लेकर नहीं है तो अकादमी के गैर दलित अध्यक्ष दलित की ओर क्यों देखेंगे, उनकी मजबूरी क्या है? बिना मजबूर हुए स्वेच्छ या किस द्विज ने दलित की सेवा को सम्मान दिया है?

दलित लेखक संगठित होकर अगर मजबूरी पैदा कर सकते हैं तो सरकारी बजट के अपने हिस्से का अकादमी सम्मान पा सकते हैं। स्वेच्छ या हिस्सेदारी देना गैर ब्राह्मणी मेधा का भी समान ब्राह्मण अध्यक्षों को स्वभाव संस्कार से मेल नहीं

खाता। यह कभी नहीं होगा कि गैर-दलित का पेट भर जाए, तब दलितों की बारी आए। उनका पेट भी फट जाए, पर दलित का हिस्से खाना नहीं छोड़ेगा।

अगर देश में आरक्षित क्षेत्र निश्चित नहीं किए गए होते तो संसद और विधान सभाओं में एक भी दलित प्रतिनिधि नहीं आया होता। उसी तरह अगर आई.ए.एस., आई.पी.एस., पी.सी.एस. आदि प्रशासनिक पद आरक्षित नहीं किए होते तो दलितों को अधिकारी बनाना तो दूर उन्हें दफ्तरी या चौकीदार भी नियुक्त नहीं किया होता। जिन्हे प्रमाणों की अपेक्षा है, वे मीडिया संस्थानों, फिल्मों में, निजी यूनिवर्सिटी कॉलेज, इंग्लिश मीडियम तथाकथित इंटरनेशनल शिक्षा संस्थानों में दलित स्त्रियों की भागीदारी देख लें।

इसलिए दलित साहित्य की गुणवत्ता, लोककल्याण की भावना या समाज प्रबोधन का प्रश्न नहीं है। प्रश्न है शिक्षा साहित्य-पुरस्कारों के लोकतंत्रीकरण का। सामाजिक विविधता से उत्पन्न वैचारिक रचनात्मक विविधता को सम्मानित करने का।

एक सर्वे के मुताबिक पुरस्कृत कृतियों के पाठकों का गहरा अकाल है? प्रकाशक रंगं-बिरंगे चित्रों के साथ उन्हें बिना पाठकीय मांग के पुस्तकालयों में जोड़-जुगाड़ से खपा रहे हैं। जाति-वर्चस्व के बल पर बलात् पाठ्यक्रम में पढ़वा रहे हैं।

इसके उलट हिंदी में दलित साहित्य की मांग दिन दूनी, रात चौगुनी बड़ी है। कभी इसे केवल दलित प्रकाशक दलितों में ही बांटते थे। अब यह जाति, क्षेत्र और यहां तक कि देश की सीमा से भी पार जा चुका है। अमेरिका, कनाडा, जर्मन आदि अनेक देशों में पढ़ाया जा रहा है। इस होनहार दलित लेखक उमेश कुमार सिंह ने अपने जन्म का वृत्तांत बड़ी ही रोचक शैली में लिखा है—

"इस बेहद खूबसूरत गांव में स्वतन्त्रता के ठीक सोलह वर्ष बाद सन् उन्नीस सौ बासठ में मेरा जन्म हुआ। वह शरद ऋतु का सबसे ठंडा महीना था, जब ठंड का प्रकोप अपनी चरम सीमा पार कर रहा होता है, तब भयंकर कड़ाके की सर्दी, बड़े-बूढ़ों और बच्चों को लील रही होती है। ऐसी बर्फानी हवाओं की शरद ऋतु में हड्डी को गलाने और दिल को दहलाने वाले ठंडे मौसम के बीच मेरा इस दुनिया में आगमन हुआ। वह हमारे परिवार के लोगों के बड़ी मुसीबत भरे कष्ट साध्य दिन थे। मुझे मेरी मां ने बताया था। उन दिनों घर में सुबह के वक्त सोंधी के चावल उबालकर खा रहे थे। शाम के समय जौ की रोटी खाई जाती थी। उस समय मेरे बाबा के घर में परिवार बड़ा होने के कारण खाने के किए बड़े मुसीबत भरे परेशानी के

दिन चल रहे थे। घर के लोगों को इस बात की बड़ी चिंता सताये जा रही थी। अब जच्चा-बच्चा के खाने का प्रबंध कहां से? और किस प्रकार किया जाएगा?"

प्रसंगत यह कहना उचित लगता है कि दलित साहित्य में भेड़िया एक बड़ी समस्या है। लक्षणा-व्यंजना में तो दलितों के अधिकार रूपी शिशु को निगल जाने वाले भेड़िया आजादी के बाद भी अनेक हुए, पर यह अविधा में भी भेड़िया के जबड़ों से दलित बच्चे छुटाने के लिए शिशु उमेश की मां संघर्ष कर रही है—

"मैं उस दिन अचानक चलते समय मां से गन्ना लेने के लिए हट कर बैठा था। तब मां ने मेरे लिए अपने पैर से एक गन्ना नीचे नवाकर तोड़ दिया था। तब मां ने उस गन्ने को उठाने के लिए मुझसे कहा था। मैं उस गन्ना को उठाने के लिए जैसे ही झुका। उसी समय भेड़िया ने बिजली के कौंधने की फुर्तीली तेजी के साथ मेरे सिर को अपने मुंह में दबा लिया। यह काम निमिष, मात्र समय में अर्थात क्षण भर में हो गया था। इस वीभत्स्य दृश्य को देखते ही मां के तो होश उड़ गये थे। भेड़िया मुझे अपने मुंह में दबाकर जैसे ही चलने को हुआ, उसने अपने सिर की गठरी दूर फेंक दी और अपने हाथ में मेरा कुर्ता पकड़ लिया। वह कुर्ते को पकड़ कर भेड़िये के साथ-साथ चलने लगी। भेड़िया मुझे लेकर ईख के बड़े खेत में घुस गया था। ईख बहुत घनी थी, उसमें भेड़िया तेजी से भाग ही नहीं सकता था। मेरी मां उस भेड़िये के पीछे-पीछे चल रही थी। भेड़िया बहुत कोशिश कर रहा था। उसे खुली जगह मिल जाय और वह वहां से चंपत हो जाए और मुझे अपना निवाला बना ले।

मां ईख में भेड़िये के पीछे-पीछे घिसटते-घिसटते कुछ-कुछ बेहोशी की हालत में पहुंच चुकी थी। भेड़िये को मेरे साथ-साथ मेरी मां को भी खींचना पड़ रहा था।

तेज सिंह ने जब भेड़िये को ईख के बाहर से अंदर की ओर जाते देखा। वह घबराहट में हल्ला मचाने लगे। इस आवाज को सुनकर सभी लोग भयंकर हो-हल्ला करते हुए, उसी ओर सरपट दौड़ पड़े। मां को भेड़िया इसी ईख में घंटे भर से इधर-उधर घुमाता फिर रहा था। सभी लोग तेज सिंह की बताई गई निशानी के आधार पर लाठी और बल्लम लेकर ईख के खेत में अंदर की ओर ढूंढने के लिए समूह में आगे बढ़ने लगे। उन लोगों को जिधर से आवाज सुनाई दे रही थी। उसी तरफ तेजी से आगे बढ़ते जा रहे थे। अंत में ईख में तलाश रहे लोगों ने मां की सिसकियों की आवाज सुन ली।' उमेश इस भयावह स्थिति के बारे में आगे लिखते हैं—

"मां बताती है लोगों ने पहले मेरे शरीर की जांच की थी। मुझे भेड़िया के चार दांत लगे थे। एक दांत मेरे गाल पर लगा था जिसने मेरे प्राणों की रक्षा की थी। शेष तीन दांत मेरी गर्दन पर लगे थे। इस कारण मेरे शरीर का बहुत सा रक्त निकल गया

था। बस किसी तरह रुक-रुक कर सांस चल रही थी। इससे उन्हें मेरे जीवित होने का विश्वास हो गया था। तब लोग उसी हालत में मुझे चादर में लपेट कर दवाखाने की ओर लेकर दौड़ पड़े थे। दवाखाने जाते समय गांव के लोगों का हुजूम साथ-साथ बल्लम-भाले लेकर चल रहा था।"

भेड़िया ने दलित आत्मकथाओं में खासा स्थान घेर लिया है। अंतर यह है कि उमेश की मां बेटे को भेड़िये के मुंह से छुड़ा लाने के लिए अपनी जान जोखिम में डाल देती है तो *'मेरी पत्नी और भेड़िया'* (वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली) आत्मकथा के लेखक डॉ. धर्मवीर को उनकी पत्नी रमेश भेड़िया के ही हवाले कर देना चाहती हैं। वे हजार मना करने पर भी भेड़िया पालती हैं। इस प्रकार बालक उमेश जानवर रूपी भेड़िया से तो बच गया, परंतु अछूत होने के नाते शिक्षकों, बुद्धिजीवियों के रूप में उमेश को अनेक भेड़ियों से पाला पड़ा। इन्हें आप गुरु जी कहते हैं, ये 'जूठन' में ओमप्रकाश बालक से स्कूल में झाड़ू लगवाते हैं, उसी तरह चमार पर कौन-सा स्नेह लुटाते हैं। उमेश बताते हैं—

"मास्साब ने स्कूल के रजिस्टर में मेरा नाम उमेश लिख दिया था। स्कूल के रजिस्टर में मेरी जन्म तिथि "तीन फरवरी सनू उन्नीस सौ बासठ" लिख दी गई थी। घर के लोग अधिक पढ़े-लिखे तो नहीं थे। जो जन्म की तारीख को लिख लेते। मेरे गांव के लोग बताते हैं कि मैं दिन के चार बजे पैदा हुआ था।

मास्साब ने फिर पूछा! तुम्हारी जाति क्या है? चमार अथवा भंगी।

बापू ने जबाब दिया था! मास्साब चमार है।

मास्साब ने कहा था। चमार, भंगियों के छोरा जब पढ़ने के लिए नहीं आते हैं तो तुम लोग स्कूल में इनका नाम क्यों लिखवाते हो? न तुम नहाते हो, न साफ कपड़े पहनते हो फिर बच्चों को पढ़ाने के दिवास्वप्न क्यों देखते हो?"

जिन्होंने उमेश की दिनचर्या देखी है, वे अब यह सवाल नहीं करेंगे कि वे क्यों तीन-तीन बार नहाते क्यों हैं? क्यों टाई-शूट में ही कई बार सो जाते हैं? वे आगे भी ऐसी रोचक बातें बताते हैं—

बापू ने उत्तर दिया था! मास्साब हम तो सब कुबड्ड रह गए हैं ज्या छोरा कूं पढ़ाइ देउगे तो हमारो जीवन सफल है जाइगो। हम तुम्हारो गुन जिंदगी भर मानेंगे। हमारे पास पैसा टका बहुत अधिक नहीं है लेकिन स्कूल में कुछ बनवाना हो, तब हम लोग दो-चार दिन मुफ्त में मेहनत-मजूरी के रूप में श्रमदान अवश्य कर देंगे।"

शिक्षा व्यवस्था में यदि समता, स्वतंत्रता और बंधुता के मूल्यों के अनुसार यदि व्यक्ति मात्र ज्ञान देना महान् उद्देश्य बनाया होता तो आज यूनेस्को की रिपोर्ट भारत

में सर्वाधिक अनपढ़ वयस्क नहीं बता रही होती (सबसे ज्यादा अनपढ़ लोगों का देश, अमर उजाला, 19 फरवरी, 2014)–

"उन दिनों स्कूल में सब चमार-भंगियों के बच्चे भेड़, बकरी की तरह समझे जाते थे। इसी तरह का उनका कुछ-कुछ स्वभाव भी हुआ करता था। सवर्ण बच्चों का सदैव प्रयास रहता था। चमार-भंगियों के बच्चों पर विद्या न आ जाय क्योंकि अगर इन बच्चों पर विद्या आ गई तो उनके लिए शायद विद्या कम पड़ जाएगी। इसलिए कक्षा के हम सभी दलित विद्यार्थी उस दौर में अपने हिस्से में अधिक से अधिक विद्या आने का प्रत्येक उपाय के रूप में टोना-टोटका आदि पर विश्वास करने से पीछे नहीं हटा करते थे जिससे अधिक से अधिक विद्या अपने हिस्से में आ जाए। अथवा हम लोग अच्छे नंबरों से पास हो जाएं। हम सभी बच्चे अपनी पुस्तक या बस्तों को जरा सा किसी के पैर अथवा अपने पैर से छू जाने पर, बस्ते को कई बार हाथ से छूकर माथे से लगाते थे और हर बार पुचकारते जाते थे। प्रत्येक बार पुचकारते हुए कहते जाते थे। विद्या विद्या मो पै आ। विद्या-विद्या मो पै आ। ताकि विद्यारानी मुझसे रूठ न जाये। इसके साथ-साथ सवर्ण लड़के प्रत्येक वह उपाय किया करते थे, जिससे विद्या चमार-भंगियों पर न चली जाए।"

नेल्सन मंडेला ने श्वेतों को अहसास कराया कि अश्वेतों की क्षति-पूर्ति उन्हें ही करनी है। इसलिए अश्वेत को पढ़ाने-लिखाने, ज्ञान-विज्ञान, कला-मीडिया, शिक्षा साहित्य में आगे लाना उन्हीं की जिम्मेदारी है।

भारत में रंग और नस्ल के भेद से ज्यादा अमानवीय जाति भेद है। अस्पृश्यता दासता का भयंकर रूप है। गांधीजी आश्वस्त कर रहे थे कि सवर्ण हरिजनों की सेवा करेंगे, परंतु सवर्णों में आत्मग्लानि, पछतावा और क्षतिपूर्ति करने का नैतिक बल पैदा ही नहीं हो रहा। प्राथमिक स्कूल से यूनिवर्सिटी, कॉलेजों तक हम दलितों के मानवाधिकार छीनने-हड़पने-छलने के क्रम देखते हैं।

हम पाते हैं कि कानून को धत्ता बताकर ब्राह्मण, वैश्य, कायस्थ आदि सवर्ण जातियों के प्राचार्य, कुलपति दलितों आदिवासियों को दाखिले तक पूरी तरह नहीं देते। उनसे छात्रों की सूची मांगो तो दाखिला तिथि गुजर जाने के बाद देते हैं। इन हालातों से उमेश की आत्मकथा हमारे सामने अतीत के बहाने वर्तमान खोलती है और भविष्य की चिंताएं जगा देती है।

इस आत्मकथा ने लुप्त हो रहे दलितों के लोकगीत, तीज-त्योहार जिंदा किए हैं। अलीगढ़ जनपद से मेरे बचपन का भी संबंध रहा है। मैंने अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' (वाणी प्रकाशन, दिल्ली-2) में काफी चीजें लिखी हैं, परंतु उमेश

ने जो टेसू गीत दिए हैं, वे मुझसे छूट गए। जबकि मैं खुद टेसू गाने गाता था। निकटता सांस्कृतिक रूप से नहीं, भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि भौगोलिक दृष्टि से उमेश का बचपन मेरे बचपन के मात्र 30-40 कि.मी. की दूरी पर था। मैं इसे रेखांकित करना चाहूंगा। एक तरह से यह स्मृति ताजा कर डॉ. उमेश कुमार ने मेरे जैसों की अच्छी मदद की है–

"क्वार के महीने में लड़के टेसू और लड़कियां झांझी मांगने के लिए जाया करती थीं। सभी बच्चे टेसू मांगते समय गीत गाया करते थे। गीत तो बहुत से प्रचलित थे। एक-दो गीत बहुत नमूने के तौर पर इस तरह के हुआ करते थे।

टेसू के रे टेसू के, टेसू मेरो मम्मन बीर,
सोने के गड़ाए तीर, एक तीर मैंने मांग लिया,
चल घोड़े सैलान किया, कीया है भाई कीया है।
सोने का है कारा कोट, मार सिकंदर पहली चोट।

इस तरह के गीत हमें कहीं न कहीं इतिहास के आधार पर सफल होने के लिए प्रेरणा देते थे। सिकंदर ने विश्व विजय की थी। यह गीत उससे कहीं न कहीं जोड़कर देखा जा सकता है।

टेसू मेरो रंग बिरंगों, आज भांग खाके आयौ है।
भांग खाकर सो गया, तब मां जगाने आई है।
मां कहे मेरों ऊताताई, बहन कहे मेरा भाई है,
बहू कहे तेरी चांदिये पीट्ट, तूने भांग कैसे खाई है।

इस गीत को गाकर अंत में सभी बच्चे बड़ी जोर से ठहाका लगाकर खिलखिलाकर हंसते थे।"

यह आत्मसम्मान और आत्मबोध की बात है कि उमेश ने चमारों की कुर्बानियां दिलेरी और मार्शल रेस की याद दिलाई है। बेशक आज सेनाओं में मराठा रेजीमेंट, जाट रेजीमेंट, राजपूत रेजीमेंट, जातियों का विश्व दर्शाती हैं, परंतु चमार रेजीमेंट और महार रेजीमेंट की बहादुरी के किस्से कम नहीं हैं। यूं तो हम श्रम के हर मोर्चे पर सैनिक की तरह ही लड़ रहे हैं, हमारा लेखन भी सैनिक कार्य हो गया है, पर अभिधा में भी देखें तो डॉ. अंबेडकर की पृष्ठभूमि बाबू मंगूराम का परिवार, स्वामी अछूतानंद का परिवार, यंहां तक कि मा. कांशीराम तक का परिवार सेना से ही ताल्लुक रखता है। डॉ. उमेश कुमार ने भी लिखा है। चमार का श्रम व्यावसायिक कौशल ने ही उसे कुशल कवि भी बनाया है। उमेश यह अकसर सुनाया करते हैं–

"यह मेरे जीवन काल की एक सच घटना है एक चमार को ठीका-ठीक दोपहरी में एक पंडित जी अपनी पत्रा लेकर आते हुए दिखाई दिये। उसने पंडित जी को पास आते ही कहा! पंडित जी पायं लागूं। पंडित जी ने खुशी रहो का आशीर्वाद दिया।

उसने फिर कहा, पंडित जी आप गांव जा रहे हैं। एक बहुत जरूरी बात घर पर नाती से कहनी है। पंडित जी ने सीधे स्वभाव में कहा! कहो? भग्गा चमार ने उनसे कहा! आप इस कविता को अपने कागज पर लिख लो, नहीं तो रास्ते में भूल जाओगे। पंडित जी ने इस कविता को अपने कागज पर लिख लिया–

चमकनी, चांदनी और डोरिया मगायो है,
जाय रेकनी को पेंकना, पोखरिया पै पायौ है,
नाती ते कै दइयौ आज तू बाबा नै बुलायौ है।

पंडित जी ने उसकी कविता अपने कागज पर लिख तो लीं, परंतु इस कविता की पंक्तियों के गूढ अर्थ को समझ न सके। वह संकोच वश सोचकर चुप रह गये, कहीं गांव का चमार उन्हें निपट पोंगा पंडित ही न समझ बैठे।

पंडित जी ने चमारों के मुहल्ले से भग्गा चमार के नाती को किसी से बुलवाकर उसके बाबा के द्वारा भेजी गई कविता सुना दी। पंडित जी की कविता सुनते ही नाती ने कहा! मैं समझ गया। पंडित जी।

पंडित जी ने अपने मन में सोचा! मैं कितना मूर्ख हूं, निपट गंवार हूं, सच में पोंगा पंडित ही हूं, जो इस कविता के अर्थ को भी नहीं समझ सका। यह छोटा सा बालक कविता सुनते ही समझ गया।"

चमार उक्त प्रसंग से प्रसन्न हो सकता है, परंतु यह सिक्के का एक पहलू है। दूसरी दुःखद स्थिति तो यह है, जो उमेश ने ही आत्मकथा में रखी है–

"हमारी जाति के लोग स्वतन्त्रता मिलने के बाद उन्नीस सौ पैंसठ-सड़सठ में भी ठाकुरों के कुएं पर से पानी नहीं भर सकते थे। मैंने उनसे पानी मांगते हुए स्वयं देखा था। मुझे नहीं लगता है आज भी मेरे गांव के लोग सन् दो हजार पंद्रह में भी ठाकुरों के कुएं से कोई दलित पानी नहीं भर सकता है। भले उस कुएं से कोई-पानी नहीं पीता हो। यह समाज की एक व्यवस्था है उसे एक साथ भंग नहीं किया जा सकता है। मेरे विचार से यह व्यवस्था धीरे-धीरे स्वयं ही समाप्त हो जाएगी।

मेरी जाति का नाम सुनते ही भारत की हर जाति और धर्म के लोग नफरत करने लगते हैं। मुझे लगता है दुनिया में शायद कोई दूसरी जाति न होगी जिसने

स्वयं भूखों रहकर इतनी ईमानदारी और मेहनत से समाज द्वारा सौंपा गया कार्य किया हो, फिर भी उसे इतना अपमान और कष्ट भरा जीवन जीने को मजबूर होना पड़ा हो। इस जाति के प्रति इतनी घृणा, उनका कष्ट भरा जीवन और भूखी मानवता का अपमान देखकर...भगवान भी यदि दुनिया में होते जरूर रो पड़ते।

मेरी जाटव चमार जाति के लोगों ने कभी दबना नहीं सीखा है। शायद यही उनका सबसे बड़ा अपराध है। उन्हें अवसर दिया जाए। तब चमार प्रत्येक क्षेत्र में अव्वल ही आएंगे। यह जाति मेहनत करने से कभी पीछे नहीं हटती है। इतना ही नहीं भारत की छोटी जातियों के लोगों की सेवा के दम पर ही भारत चल रहा है। आज सभी अवर्ण काम करना बंद कर दें तब भारत के सभी कल-कारखाने बंद हो जाने के कगार पर खड़े होंगे। आज हमें मेहनत मजदूरी करने के अवसरों से महरूम रखा जाता है। तब भी हम अपनी मजदूरी के बल पर इतने उछल सकते हैं। जब सभी दलितों को पर्याप्त कार्य के अवसर प्रदान किये जाएं तब तो हम पूरी दुनिया बदल देने का हौसला रखते हैं। मुझे इस अवसर पर ठाकुर जी की एक कहानी याद आती है।"

आत्मकथा के अनुसार उमेश का बाल विवाह उर्मिला देवी के साथ हुआ था। वे मात्र तेरह साल के बच्चे थे। शायद यही कारण था कि उमेश जब मुझे अपनी 30 साल की वय में जे.एन.यू. में मिले थे, तब वे अपनी हमउम्र, हमतालिमे बिल के सपने देखते थे। बताते भी नहीं थे कि वे विवाहित हैं। खैर, उनका वह वक्त गया और वे सही जगह अपनी विवाहिता के साथ जीवन सफर पर निकल पड़े।

एक अच्छी, बेबाक और कम परिमार्जित आत्मकथा देकर उमेश ने युवा पीढ़ी को इस दिशा में प्रोत्साहित किया है। हर आत्मकथा अपनी भूमिका में पूरी नहीं होती है, उमेश कुमार नाहक इसकी तुलना कराना चाहते हैं। 30 करोड़ दलितों के बीच से अभी कम-से-कम 500 आत्मकथाएं आ जाएं, उसके बाद उनकी तुलना का दौर शुरू होगा। हर आत्मकथा अतुलनीय है, वैसे ही यह भी। बधाई हार्दिक बधाई!

–श्यौराज सिंह 'बेचैन'
प्रोफेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
निवास–1/122, वसुंधरा, गाजियाबाद
email : sheorajsinghbechain@gmail.com

"यह मेरे जीवन काल की एक सच घटना है एक चमार को ठीका-ठीकी दोपहरी में एक पंडित जी अपनी पत्रा लेकर आते हुए दिखाई दिये। उसने पंडित जी को पास आते ही कहा! पंडित जी पायं लागूं। पंडित जी ने खुशी रहो को आशीर्वाद दिया।

उसने फिर कहा, पंडित जी आप गांव जा रहे हैं। एक बहुत जरूरी बात पर पर नाती से कहनी है। पंडित जी ने सीधे स्वभाव में कहा! कहो? भग्गा चमार ने उनसे कहा! आप इस कविता को अपने कागज पर लिख लो, नहीं तो रास्ते में भूल जाओगे। पंडित जी ने इस कविता को अपने कागज पर लिख लिया–

चमकनी, चांदनी और डोरिया मगायो है,
जाय रेकनी को पेंकना, पोखरिया पै पायौ है,
नाती ते कै दइयौ आज तू बाबा नै बुलायौ है।

पंडित जी ने उसकी कविता अपने कागज पर लिख तो लीं, परंतु इस कविता की पंक्तियों के गूढ़ अर्थ को समझ न सके। वह संकोच वश सोचकर चुप रह गये, कहीं गांव का चमार उन्हें निपट पोंगा पंडित ही न समझ बैठे।

पंडित जी ने चमारों के मुहल्ले से भग्गा चमार के नाती को किसी से बुलवाकर उसके बाबा के द्वारा भेजी गई कविता सुना दी। पंडित जी की कविता सुनते ही नाती ने कहा! मैं समझ गया। पंडित जी।

पंडित जी ने अपने मन में सोचा! मैं कितना मूर्ख हूं, निपट गंवार हूं, सच में पोंगा पंडित ही हूं, जो इस कविता के अर्थ को भी नहीं समझ सका। यह छोटा सा बालक कविता सुनते ही समझ गया।"

चमार उक्त प्रसंग से प्रसन्न हो सकता है, परंतु यह सिक्के का एक पहलू है। दूसरी दुःखद स्थिति तो यह है, जो उमेश ने ही आत्मकथा में रखी है–

"हमारी जाति के लोग स्वतन्त्रता मिलने के बाद उन्नीस सौ पैंसठ-सड़सठ में भी ठाकुरों के कुएं पर से पानी नहीं भर सकते थे। मैंने उनसे पानी मांगते हुए स्वयं देखा था। मुझे नहीं लगता है आज भी मेरे गांव के लोग सन् दो हजार पंद्रह में भी ठाकुरों के कुएं से कोई दलित पानी नहीं भर सकता है। भले उस कुएं से कोई पानी नहीं पीता हो। यह समाज की एक व्यवस्था है उसे एक साथ भंग नहीं किया जा सकता है। मेरे विचार से यह व्यवस्था धीरे-धीरे स्वयं ही समाप्त हो जाएगी।

मेरी जाति का नाम सुनते ही भारत की हर जाति और धर्म के लोग नफरत करने लगते हैं। मुझे लगता है दुनिया में शायद कोई दूसरी जाति न होगी जिसने

स्वयं भूखों रहकर इतनी ईमानदारी और मेहनत से समाज द्वारा सौंपा गया कार्य किया हो, फिर भी उसे इतना अपमान और कष्ट भरा जीवन जीने को मजबूर होना पड़ा हो। इस जाति के प्रति इतनी घृणा, उनका कष्ट भरा जीवन और भूखी मानवता का अपमान देखकर...भगवान भी यदि दुनिया में होते जरूर रो पड़ते।

मेरी जाटव चमार जाति के लोगों ने कभी दबना नहीं सीखा है। शायद यही उनका सबसे बड़ा अपराध है। उन्हें अवसर दिया जाए। तब चमार प्रत्येक क्षेत्र में अव्वल ही आएंगे। यह जाति मेहनत करने से कभी पीछे नहीं हटती है। इतना ही नहीं भारत की छोटी जातियों के लोगों की सेवा के दम पर ही भारत चल रहा है। आज सभी अवर्ण काम करना बंद कर दें तब भारत के सभी कल-कारखाने बंद हो जाने के कगार पर खड़े होंगे। आज हमें मेहनत मजदूरी करने के अवसरों से महरूम रखा जाता है। तब भी हम अपनी मजदूरी के बल पर इतने उछल सकते हैं। जब सभी दलितों को पर्याप्त कार्य के अवसर प्रदान किये जाएं तब तो हम पूरी दुनिया बदल देने का हौसला रखते हैं। मुझे इस अवसर पर ठाकुर जी की एक कहानी याद आती है।"

आत्मकथा के अनुसार उमेश का बाल विवाह उर्मिला देवी के साथ हुआ था। वे मात्र तेरह साल के बच्चे थे। शायद यही कारण था कि उमेश जब मुझे अपनी 30 साल की वय में जे.एन.यू. में मिले थे, तब वे अपनी हमउम्र, हमतालिमे बिल के सपने देखते थे। बताते भी नहीं थे कि वे विवाहित हैं। खैर, उनका वह वक्त गया और वे सही जगह अपनी विवाहिता के साथ जीवन सफर पर निकल पड़े।

एक अच्छी, बेबाक और कम परिमार्जित आत्मकथा देकर उमेश ने युवा पीढ़ी को इस दिशा में प्रोत्साहित किया है। हर आत्मकथा अपनी भूमिका में पूरी नहीं होती है, उमेश कुमार नाहक इसकी तुलना कराना चाहते हैं। 30 करोड़ दलितों के बीच से अभी कम-से-कम 500 आत्मकथाएं आ जाएं, उसके बाद उनकी तुलना का दौर शुरू होगा। हर आत्मकथा अतुलनीय है, वैसे ही यह भी। बधाई हार्दिक बधाई!

–श्यौराज सिंह 'बेचैन'
प्रोफेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
निवास–1/122, वसुंधरा, गाजियाबाद
email : sheorajsinghbechain@gmail.com

प्राक्कथन

आज पांच दशकों का लंबा अंतराल व्यतीत होने के बाद प्रथम दो दशकों की स्मृतियों के नासूर को फिर से एक बार कुरेद रहा हूं। अपने जीवन संघर्ष की इन स्मृतियों को पुनः-पुनः दुहराते हुए मन अनेक बार भर आया है। मेरी आंखों से अनायास बिन मौसम बार-बार, रुक-रुक कर घनघोर बारिश होने लगती है। मेरे मस्तिष्क पटल पर इन आच्छादित मेघों के बादलों की काली घटाओं की टकराहट से उत्पन्न होने वाली विद्युत की कंपन्न और दिल को दहलाने वाली आवाज की सिंहरन के बाद होने वाली बारिश के दौरान एक बार लगा, यह पचास साल पहले की बात नहीं बल्कि बस कल की बात है। अपने भावों के वेग के तीव्र प्रवाह में बहते हुए मुझे कुछ पता ही नहीं चला और समझने लगा नंगे पांव जाड़े में ठिठुरते हुए मजबूर और अभावों में जीने वाला मामूली किशोर अपने कर्तव्य पथ पर हंसते-खेलते, रोते-बिलखते हुए दौड़ा चला जा रहा है।

मेरी परवरिश उस सरजमींन के मामूली परिवेश में हुई है जिस गांव के तीन ओर कभी बारिश के दिनों में पानी भर कर एक बड़ा जलाशय बन जाया करता था। यह पूरा गांव कभी एक टीले को छोड़कर बड़े जलाशय में तब्दील हो जाया करता था। इस बड़े जलाशय में जाडों के शुरुआत के दिनों से ही साइबेरिया से प्रवासी लाल-सफेद रंग के लंबी चोंच वाले सारस पक्षी भोजन की तलाश में आकार अपना डेरा जमा लिया करते थे। इस गांव के लिए कोई एक रास्ता ऐसा नहीं बना था जिससे होकर गांव के लोग बिना अपने कपड़े भिगाये सड़क तक पहुंच सकते हों।

सड़क तक पहुंचने के लिए बरसात के दिनों में कमर तक के पानी में से होकर गुजरना पड़ता था।

इस गांव में हमारी जाति के लोगों में दूर-दूर तक शिक्षा का प्रकाश नजर नहीं आता था। गांव के बहुत से लोग पढ़ना-लिखना जानते अवश्य थे परंतु पढ़ने के अक्षर ज्ञान से ही सब कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता है। गांव-भर में भारत के अन्य गांवों की तरह पुस्तैनी पेशा खेती एकमात्र व्यवसाय था। आज के युग में सब कुछ प्राप्त करने के लिए उच्च शिक्षा की सीढ़ी चढ़ना आवश्यक होता है। इस गांव में जमीन और धन धनवानों के लिए शेष खेती की मजदूरी और बेगार हमारी जाति के लोगों के लिए थी।

मैंने अपने गांव में बचपन से लेकर होश संभलने तक अपने लोगों की भूख-प्यास की छटपटाहट, काम न मिलने की मजबूरी और उनकी दरिद्रता को बड़े नजदीक से देखा ही नहीं है बल्कि उस समाज में रहकर उसे स्वयं भोगा और महसूस भी किया है। मेरे समाज और मेरी जाति के लोगों को गांव के सब लोग आज भी चमार, चमरा, चमरू, चमरुआ आदि नए-नए नामों के अलंकारणों से परिभाषित करते दृष्टिगोचर होते हैं। सवर्ण-जन मेरी जाति के नाम की गाली देकर अपने आपको बड़े गौरवान्वित महसूस करते हैं।

इस देश की बहुत सी सभ्य कही जाने वाली जातियों के लोग कहते हैं हमारी जाति के लोगों को खाने-पीने, पहनने-रहने और लोगों के बीच उठने-बैठने के तौर-तरीके नहीं आते हैं। जब लोगों के पास अच्छा खाना नहीं, पहनने को कपड़े नहीं, रहने को अच्छा घर नहीं है। तब उन लोगों को क्या आसमान से अथवा किसी जादू की पुड़िया से खाना, पीना, रहना, उठाना, बैठना आ सकता है। देश की सभी नौकरियां आपके पास हैं। धन आपके पास है, सारी जमीनों पर आपका कब्जा है आप जो चाहें कह सकते हैं। आपके पास लाठी है तब "जिसकी लाठी उसकी भैंस"। मेरे लोगों की तरह कोई अपमान और अभाव का जहर प्रतिदिन पीकर दिखाये। मित्रो सदियों तक भूख-प्यास झेलते-झेलते इंसान क्या भूत भी खाना, पीना और रहना भूल जाएंगे। हम आज तक आपके साथ-साथ चल रहे हैं और आपके बीच आपके मतानुसार हम हिन्दू हैं। आपके अनुसार हम शूद्र हैं परंतु अपने अनुसार हम दलित हैं। और आपके साथ आज तक हम दलित बनकर, सीना ठोककर जीवन जी रहे हैं यह क्या कम बड़ी बात है।

आत्मकथा, आत्मकथाकार के जीवन का भोगा हुआ वह सच होता है जिसको समग्रता में एकमात्र स्वयं रचनाकार ही जानता है इसके अतिरिक्त टुकड़ों में इस दुनिया के चंद लोग जानते हैं परंतु वह सब उन लोगों के अवचेतन मस्तिष्क में समाया होता है उन्हें इस बात का बिलकुल ध्यान नहीं होता है उनके इस कटु व्यंगपूर्ण व्यवहार से उन्हीं की तरह दिखने वाले किसी इंसान को कितना दुःख पहुंचा होगा। अकेले स्वयं आत्मकथाकार एक बार दुनिया के बीच अभावों, पीड़ाओं, वेदनाओं, कुंठाओं और अनेकों-अनेक झंझावातों से विषम से विषम परिस्थिति में भी जूझते हुए आगे बढ़ने में सफलता प्राप्त ही नहीं करता है बल्कि इस बज्रहृदय दुनिया में अपना एक मुकाम हासिल करता है। दूसरे शब्दों में आत्मकथा व्यक्ति के अपने बीते हुए जीवन के अनछुए पलों के अनुभवों का संपूर्णता में बहीखाता ही नहीं उसके जीवन की बेलेन्श शीट भी होती है वह इन अनुभवों को जब खुलकर बेखौफ उसी समाज के सामने एक बार फिर से परखने के लिए रखता है। उसकी एक खास वजह होती है वरना बिना कारण के किसी के सामने अपने जीवन के सच को बेपर्दा करना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं कही जा सकती है। लेखक चाहता है लोग उसके बारे में और उस बेदर्द समाज के बारे में जानें। उसकी मुश्किलों, उसकी अच्छाइयों से, उसके अनुभवों से लोगों को अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए फायदा पहुंचे।

दलित आत्मकथाकारों द्वारा आत्मकथा लिखना वीरों का ही नहीं, महावीरों का सा काम कहें तो अनुचित न होगा क्योंकि आत्मकथा लिखना किसी युद्ध में अपने आपको को शहीद करने से कमतर प्रतीत नहीं होता है। आत्मकथाकार अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में एक मुकाम हासिल करने के बाद आत्मकथा लिखने का जोखिम उठाने की हिमाकत करता है। इस दुनिया में जन्म के साथ ही उसे कदम-कदम पर जाति-धर्म, ऊंच-नीच, छुआ-छूत आदि अनेकों-अनेक अनगिनत जाति के नाम से अपमानित करने के अवरोध समाज के द्वारा ओलंपिक की बाधा-दौड़ की तरह षड्यंत्र किये जाते हैं। समाज की बाधा-दौड़ के इन अवरोधों को पार करने का साहस कोई बिरला आत्मकथाकार एक बार फिर से आत्मकथा लिखकर अपने बीते हुए कल के जीवन के सच और उन अनछुए पलों को, उसी बेरहम दुनिया के लोगों के समक्ष कसौटी पर कसने के लिए रखता है जिन पलों को उसने कभी पारवार रहित पीड़ा के उन पलों को मजबूरन भोगा था। अपने उन गुजरे हुए पलों को एक बार फिर से आत्मकथा लिखकर उसी प्रसव पीड़ा को लिपिबद्ध करते हुए भोगता है। इसके बाद आत्म-कथाकार अपने जीवित रहने तक, जब भी लोगों से सामना करता है उस

भोगी हुई पीड़ा से न जाने कितनी बार दो-दो हाथ करता हुआ अपना जीवन व्यतीत करता है।

आत्मकथा लिखने के पीछे मेरा उद्देश्य अपने जीवन के भोगे हुए यथार्थ को जस का तस उस समाज के सम्मुख रखना मात्र नहीं है जिस समाज के लोगों द्वारा खड़ी की गई अपमान और तिरस्कार भरी जिंदगी की अनगिनत मुसीबतों ने मुझे जुझारू बनाया और आगे बढ़ने का हौसला प्रदान ही नहीं किया है बल्कि अपने हम-उम्र और युवा वर्ग के समक्ष अपनी रचना को परखने के लिए रखना चाहता हूं जो अपने सम्मुख आई विपत्ति के क्षण में, अपने आगे बढ़ते हुए कदमों को कभी रोक न दें।

आत्मकथा "दुख-सुख के सफर में" की सच्चाई को, मेरे जीवन के अनुभवों और आपके अपने स्वयं के जीवन से अर्जित किये गए अनुभवों के आधार पर समझने और परखने का प्रयास अवश्य करें। मानव के कदमों को हमेशा से बर्फीले तूफानों ने डगमगाया अवश्य है परंतु वह मानव के बढ़ते हुए कदमों को रोक पाने में कभी कामयाब नहीं हो पाया है। मानव प्रत्येक परिस्थिति में आगे बढ़ने का हौसला रखे, तब वह विपरीत परिस्थितियों में भी कदम, कदम बढ़ाते हुए अपना मनचाहा लक्ष्य प्राप्त कर सकने में कामयाब हो सकता है चाहे उसके सम्मुख समस्याओं के पहाड़ों से भी ऊंचे अंबार क्यों न खड़े हों।

यह सत्य है, सदियों से दीये की टिमटिमाती मद्धिम रौशनी रात के अंधकार को अभी तक खत्म तो नहीं कर पाई है लेकिन उसने रात का नुकसान बहुत किया है। दीया रात के अंधेरों से हमेशा से जूझता रहा है और इस दुनिया के अंधकार को खत्म होने तक जूझता रहेगा। उसने कभी रात को जलाना नहीं छोड़ा है। वह रात को खत्म करने के प्रण पर आज भी अटल है। किसी भी प्रजातन्त्र देश में संभावनाएं असीमित होती हैं। हर असंभव कार्य पूरा हो सकता है। एक दिन इस दुनिया के प्रत्येक देश में प्रजातन्त्र का उजाला होगा। इस पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक इंसान को रोटी, कपड़ा और मकान के साथ-साथ रहने को घर और सम्मान की जिंदगी व्यतीत करने की आजादी होगी। इसे कोई रोक नहीं सकता है। हम कभी रहें न रहें परंतु इस विकास की आंधी की रफ्तार को न कोई रोक पाया है और न कभी कोई रोक पाएगा।

यह संभव है हम किसी बड़े पेड़ को बहुत शीघ्र गिरा अवश्य न पायें परंतु हम इस प्रजातांत्रिक देश में उस मजबूत पेड़ के पत्ते जरूर हिला देंगे। हमारे इन धीरे-धीरे

और जोर के झटकों से उसके दो-चार पत्ते जरूर गिर जाएंगे। कभी पहाड़ से भी टकराना पड़े तो उससे भी टकराना जरूरी होता है। यह हो सकता है हम स्वयं पहाड़ से टकराकर चूर-चूर हो जाएं परंतु उसकी ऊपरी परत में भी कुछ चोट अवश्य लगेगी। इस संबंध में मुझे वृंद की एक नीति बहुत उचित लग रही है।

बहुतन को न विरोधिए, निबल जानि बलवान।
मिली भखि जायं पपीलिका, नागहि नग के मांहि ॥

डॉ. भीमराव रामजीराव अंबेडकर दलितों के लिए ज्ञान का वह प्रकाश स्तम्भ हैं जिन्होंने भारतीय संविधान में वह प्रावधान स्वयं किए और संविधान सभा में बहस करवाकर प्रावधान करवाये थे जिनकी बदौलत आज दलित शिक्षा के साथ-साथ समाज में आगे बढ़ने के अन्य अवसर प्राप्त करने में कामयाब हो रहे हैं। यह डॉ. अंबेडकर की महानता है उन्होंने भारत का पुराना धर्म बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। देश उनकी इस बात का ऋणी होने की बात स्वीकार करे तो अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि जिन्होंने नागपुर की दीक्षाभूमि में पांच लाख लोगों के साथ भारत का पुराना बुद्ध धर्म स्वीकार किया था। वह कहीं भूल से भी मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिए होते तब देश की तस्वीर दूसरी और नक्शा भी दूसरा ही होता।

इस धरा पर प्रकट हुए प्रत्येक दलित व्यक्ति को समय के सबब का ज्ञान होना बहुत जरूरी है। समय का सबब किसी को बचपन में, तो किसी को उम्र दराज होने पर प्राप्त होता है। ईदगाह के हामिद को बचपन में ही समय का सबब मालूम हो जाता है। समय के सबब से तात्पर्य प्रत्येक परिस्थिति में जीवन को जीने की कला आना है। सुख में तो प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन व्यतीत कर लेता है परंतु दुःखों और विपरीत परिस्थियों में भी जीवन उसी धैर्य और साहस के साथ, एक योद्धा की तरह, अपने सामने आने वाली हर मुसीबत का सामना करते हुए जीवन जीने से है अर्थात सर्दी, गर्मी, और बरसात के मौसमों के बर्फीले तूफानों की मार को बर्दास्त कर जो जीवन बनता है वह फौलाद होता है। उसकी हस्ती सदियों तक मिटाने वाला इस दुनिया में कोई नहीं होता है।

आज दलित इस दुनिया में हर तरह के झंझावातों को बर्दास्त करते हुए निरंतर आगे बढ़ने में कामयाब हो रहे हैं। यह उनके समय के सबब की कला ही तो है जो उन्हें निरंतर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती रहती है। अक्षुण्य अभावों के बीच पेट की आग को शांत करने की जद्दोजहद और समाज के कटीले व्यंग्य-बाणों की निरंतर मार, उन्हें बल और शक्ति प्रदान करती रहती है। यह बात अलग है सभी

दलित आगे नहीं बढ़ पाते हैं कुछ अभागे उस युद्धभूमि में, अपने समाज और समाज के लोगों की विजयश्री के लिए बलि चढ़ जाते हैं उस फूल की तरह जो मौसम के समय खिलने वाले फूल की तरह, उसी पेड़ और उसी पेड़ की किसी डाल पर पुष्प बनकर लगे थे, जिन पर अन्य पुष्प बने पल्लवित हुए और जिन्हें बहार भी आयीं थीं और कुछ पतझड़ के मौसम में खिलने वाले फूल के समान असमय में ही काल के गाल में समा गए। पतझड़ के फूल खिलते तो हैं परंतु उन्हें कभी बहार नहीं आती है। आज चंद लोग उन्हीं बलि पर चढ़े लोगों की बदौलत ध्रुव तारे की तरह समाज में अपनी चमक बनाए हुए एक मुकाम हासिल किए हुए हैं। उसी प्रकार जैसे अंटार्कटिका के बेरहम मौसम के बर्फीले तूफानों की मार को झेलते हुए जो जीव बड़े होते हैं। उनको कौन से मौसम की मार हरा सकती है।

भारत को स्वतंत्रता मिलने के पैंसठ वर्षों के बाद भी भारत के लगभग सभी प्रान्तों में दलितों की स्थिति एक जैसी ही है। स्वतंत्रता के पहले भी दलितों के लाचारी के दिन थे, जब उनके पास काम नहीं होता था। तब वह और उनके बच्चे पैसे-पैसे को मोहताज थे। इस भारतीय समाज ने उन्हें दोहरी नीति के तहत न जाने कितनी बार बेदखल किया है। एक तो उसे अछूत होने के नाम पर गांव की मुख्य धारा से अलग किया। दूसरे उन्हें आर्थिक संसाधन जर और जमीन से दूर किया था। उसे धन न रखने, नया और अच्छा नया कपड़ा न पहनने देने, और न उसे अपने घर में नई ईंट लगाने देने आदि अनेकों तुगलकी फरमानों ने तो उनकी कमर ही तोड़ दी थी। उसे समाज के बीच न रहने देने, उसकी छाया तक से दूर रहने, उसके चलने वाले रास्ते पर अपने पीछे झाड़ू लटकाकर जाने, उसके थूकने के लिए उसके गले में थूकदान लटकाकर चलने आदि जैसे अनेकों घोर अमानवीय प्रावधान करने वाले भारत के मनीषियों तुम धन्य हो क्योंकि तुम्हें अपने और अपने पुरखों के कर्मों पर आज भी घिन नहीं आती है। जब मुगलकाल में हिंदुओं पर जजिया कर लगा दिया था। तब हिंदुओं की हवा निकल गई थी। तब उन्हें कितना दर्द हुआ था। आप लोग सदियों से मेरे समाज पर प्रतिबंध लगाते चले आ रहे हो। इससे आपको अब तब कोई फर्क नहीं पड़ा है। यह बहुत है।

दलित सवर्णों की एक अच्छाई को अभी तक ग्रहण नहीं कर पाये हैं। उदाहरण के लिए भारत के किसी भी प्रांत अर्थात पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण का ब्राह्मण क्यों न आ जाए। सभी ब्राह्मण आगंतुक ब्राह्मण के साथ बराबरी का व्यवहार करते हैं। उस व्यक्ति को अपने पास बैठाते हैं, उसे अपना भाई समझते हैं, अपने साथ खाना

खिलाते हैं। उसकी समस्या का हल मिलकर निकालते हैं। ऐसी बात नहीं है ब्राह्मणों में जातियां नहीं हैं उनमें दलितों से अधिक जातियां हैं। उनमें भी आपस में छुआछूत कूट-कूटकर उनकी नाक तक भरी हुई है। शरयूपारीय ब्राह्मण, सारस्वत ब्राह्मण, एकपंक्तीय ब्राह्मण, और न जाने क्या-क्या जातियां होती हैं।

उनके गोत्रों को कलमबद्ध करें तो एक महापुराण ही लिख जाय, इस तरह उनकी अठारह पुराणों के स्थान पर उन्नीस पुराण हो जाएंगी जैसे-शुक्ल, पांडे, पांडे में पांडे, मिश्रा, त्रिपाठी, पालीवाल, आदि, आदि परंतु वह आपस में कभी किसी का अपमान नहीं करते हैं। उनके सब काम बड़े अदब से पर्दे में चुपके-चुपके हो जाते हैं जबकि दलितों के सभी कामों में बहुत अधिक पारदर्शिरता होती है अर्थात सभी काम बेपर्दा होकर निर्भीकता से करते हैं। इनका प्रत्येक कार्य सदियों से इस खुले नीले आसमान के चांद सितारों के नीचे होता चला आ रहा है। आज तक इन्होंने अपने अच्छे-बुरे किसी भी तरह के काम में किसी से पर्दा नहीं किया है।

दलितों का कभी छदम् युद्ध नहीं होता है उन्होंने आज तक की तारीख में कभी किसी की पीठ में छुपकर वार नहीं किया है बल्कि इनकी वीर योद्धाओं की तरह आमने-सामने की लड़ाई होती है। वह शराब भी दूसरों को दिखाने के लिए आमने सामने पीते हैं। वह हजारों वर्षों से इसी तरह आमने सामने की लड़ाई करते चले आ रहे हैं। इसी कारण आज चमारों की तरह लड़ना, चमरपना फैलाना, आदि न जाने कौन कौन सी गाली पुराण हमारी जाति के लिए विज्ञान के आविष्कारों के पेटेंट की तरह पेटेंट कर दी गई हैं जबकि यह सभी गाली-गलौज भारत की हर जाति और धर्म के लोगों में सदियों से होती रही है और सदियों तक होती रहेगी।

डॉ. प्रीति सागर ने मुझे अपनी आत्मकथा के बहाने अपने अनुभव लिखने के लिए कई बार चाय पीते समय आग्रह किया था। इस संबंध में उन्होंने कहा था, हमारे पास ऐसे अनुभव नहीं हैं जैसे जीवन के कटु अनुभव आपके पास हैं। अपने जीवन के कटु अनुभवों को अपने लिए न सही अपनी आने वाली पीढियों के लिए अवश्य लिखें। मेरे साथी डॉ. बीरपाल सिंह यादव ने भी मेरे अजेरबैजान प्रस्थान करने से पूर्व कहा था। आप अजरबैजान से लौटते समय अपनी आत्मकथा अवश्य लिखकर साथ लाएं। मैंने बहुत पहले अपनी आत्मकथा लिखने का मन बनाया था लेकिन मुझे अपने परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने के साथ-साथ जीवन की अपनी भाग दौढ़ में आत्मकथा लिखने का कभी समय नहीं मिल सका। यह कमी विदेश प्रवास के समय कक्षा के बाद खाली समय ने पूरी कर दी। यह "दुख-सुख के सफर में"

बचपन से लेकर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में एम. ए. की पढ़ाई करने तक का कच्चे धूलभरे टेढ़े-मेढ़े रास्तों की बाधा दौड़ का फिलहाल एक छोटा परंतु पहले का बहुत लंबा सफर है। अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद समयाभाव के कारण इस कार्य को पूरा न कर सका हूं। मेरे जीवन के दूसरे भाग का लेखन अभी जारी है।

आज मुझे अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय में एक शिक्षक के अच्छे पद पर पहुंचने का अवसर मिला है। लोग मेरे साथ उठते-बैठते और खाते-पीते हैं। इतना ही नहीं वे मेरे साथ समानता का व्यवहार भी करते हैं परंतु मेरे अनेक भाइयों के साथ आज भी अमानवीय व्यवहार किया जाता है। इस देश के अनेक राज्यों में आज भी दलितों को मंदिरों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता है। आज मुझे अपनी जाति के लोगों के साथ समानता के व्यवहार की चिंता है इसके साथ-साथ अपने देश की चिंता भी है क्योंकि देश हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि धर्मों के साथ-साथ छुआ-छूत, ऊंच-नीच के नाम पर भी बंटता ही नहीं बल्कि कमजोर भी होता है। हम सभी इस बंटवारे और कमजोरी को जड़ से उखाड़कर एक समृद्ध, खुशहाल, समतामूलक एवं सामाजिक न्याय पर आधारित भारत का निर्माण करें।

दिनांक : 6 दिसंबर, 2012

–डॉ. उमेश कुमार सिंह

1

जब पंद्रह अगस्त सन् उन्नीस सौ सैंतालीस को भारत देश को स्वतन्त्रता मिली थी। वह दिन भारत के इतिहास में एक बड़े दिन के रूप में स्वर्णाक्षरों में दर्ज हो गया था। देश में उस दिन चारों तरफ खुशियां ही खुशियां मनाई जा रहीं थीं। सम्पूर्ण देश में स्वतन्त्रता की रात की धवल चांदनी का उजाला सुबह के सुनहरे स्वतंत्रता के सूरज के प्रकाश की असंख्य किरणों का उजाला अपने साथ लेकर आने वाला था। यह देशवासियों के लिए बड़ी खुशी का दिन था। सदियों के इंतजार के बाद महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन और स्वतन्त्रता सेनानियों की खून की कीमत के बदले में देश को आजादी का दिन नसीब हुआ था। एक तरह से भारतवासियों को अंग्रेजों की गुलामी से निजात मिल गयी थी। अपना देश, अपने नेता, अपने लोग, अपना शासन, अपना राज तो फिर काहे का डर।

"दुःख भरे दिन बीते रे भईया अब सुख आयो रे।"

पंद्रह अगस्त को पूरा देश खुशी के आगोश में चूर था। उस दिन गांव के जमींदार की हवेली में बातें हो रही थी। आज देश स्वतंत्र हो गया है। हम सभी स्वतंत्र हो गए हैं। यह बात हमारी बस्ती के राव साहब के यहां बंधऊ काम करने वाले चिरंजी चाचा ने स्वयं बताई थीं। चिरंजी चाचा हमारी बस्ती के एक दलित व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी शादी नहीं की थी। वे बहुत बलिष्ठ व्यक्ति थे। राव साहब की

हवेली में सभी काम वही किया करते थे। वह अकेले ही खेत क्यार से लेकर जानवरों की देखभाल का सारा काम संभालते थे।

चिरंजीलाल! उस दिन उन्होंने अपनी एक लंबी सांस में बताया था। देश आजाद हो गया है। अब सबको भरपेट खाना और पहनने को कपड़े मिलने लगेंगे। अब कोई किसी पर जोर-जुल्म नहीं करेगा। जोर-जुल्म तो अंग्रेजों के राज में था। तब खेत का लगान न चुकाने पर हंटर से यही जमींदार खाल उतारवा देते थे। हम मजदूरों की हड्डियों का सुरमा बनवा देते थे। अब देश स्वतंत्र हो गया है। सब ठीक हो जाएगा। गांव में अब कोई किसी मजदूर से बेगार न लेगा। काम के बदले अनाज मिलेगा। मजदूर को पूरी मज़दूरी मिलेगी। भूखा पेट अब कोई न सो पाएगा।

बुद्धसेन बाबा ने पूछा! चिरंजीलाल! यह सब तो ठीक है परंतु तुमने कभी सोचा है कि देश की स्वतन्त्रता में हम मजदूरों का हिस्सा क्या है? यह बात उन्होंने मुहल्ले के छोटे-बड़े और बुजुर्गों में अलाव पर बैठे बस्ती के सब लोगों के बीच में कही थी।

हमारे पिता भी मजदूर थे? जब अंग्रेजों का राज था। खुशी की बात है आज देश आजाद हो गया है। हम आज भी मजदूर हैं, मजदूर ही रहेंगे। हम अभागों की किस्मत कहां बदलने वाली है और यही हाल रहा तब हमारी आने वाली पीढ़ियों के बच्चे भी मजदूर ही होंगे। हमारे पास है ही क्या? यही दो हाथ, पैर और ईमानदारी के साथ शारीरिक श्रम, मजदूरी! मजदूरी! गुलामी! गुलामी! बेगार! बेगार! बेगार! हमारे हिस्से में सदियों से यही तो आई है जो जाने का नाम नहीं लेती है। हम सब लोग अपने बच्चों का पेट पालने और अपने पेट का गड्ढा भरने के लिए दिन-रात काम में लगे रहते हैं इस कारण हमारी इस पूरी बिरादरी को लोग न जाने क्या गुलाम जैसे ग़ैरत भरे बुरे शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं। गुलाम दिन-रात बहता है लेकिन उसे खाने को वही रूखा-सूखा ही मिलता है।

हमारे लोग अपना नहाना-धोना, पहनना-ओढ़ना, साफ-सफाई कब और कहां से करें। दिनभर की कमरतोड़ मेहनत मजदूरी के बाद इतनी थकान हो जाती है कि अपने और इस समाज के बारे में सोचने का समय ही नहीं मिलता है। इस रात के अंधेरे में अलाव की इस तपती आग की लौ के तेज में हम एक दूसरे के चेहरे भी नहीं पहचान पाते हैं, बस एक दूसरे को आवाज के सहारे पहचानते हुए वार्तालाप भर करते रहते हैं।

हमारे बच्चों के भाग्य में तो बस कमरतोड़ मेहनत ही एकमात्र जमीन और जागीर है। हम मेहनत की रोटी खाते हैं यही गांव के जमींदार लोग हमसे मजदूरी कवाकर पैसे न देना उनकी फितरत है। वह पैसे मांगने पर उल्टे गाली ही निकालते हैं और मार-पीट अलग करते हैं। देख लेना एक दिन इन हरामियों का वंश अवश्य मिट जाएगा।

चिरंजीलाल! हां-हां बुद्धसेन बड़े भईया ठीक ही तो कह रहे हैं।

हमारे बाप मजदूर थे। मैं उनका बेटा भी मजदूर हूं। अब यही हाल रहा तब शायद आने वाले दिनों में हमारे बच्चे भी मजदूर ही रहेंगे। हम जिन घास-फूस और मिट्टी के घरों में रहते हैं इनमें चार मिट्टी के बर्तन-भांडे, फूंस की मढ़ैया और एकाद टूटी चारपाई ही हमारी जागीर है हम अपने जीने भर के लिए नरक भोगते रहते हैं। यह भी कोई हमारा जीवन है...। अच्छा अब चलो अपनी कमर सीधी भी कर लेते हैं फिर सुबह काम पर जाना होगा। भैया स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता बहुत हो ...गई स्वतन्त्रता।

हमारे परिवार का समाज में कोई विशेष अस्तित्व नहीं था, उन दिनों मेरे छोटे बाबा पंचायती पंच बनाए गये थे। मैं उनके बाद आज अपने परिवार में अक्षर ज्ञान लेकर कुछ कदम आगे बढ़ गया हूं इसलिए कुछ साहस करके अपनी और अपने समाज की बीती लिख रहा हूं। अब सबसे पहले अपने परिवार के सभी सदस्यों का परिचय आपसे करवाना अपना कर्तव्य समझता हूं ताकि आपको मेरी कहानी को समझने में आसानी हो। उसके बाद दूसरी बातों को सिलसिलेवार ढंग से बढ़ाता हुआ अपने जीवन की आगे की सच्ची, खट्टी-मीठी, कच्ची-पक्की, अपने जीवन की यादों की कहानी निस्वार्थ भाव से सुनाऊंगा। इस कहानी में आपको एक नहीं कई स्वाद आएंगे।

यह बात उन दिनों की है जब भारत के गांवों में संयुक्त परिवार व्यवस्था थी। हमारा परिवार भी संयुक्त परिवार के रूप में अभावों के होते हुए भी बड़े अमन-चैन से जीवन यापन कर रहा था। उन दिनों हमारी पूरी बस्ती ही एक परिवार की तरह हुआ करती थी। लोगों में बहुत प्यार होता था। तब बहुत गरीबी थी परंतु किसी की शादी होने पर लगता था, गांव में शादी हो रही है सभी हंसी-खुशी मिल-जुलकर खाना बनवाने में, खाना खिलवाने में, शामियाना लगवाने में, बरात चढ़वाने में, बड़े उत्साह के साथ कार्य करते हुए दिखते थे। तब गांव में बड़े-बूढ़ों की बड़ी इज्जत हुआ करती

थी। उस समय अपने घर का ही नहीं बल्कि पूरी बस्ती का कोई भी आदमी, मजाल है किसी की बेअदबी कर दे। जब कभी किसी आदमी ने बस्ती के किसी भी छोटे अथवा बड़े आदमी का अपमान कर दिया। तब उसकी शामत आ जाया करती थी। उसके लिए पंचायत बुलाई जाती थी और पंचों का फैसला सर्वमान्य हुआ करता था। इस तरह के फैसलों को सुनकर उस समय के लोग अशिक्षित होते हुए भी बहुत व्यवहार कुशल हो जाया करते थे।

हमारे परिवार के मुखिया श्री सिद्दूसेन उर्फ सकटू मेरे बड़े बाबा हुआ करते थे। उनके सिर पर सफेद पगड़ी के साथ उनकी बड़ी-बड़ी मूंछे बड़ी अच्छी लगती थीं। उनका सिर हिलता रहता था। उनका बड़ा कद्दावर शरीर था। मेरी दादी मां का नाम सांवली देवी था। घर और बस्ती के लोग उन्हें सामरी कहा करते थे। वे बहुत धनवान घर से आयीं थीं। उनका मायका कहीं नहल में था। उन दिनों उनके पिताजी का पक्की ईंटों का मकान बना हुआ था। उनके भाई सड़क और भट्टों की ठेकेदारी का काम किया करते थे। यह बात उन दिनों की है जब कोड़ियां भी मुद्रा के रूप में चला करती थीं। मेरी दादी अम्मा अकसर कहा करती थीं उन्होंने लोगों को उनके परिश्रम के बदले हिसाब करते समय कोड़ियां बांटी हैं।

मेरे छोटे बाबा श्री बुद्धसेन सरकारी पंचायत के पंच नियुक्त किए गए थे। इसके चलते उन्हें बहुत से लड़ाई-झगड़ों के निपटारे के लिए बुलाया जाता था। यह पंचायत उस जगह बुलाई जाती थी जहां झगड़ा होता था। उस गरीबी के दौर में हमारा गांव साठ का था। किसी के मृत्युभोज में बारहा अर्थात बारह गांव का, साठ का अर्थात साठ गांव की दावत की जाती थी। साथा पंचायत साठ की थी। मैंने अपने जीवनकाल में साठ का तो कभी नहीं लेकिन बरहा होते हुए सैकड़ों बार देखा है। इसमें बारह गांवों में से प्रत्येक गांव से दस अथवा बीस आदमी दावत में बुलाये जाते थे। इसका तात्पर्य सभी गांवों के लोगों को मृतक के बारे में सूचित करने से लगाया जा सकता है। मेरे छोटे बाबा का जीवनभर जीवन संगिनी के रूप में साथ देने वाली गंगा देवी मेरी छोटी अम्मा थीं। वह कभी प्रसन्न नहीं रहा करती थीं इसलिए घर भर के लोग उन्हें उनके पीछे स्वभाव के अनुरूप कुप्पो कहा करते थे।

दूसरी पीढ़ी के मेरे ताऊजी श्री शंकारलाल कक्षा चार अर्थात चार जमात तक पढ़े हुए थे और उनकी पत्नी मेरी ताईजी श्रीमती हरभेजी देवी थी। उनके बच्चों में मेरे बड़े भाई ओमप्रकाश, राजबीर सिंह, और बहन मालती देवी उर्फ मोतिनी देवी मात्र

थीं। इसके अतिरिक्त उन दिनों मेरी बुआ श्रीमती राजवती देवी उर्फ रज्जो और बीरवती देवी उर्फ बीरो भी साथ ही रहा करती थीं। और अंत में मेरे पिताजी श्री रतन सिंह का नाम आता है उन्होंने बहुत मेहनत के बाद हाईस्कूल तक पढ़ाई की थी। उनके एक मित्र श्री सोनपाल सिंह अटल लहटोई वाले हमारे परिवार के साथ अकसर रहा करते थे। उन दिनों मेरे पिताजी पढ़ने के साथ-साथ मजदूरी भी किया करते थे। मेरी मां का नाम श्रीमती पाना देवी उर्फ पालो देवी, भी इस संयुक्त परिवार की सदस्यों में से एक थीं। मेरी मां को अपने जीवन में बहुत अधिक पढ़ने का अवसर नहीं मिला परंतु उन्हें जीवन का बहुत व्यवहारिक ज्ञान था। वे उन दिनों घर गृहस्थी के सभी गृह कार्यों के साथ कढ़ाई-बुनाई में भी निपुण थीं। यह उन दिनों शादी करने के लिए उचित योग्यता मानी जाती थी। उन्हीं दिनों अपने मां-बाप के घर उनके गरीबी के दिनों में परेशानियां बढाने के लिए मैं भी आ गया था।

अब अपनी दलित बस्ती के बारे में बताना अपना कर्तव्य समझता हूं। हमारी बस्ती गांव के एकदम कोने में दक्षिण की ओर बसी हुई थी। उन दिनों हमारी बस्ती में घरों के नाम पर फूस की बनी हुई झोपड़ियां और कुछ कच्ची मिट्टी के घर और ओटा ही हुआ करते थे। हमारी बस्ती से होकर आधे से अधिक गांव का गंदा पानी बहा करता था। उन दिनों बारिश के चार महीनों में निकलना बहुत ही मुश्किल हो जाया करता था। इसी बस्ती के एक तरफ लगकर वाल्मीकियों की बस्ती थी। वे लोग बड़ी शान से जानवर अर्थात सूअर पाला करते थे। उन सूअरों का प्रवेश हमारी बस्ती में बिना रोक-टोक और बिना किसी पासपोर्ट के धड़ल्ले से उसी तरह होता था जैसे नेपाल देश में भारत और भारत में नेपाल देश के नागरिकों का प्रवेश सदियों से होता चला आ रहा है। हमारी बस्ती के बाद एकदम सट कर खेतों और घूरों पर हर प्रकार की गंदगी, बा अदब, बिना रोक-टोक के डाली जाती थी। इसी तरफ महिलाएं सुबह और शाम को अधिकतर रात के अंधेरे में और दिन के उजाले में निःसंकोच शौच से निवृत्ति पाती थीं। बरसात के दिनों में तो हमारी बस्ती के लोगों का बुरा हाल हो जाया करता था। मेरे होश संभलने के अनेक वर्षों बाद तक पूरी बस्ती के लोगों का खेतों की मेंढ के बेहद दुर्गंध भरे रास्ते से निकलने में हाल बेहाल हो जाया करता था। उसकी एक तरफ स्त्रियां और दूसरी तरफ हमारी बस्ती के पुरुषों को भी सुबह-शाम न चाहते हुए भी शौच के लिए जाना ही होता था। इसी दुर्गंध भरे माहौल से सट कर उसके दूसरी ओर में मेरी परवरिश और लालन-पालन हुआ था।

2

अब गांव के भूगोल के बारे में कुछ बातें। मेरा जीवन नगौला गांव की उस धरती के रजकणों और परिवेश में पल-पोस कर बड़ा हुआ है जिस गांव के चारों ओर बारिश के दिनों में पानी भर कर एक बड़ा जलाशय बन जाया करता था। यह पूरा गांव कभी एक टीले को छोड़कर बड़ा जलाशय प्रतीत होता था। इस बड़े जलाशय में जाड़े के दिनों में साइबेरिया से प्रवासी लाल-सफेद रंग के लंबी चोंच वाले सारस पक्षी भोजन की तलाश में आकर अपना डेरा जमा लिया करते थे। इस गांव के लिए कोई एक रास्ता नहीं था जिस रास्ते से होकर सूखे कपड़ों में सड़क तक पहुंचा जा सकता हो। सड़क तक पहुंचने के लिए कमर तक के पानी में से होकर जाना होता था। इस गांव में पानी की अधिकता के कारण चारों ओर बहु प्रकार के पेड़-पौधे, तरह-तरह के बागों की हरी वादियों में बहु-भांति के पक्षी किलोले किया करते थे। उन पक्षियों की तरह-तरह की आवाजें मधुर गान सी सुनाई देती थी। इतना ही नहीं सुबह और शाम को बिना नागा के प्यारी कोयल किसी हरे झुरमुट में बैठी मधुर राग-रागिनियां छेड़ा करती थी। अब वहां वह बात नहीं रही है। अब वहां सब मन को मोह लेने वाला वातावरण विकास की अंधी आंधी दौड़ की भेंट चढ़ गया है।

इसी गांव में मेरे परदादा श्याम सेन रहा करते थे। उनके दो बेटे सिद्धूसेन और बुद्धसेन अर्थात मेरे बाबा के अतिरिक्त एक बेटी भी थी। उन्होंने अपनी इस बेटी की शादी संवलपुर में डिबाई के पास के गांव में की थी। इसके बाद मेरे दादा का छोटा सा परिवार इसी नगौला गांव में वर्षों से रहता रहा है।

इस बेहद खूबसूरत गांव में स्वतन्त्रता के ठीक सोलह वर्ष बाद सन् उन्नीस सौ बासठ में मेरा जन्म हुआ। वह शरद ऋतु का सबसे ठंडा महीना था, जब ठंड का प्रकोप अपनी चरम सीमा पार कर रहा होता है, तब भयंकर कड़ाके की सर्दी, बड़े-बूढ़ों और बच्चों को लील रही होती है। ऐसी बर्फानी हवाओं की शरद ऋतु में हड्डी को गलाने और दिल को दहलाने वाले ठंडे मौसम के बीच मेरा इस दुनिया में आगमन हुआ। वह हमारे परिवार के लोगों के बड़ी मुसीबत भरे कष्ट साध्य दिन थे। मुझे मेरी मां ने बताया था। उन दिनों घर में सुबह के वक्त सोंधी के चावल उबालकर खा रहे थे। शाम के समय जौ की रोटी खाई जाती थी। उस समय मेरे बाबा के घर में परिवार बड़ा होने के कारण खाने के किए बड़े मुसीबत भरे परेशानी के

दिन चल रहे थे। घर के लोगों को इस बात की बड़ी चिंता सताये जा रही थी। अब जच्चा-बच्चा के खाने का प्रबंध कहां से? और किस प्रकार किया जाएगा?

मेरी दादी मां फसल के दिनों में घर के नाते-रिश्तेदारों के लिए बीस सेर गेहूं का अनाज अलग रख दिया करती थीं। उस अनाज को घर के काम में विशेष परिस्थितियों में ही प्रयोग में लाया जाता था। अब जच्चा को जौ की रोटी तो नहीं दी जा सकती थी। इस विकट स्थिति में उसी अनाज को घर की चाकी से पिसवाकर मेरी मां को रोटी खिलाई गई थीं। उस दौर में सभी के घरों में अपनी चाकी हुआ करती थीं। सभी घरों में औरतें अपने घर की चाकी से आटा पीस लिया करती थीं। मात्र शादी-विवाह के दिनों में पनचक्की पर आटा पिसवाया जाता था। उन भयंकर सर्दी के दिनों में घर में, न घी था, न तेल था हालांकि उस समय तेल एक रुपये सेर और घी दो रुपये सेर मिला करता था। मां को सूखी रोटी खिलाई गयी। जिससे मां कुछ दिनों में बहुत कमजोर होती गयी थी। मुझे दूध कहां से मिलता। मेरे रोने पर मां और दादी मुझे गुड का मीठा पानी पिला दिया करती थीं। मेरा शरीर एकदम सूख कर कांटा होने लगा।

उन दिनों सभी के कच्ची मिट्टी के मकान हुआ करते थे। इसका नमूना आज भी जस का तस महात्मा गांधीजी के वर्धा स्थित सेवाग्राम आश्रम में देखा जा सकता है। उन कच्चे घरों में बारिश सीलन और पुराने होने के कारण जमीन से लोन लग जाया करती थी। उस नमकीन लोन के चलते घर कुछ अधिक ठंडा रहा करता था। दूसरे उस घर में बिलकुल धूप नहीं आती थी। वह घर इसके चलते बहुत ठंडा रहता था। मां को पहले उस कच्चे घर की अति शीतलता के कारण सर्दी लग गई थी। वह भयंकर जाड़े के दिन और मेरे शरीर की अधिक कमजोरी के कारण बाद में मुझे भी एक दिन ठंड लग गई थी। मेरा शरीर एकदम नीला पड़ गया।

हमारे गांव में एक बड़े उम्रदराज हकीम जी थे। मुझे उनका नाम नहीं मालूम है परंतु उन्हें सब लोग हकीम जी के नाम से पुकारते थे। हमारे पूरे गांव में किसी व्यक्ति को कोई भी बीमारी क्यों न हो जाए। दुनिया की सभी बीमारियों का सस्ते में इलाज उन्हीं के पास हुआ करता था। उनसे आयुर्वेदिक दवाई लाई गयी परंतु उस दवा से कोई फायदा नहीं हुआ था। मेरे बचने की कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी। मेरी दादी को मेरी बड़ी चिन्ता हो रही थी। वह इस स्थिति में कर भी क्या सकती थी। उसने घर के सभी लोगों को बुलाकर मुझे दिखाया था। सब मेरी हालत देखकर बहुत चिन्तित और दुःखी थे।

तब बड़े बाबा और छोटे बाबा दोनों ने मिलकर निर्णय लिया था। उन दिनों मेरी मां को घर में सब बहू कहा करते थे। इसलिए उन्होंने अपनी बहू को उसके इलाज के लिए पीहर भेज दिया। उनके भाग्य से, अपनी ननिहाल में बच्चा शायद बच ही जाए। अब इस बच्चे में बचा ही क्या है? इसके बचने की कोई उम्मीद बहुत अधिक शेष नहीं रह गई है। यह बात घर के सब लोग खुसर-फुसर करते हुए अपनी दबी जबान से कह रहे थे। यह सब बातें खुलकर कहकर घर के लोग शायद मेरी मां को दुःख पहुंचाना नहीं चाहते थे। मेरी मां बीते कल को याद करते हुए कहती है, मैं उसे अपनी छोटी-छोटी और काली-काली पुतलियों वाली आंखों से सदैव निहारता रहता था। मुझे देखकर मेरी मां के आंसू रुकते नहीं रुकते थे। घर के सभी लोगों में मेरी बड़ी दादी मां, छोटी दादी मां, बुआजी, ताऊजी, ताईजी, घर कुनवा और बस्ती वालों की आंखें मुझे ननिहाल भेजते समय आंसुओं से नम हो रहीं थीं।

मेरे बाबा उस दिन मुझे और मां को लेकर दोपहर ढले ननिहाल पहुंच पाये थे। मेरी ननिहाल मंदिर के नगला में थी। वह गांव उस समय अलीगढ़ शहर से चार-पांच कोस की दूरी पर हुआ करता था। अब अलीगढ़ शहर कई गुना अधिक बहुत बढ़ गया है। मेरे नाना का नाम भूरे ठेकेदार था। गांव के लोग उन्हें सब प्यार से ठेकेदार कहते थे। वैसे वह भी खदान में मजदूरी ही करते थे। ननिहाल में पहुंचते ही पूरी बस्ती के लोगों को पता चल गया। भूरे ठेकेदार की लड़की और धेवता बहुत बीमार है। इसलिए ठेकेदार की लड़की को देखने के लिए घर पर लोगों की भीड़ जमा हो गई। मेरे नानाजी को खदान में खबर कर दी गयी। तुम्हारो धेवता और बेटी बहुत बीमार हैं।

मेरे नानाजी भी बहुत धनवान नहीं थे। वह अपने भाई को साथ लेकर कंकर की खदानों में कंकर की खुदाई तथा उनकी ढुलाई का काम किया करते थे। उनकी एक बैलगाड़ी भी थी जिसे लेकर वे दोनों भाई खदान में काम करते थे। उस काम से उन्हें दाल-रोटी मिल जाया करती थी। उन दिनों मंदिर नगला गांव के सभी लोग लगभग यही काम किया करते थे। उस समय अधिकतर सड़कें कंकर की ही बनाई जाती थी। कंकर का दूसरा उपयोग उसको चूना के साथ पीसकर बनाई गयी सीमेंट से अमीरों के पक्के घर और हवेलियां भी बनाई जाती थीं।

उस दिन नानाजी खदान में अपना काम छोड़कर पैदल ही अपने गांव चल पड़े थे। उस समय सवारी की कहां व्यवस्था होती थी। उन दिनों बैलगाड़ियां, ऊंटगाड़ियां और तांगे यातायात के मुख्य साधन हुआ करते थे। इन साधनों का उपयोग सम्पन्न

लोग ही किया करते थे। उस दिन वे मुझे और मां को पैदल ही लेकर अलीगढ़ के सबसे अच्छे डॉक्टर को दिखाने के लिए ले गए थे। उस डॉक्टर ने कहा था। बच्चे में कोई जान नहीं बची है। भगवान ने इसे जिंदगी दी होगी, तब इस बच्चे का कोई मारा नहीं है। उस डॉक्टर की दवा से कुछ दिनों में मुझे और मां दोनों को फायदा होने लगा था।

ननिहाल में अच्छे खाने के साथ अच्छी तीमारदारी से हम दोनों मां-बेटे की हालात में बहुत शीघ्रता से सुधार होने लगा था। मां कहती है मैं वहां पर लगभग दो महीने के नियमित इलाज के बाद कुछ-कुछ हंसने लगा। उस समय मां लगभग चार-पांच महीने ननिहाल में रही थी।

3

यह बात मेरे जन्म के तेरह साल पहले की है। जब मेरी मां ने मेरे इस दुनिया में आने से पहले बहुत से दुःख सहे और बिना कुछ कहे अनेकों कष्ट बर्दास्त किए थे। मेरी मां की शादी बहुत कम लगभग ग्यारह वर्ष की उम्र में कर दी गई थी। यह भी कोई शादी की उम्र होती है। यह उनके अभी खेलने के दिन थे। उस दौर में मां-बाप अपनी लड़की के हाथ पीले कर अपने कर्तव्य से मुक्त होकर गंगा नहा लिया करते थे। उन दिनों लड़की की कोई पसंद, नापसंद नहीं हुआ करती थी। न उससे कभी उसकी राय पूछी जाती थी। जिस किसी के साथ व्याह कर दिया। वही उसका भाग्य विधाता और उसके लिए सब कुछ होता था। उस गाय की तरह जिसके गले में बंधा हुआ पगहा जिस किसी व्यक्ति के हाथों में दे दिया जाता है। वह उसी के साथ चली जाती है।

भारत में अब तक एक अबला नारी की यही स्थिति रही है। उसे घर में भी घूंघट में रहकर अपने घर के सभी कामों का बोझ ढोना पड़ता था। घर की सबसे छोटी बहू है, तब वह प्रत्येक परिस्थिति में घर के लोगों का दिया हुआ सभी काम करेगी। सबके कपड़े धोएगी, सबके लिए खाना बनाएगी, इसका मतलब वह उफ् किये बिना घर का सब छोटा-बड़ा काम मरते दम तक करती रहेगी। इस सब काम से फुर्सत पाने के बाद में घर के लोंगों का बचा-खुचा और रूखा-सूखा खाना स्वयं खाएगी। वह इतनी अभागिन थी, उसे रूखी रोटी के सिवाय कभी कुछ खाने को नहीं

मिलता था। उससे जब कभी आटा कम पिस पाता था, तब उसे भूखे पेट ही सो जाना पड़ता था। उस घर में उसके मां-बाप थोड़े ही बैठे हुए थे जो उसके दुःख को सुनकर दुःखी होते और कम से कम एक कतरा आंसू का बहा देते।

हमारे छोटे बाबा छोटी अम्मा के साथ घेर पर जीवन भर अकेले ही रहे। उन्होंने बड़े भाई के बच्चों को अपना माना। बड़े बाबा सकटू सेन होली, दीपावली ही नहीं बल्कि हर तीज त्योहार को खाना घेर पर अपने छोटे भाई को भिजवाते रहे थे। हमारा घर और घेर बहुत अधिक दूर नहीं थे। घर की हर खबर घेर पर अवश्य पहुंचती थी। इतना ही नहीं घर में वर्षा ऋतु के दिनों में गुड के चीला बनाये जाते थे। तब छोटी अम्मा और बाबा खबर भेजते थे। छोटी बहू हमारे लिए भी मीठे और नोंन के चीला भेज देवे, कहीं भूल न जाए। यह उनका प्यार था।

मेरी मां सबको चीला बनाकर खिलाती थी परंतु उसे ही चीला खाने को नहीं मिलते थे। जो चीला बनाते समय बिगड़ जाते और जो तवे पर से छूट नहीं पाते थे, उन्हें करछुली से खुरचकर हटाया जाता था। वह टूट जाते थे, कभी-कभी कोई चीला आंच का ताप अधिक लगने के कारण कुछ जल सा जाता था। घर के लोग उन चीलों को नहीं खाते थे। उस वक्त अधिकतर वही चीले खाने से बच पाते थे। मेरी मां का वही जले हुए चीले उस शाम का भोजन हुआ करते थे। वह उन्हें ही बड़े चाव से भूखे पेट की क्षुधा को शांत करने के लिए खा लिया करती थी। नारी जीवन त्याग और बलिदान का प्रतीक है। वह परिवार के लोगों और अपने सब बच्चों को पहले खिलाती है। उनकी परवरिश करती है। उनका लालन-पालन करती है और फिर स्वयं खाना खाती है।

संतोषी सदा सुखी। यह सब कुछ बर्दास्त करने के अलावा, वह बेचारी अबला और कर भी क्या सकती थी। इसके अतिरिक्त उसके पास और कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। उसके जीवन में इतना ही रहता, तब भी ठीक ही था परंतु उसकी अपनी बदनसीबी के कारण उसे बरसों तक मां बनना नसीब न हुआ। उसकी सूनी गोद वर्षों बच्चे के लिए तरसती रही थी। अब उस पर घर के अपने लोग बांझ होने की तोहमत लगाने लगे थे। सब घर के लोग चुपके-चुपके देर रात तक बातें करते रहते थे। अब घर में उससे ठीक तरह से कोई बात नहीं करता था। उसे बात-बात पर ताने दिये जाने लगे थे। अब उसे अपने ही घर के लोग, घर से निकालने की घृणित साजिश रचने लगे थे जिस घर में कभी उसे बड़े लाड़-प्यार के साथ विवाह करके लाया गया था।

जब हमारे घर में मेरी मां को लेकर बात अधिक बढ़ गई और घर में आए दिन कलह होने लगी, तब परिवार के बड़े बाबा और छोटे बाबा बुद्धसेन ने इस प्रतिदिन की समस्या के निवारण के लिए घर के सभी सदस्यों के साथ मिलकर विचार-विमर्श किया था। इस संबंध में कई घंटे तक परिवार के लोगों द्वारा अपने-अपने तर्कों के साथ बहुत बहस और गरमा-गर्मी हुई। अंत में मेरे छोटे बाबा ने अपने बड़े भाई सकटू सेन के साथ मिलकर निर्णय लिया था। आज के बाद इस घर में छोटी बहू को घर से निकालने के संबंध में कोई बात नहीं करेगा। इसमें भला इस अबला का क्या दोष है।

हमारे खानदान को ही किसी का श्राप लगा हुआ है परिवार के छोटे बेटे को कोई संतान नहीं होती है। मेरे छोटे बाबा ने बड़े भावुक होते हुए कहा! मेरे घर में भी तो कोई संतान नहीं है तब मुझे भी अपनी मेहरारू को इस घर से निकाल देना चाहिए क्योंकि उसे कोई संतान नहीं हुई है। इसके साथ-साथ उसे इस जमाने में दर-दर की ठोकर खाने के लिए छोड़ देना चाहिए। प्रत्येक लड़की अपनी शादी के बाद, अपने उस घर परिवार को छोड़कर चली आती है जहां पर वह पली-बढ़ी होती है, जहां उसने जन्म लिया होता है। जहां पर उसने अपने बचपन के खूबसूरत पल बिताए होते हैं। आप लोगों ने अपने ठंडे मस्तिष्क से कभी यह भी सोचा होता, जिस लड़की को तुम घर से निकालने की बात कर रहे हो, उस लड़की के दिल पर क्या गुजरेगी।

वह बेघर होकर अपने मुंह से क्या-क्या बद्दुआ देगी। आपको इसका भी खयाल है उसे इस घर के बड़े ब्याह कर लाये हैं उसने अपने जीवन का सुख-दुःख इस घर के लोगों के साथ मिलकर भोगा है। वह बिना शिकायत के दिन भर घर का सारा काम करती रहती है तब सबके खाने के बाद उसे रूखी-सूखी दो रोटी मिलती हैं। इस घर की बहू के मुंह से उन दो रोटियों के निवाले को भी छीन लेना चाहते हो। तुम लोग घर की बहू को मां न बनने की खूब सजा दे रहे हो। यही तुम लोगों का इंसाफ और तुम्हारी मानवता का तकाजा है।

इस देश में विधाता ने यही औरत का भाग्य लिखा है। यह तो आप लोगों का उस अभागिनी के साथ कोई इंसाफ नहीं हुआ। आप सभी लोग अपने कान खोलकर सुन लें। आज के बाद घर में छोटी बहू को निकालने के संबंध में कोई बात नहीं करेगा। बहू इसी घर में सबके साथ रहेगी। हम सब लोग जैसी रूखी-सूखी रोटी खाते हैं वह भी हमारे साथ उसी तरह की रूखी-सूखी रोटी अपने जीवित रहने तक खाती

रहेगी। यह अंतिम फैसला है। अगर कोई हमारे इस फैसले को नहीं मानता है तब वह इस घर से बड़ी खुशी के साथ जा सकता है।

आज वर्षों बाद पुनः विचार करने पर मुझे लगता है उन दिनों श्राप लगने की बात स्वीकारना भले ही उनका अंधविश्वास के साथ लिया गया निर्णय था परंतु कुछ भी सही इस अंधविश्वास ने एक अबला को उस दौर में बेघर होने से बचा लिया था। यह बात लगभग 1951 की रही होगी। उस समय भारत के ग्रामीण समाज में शिक्षा का स्तर भी बहुत कम था। सभी जन अंधविश्वासों की गहरी नींद में जकड़े हुए थे। उस समय दुनिया भाग्य, भगवान, देवी-देवताओं, सयाने, ओझाओं और पीर-फकीरों की दुआओं और पोंगा पंडितों के कहे अनुसार और उनकी पत्रा के लिखे अनुसार घोर अन्धकार में धक्का-मुक्की करते हुए चला करती थी।

4

हमारा गांव भारत के अस्सी हजार गांवों में से एक था। भारत के गांवों की प्रथम विशेषता उन दिनों संयुक्त परिवार हुआ करती थी। हमारा परिवार भी सभी दूसरे परिवारों की तरह एक संयुक्त परिवार था। जहां कई पीढ़ियों के लोग एक साथ, एक छत के नीचे, हंसी-खुशी के साथ मिल-जुलकर के अपना जीवन-यापन करते थे। घर के सब काम मिलजुलकर किया करते थे। इसमें किसी ने अधिक और किसी ने कम किया, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं रखा जाता था। सब बड़ी हंसी खुशी के साथ रहते थे। इस तरह सुख-दुःख भोगते हुए हंसते-बोलते दिन कट जाया करते थे।

खेती का काम बड़ी मेहनत और कसाले का काम होता है। फसल बोने के बाद समय पर पानी और नियमित देखभाल कें बाद कुछ मिलता है। किसी प्राकृतिक विपदा के आने पर कभी-कभी उससे भी हाथ धोने पड़ते हैं। उस दौर में यूरिया, डीएपी जैसे अंग्रेजी खादों का बहुत अधिक प्रचलन नहीं था। सब लोग गोबर की खाद खेतों में डाला करते थे। उस जमाने में हमारे खेतों में पता नहीं क्यों पैदावार बहुत कम हुआ करती थी। हमारे घर के सभी जन उस थोड़े से जमीन के टुकड़े में लगे रहते थे। मेरे बाबा दिनभर खेतों पर ही पड़े रहते थे। उनका विचार था, ठाले बैठे से बेगार ही भली है। इसके सिवाय उन्हें और कोई काम नहीं आता था हालांकि उस जमीन से घर के लोगों की खाने की पूर्ति नहीं के बराबर हो पाती थी।

इस तंगी से बचने के लिए मेरे पिता के बड़े भाई घर में कपड़े सिलने का काम किया करते थे। मुझे नहीं मालूम उन्होंने कपड़े सिलने का काम कब और कहां पर सीखा था। वह काम करना जानते थे। सब गरीब गुरवा उन पर ही कपड़े सिलवाते थे। ताऊजी से कई बार उनके कपड़े खराब हो जाया करते थे लेकिन वे उनसे उस कपड़े के पैसे नहीं लिया करते थे। उन्हें सिलाई के काम में बहुत से नुकसान हुए जैसे-लोग कई बार उनकी दुकान से कपड़े निकाल ले जाते थे। इन कपड़ों की भरपाई भी बड़ी मुश्किल से किया करते थे। इस काम से उनका गुजारा भी नहीं चल पाता था। वह फ़िर भी इसी काम को करते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें ताश का खेल खेलने का बड़ा शौक था। जब वह सुबह अपनी दुकान में काम शुरू करते थे। तब ही मुहल्ले के ठल्लऊआ लोग उनके पास आ जाते थे। बस काम बंद और जुआ शुरू हो जाता था।

ताऊजी बड़े भावुक व्यक्ति थे। वह एक और काम किया करते थे, रात में फुर्सत के क्षणों में नल दयमंती का ढोला गाया करते थे। उन्हें कभी-कभी पूरी-पूरी रात ढोला गाते हुए निकल जाती थी। वह सारंगी बजाते हुए ढोला गाते थे। हमारे यहां सारंगी को चिकाड़ा भी कहते हैं। उनका चिकाड़ा बजता नहीं था बल्कि वह उनके साथ गाया करता था। उनकी बड़ी पैनी और बड़ी सुरीली आवाज थी। मैंने अपने जीवन में बहुत से स्वांग देखे और ढोला सुने हैं परंतु ऐसा ढोला गवैया न देखा और न कभी सुना है। उनके ढोला गाने के दौरान कोई बीच में उठकर नहीं जा पाता था। सब मंत्रमुग्ध से होकर सुनने में इतने तल्लीन हो जाते कि उन्हें अपनी सुध-बुध भी नहीं रहती थी। उनकी तंद्रा बीच में जब भंग होती थी, जब ताऊजी ढोला के गाने को दम लेने भर के लिए रोकते थे। वे जब रात को ढोला गाने को बंद करने के लिए कहते थे। तब लोग उनसे शंकर भैया कहकर थोड़ा और गाने के लिए बार-बार अनुनय-विनय किया करते थे।

बापू और मेरे छोटे बाबा कभी किसी की मजदूरी करने के लिए नहीं गए थे। वह अपनी थोड़ी सी जमीन में काम करते हुए किसी तरह से अपना गुजारा कर लिया करते थे। जब परिवार बड़ा हो गया, तब घर का खर्च भी बड़ गया था। इसके लिए मेरे चाचाजी भी मजदूरी करने लगे थे। घर भर के लोग अपने-अपने काम में जुटे रहते थे। तब जाकर कहीं गुजारा हो पाता था।

एक बार बरसात के दिनों में सूखा पड़ गया। चारों ओर हाहाकार मचने लगा। सोंधी, धान की फसल तैयार होने वाली थी। खेतों में बड़ी-बड़ी ईख खड़ी हुई थी।

मेरी मां कहती है। मैं उस समय लगभग तीन साल का था। उस समय खूब पैदल चलता, उछल-कूद करता और दौड़ता भागता था।

हमारे खेतों की फसल को उन दिनों सूखे की मार से बचाने के लिए परोये डाले जा रहे थे। परोया चमड़े की परातनुमा बर्तन हुआ करता था। उस परात के दोनों ओर दो-दो रस्सियां बांधी जाती हैं। उन रस्सियों को दो आदमी पकड़कर नीचे से पानी भरकर ऊपर खेत की नाली में डालते जाते थे। वह पानी खेत की फसल में चलता रहता था। इस काम को करने वाले सभी लोग भोर में ही खेतों पर चले जाते थे। सभी किसान धूप चढ़ने के पहले सदैव अपने-अपने काम निपटा लेना चाहते है वैसे भी मेहनत का काम दिनभर और लगातार नहीं किया जा सकता है। अधिक धूप चढ़ने पर काम रोक देते और आराम करते थे। दिन ढले फिर से उस काम को प्रारम्भ कर देते थे।

मेरे बाबा और चाचा धान की फसल सोंधी में परोये से पानी लगाने के लिए सुबह-सुबह भुकभुके ही चले गए थे। कलेऊ भी नहीं करके गए थे। उस दिन मेरी मां ने समय से खाना बना दिया था लेकिन घर का कोई भी सदस्य खेतों पर खाना देने के लिए जाने को तैयार नहीं था। उस समय लगभग ग्यारह बजे का समय रहा होगा। घर में दादी, ताईजी, बुआजी, ताऊजी कई जन थे, सब खेतों पर जाने की मना कर रहे थे। धूप अधिक हो गई थी। इसलिए उस चिल-चिलाती धूप में कोई खेतों पर जाना नहीं चाहता था।

जब मेरी मां के सामने कोई विकल्प नहीं रहा। तब वह स्वयं ही खाना देने के लिए खेतों पर जाने लगी। मां की गोद में मेरी छोटी बहन सरोज भी थी। वह सिर पर रोटी रखकर और हाथ में पानी लेकर खेतों पर जाने को तैयार हुई। तब में भी अपनी मां के साथ जाने के लिए जिद करने लगा। बच्चों का स्वभाव होता है। वह अपनी मां के साथ ही रहना पसंद करते हैं चाहे उन्हें कितनी भी परेशानी क्यों न उठानी पड़े। उस दिन मेरी मां मेरे बालमन की बालहट के सामने मजबूर हो गयीं और वह कर भी क्या सकती थी? संयोग से उस दिन घर के किसी व्यक्ति ने मुझे खेतों पर जाने से रोकने का प्रयास भी नहीं किया था।

मेरी मां खाना लेकर मेरे पीछे-पीछे चल रही थी। उस दिन खेतों पर खाना ले जाने में कुछ अधिक विलंब हो गया था। खेतों पर काम करने वाले लोग बार-बार गांव की ओर देखते रहते हैं। उन्हें मेहनत का काम करने से बहुत अधिक भूख लगती है। हमारे खेतों पर पहुंचते ही बाबा और मेरे चाचा सबसे पहले भोजन करने

लगे थे। इसके बाद में उन्होंने खाना खाते हुए पूछा! आज खाना इतनी देर से क्यों आया है? घर के सब लोग कहां चले गए हैं? हम खेतों पर जी-तोड़ मेहनत करते हैं परंतु वे लोग इतना भी नहीं कर सकते हैं कि खेतों पर समय से खाना भी पहुंचा दिया करें।

मेरी मां ने बड़ी धीमी आवाज में उत्तर दिया था। घर में खाना समय से बनने के बाद भी कोई खेतों पर खाना लेकर आने के लिए तैयार नहीं हुआ, तब हारकर मुझे इन बच्चों को साथ लेकर आना पड़ा है। धीमी आवाज में इसलिए मेरे बाबा घर के बड़े थे, उनके सामने ऊंची आवाज में कैसे बात की जा सकती थी। उस दौर में चमारों में ही नहीं सभी छोटी जातियों के लोगों की बहू-बेटियों को बोलने चालने, उठने-बैठने, रहने आदि के तौर-तरीके सिखाये जाते थे।

जब बाबा और चाचा भोजन कर रहे थे, तब तक मां ने जानवरों के लिए हरे चारे की घास और ईख के पत्ते काटकर एक गठरी बना ली थी। बाबा और चाचाजी के खाना खाने के बाद मां घास की गठरी को सिर पर उठवाकर बर्तन-भांडे लेकर वापस घर की ओर चल पड़ी थी। उसे घर पर शाम के खाने के लिए आटा पीसना होता था। कपड़े भी धोने होते थे।

मैं उस दिन अचानक चलते समय मां से गन्ना लेने के लिए हट कर बैठा था। तब मां ने मेरे लिए अपने पैर से एक गन्ना नीचे नवाकर तोड़ दिया था। तब मां ने उस गन्ने को उठाने के लिए मुझसे कहा था। मैं उस गन्ना को उठाने के लिए जैसे ही झुका। उसी समय भेड़िये ने बिजली के कौंधने की फुर्तीली तेजी के साथ मेरे सिर को अपने मुंह में दबा लिया। यह काम निमिष, मात्र समय में अर्थात एक क्षण भर में हो गया था। इस वीभत्स्य दृश्य को देखते ही मां के तो होश उड़ गये थे। भेड़िया मुझे अपने मुंह में दबाकर जैसे ही चलने को हुआ, उसने अपने सिर की गठरी दूर फेंक दी और अपने हाथ में मेरा कुर्ता पकड़ लिया। वह कुर्ते को पकड़ कर भेड़िये के साथ-साथ चलने लगी। भेड़िया मुझे लेकर ईख के बड़े खेत में घुस गया था।

मेरी मां घर की छोटी बहू थी। वह किसी भी परिस्थिति में अपने ससुर और बडों के सामने उन दिनों कैसे ऊंची आवाज में बोल सकती थी। उसने निमिष मात्र में अपने मन में बेटे के लिए भेड़िये से डटकर मुकाबला करने की ठान ली थी। वह किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में हतप्रभ अपने बेटे को भेड़िये से छुड़ाने के लिए अकेली ही मैदाने जंग में कूद पड़ी और उससे जूझने लगी। उसे उस समय मेरे बचने की

बहुत कम उम्मीद लग रही थी, फिर भी एक वीरांगना की तरह मैदान में आखिरी सांस तक लड़ना चाहती थी। यह एक मां के रूप में इनसान और आदमखोर जानवर भेड़िया के आमने सामने की लड़ाई थी। इस देश के पुरुषों ने तो बहुत से मौकों पर हाथ आजमाये थे। आज एक स्त्री, मां के रूप में आदमखोर से लड़ने में जुटी थी। आदमखोर भेड़िया भी अपने शिकार को किसी हालत में छोड़ने को तैयार नहीं था। इधर एक मां भी अपने बेटे के रूप में मुझे छोड़ने को तैयार नहीं थी। जानवर और इंसान दो जिद्दी आपस में भिड़े हुए थे। कोई किसी से छोटा बनने और हार मानने को तैयार नहीं था। मुझे होश नहीं था। खून के फव्वारे चल रहे थे। मेरा पूरा कुर्ता खून से तर हो गया था। एक बार तो मेरी मां के हाथ से कुर्ता छूट भी गया था लेकिन भेड़िये के दुर्भाग्य से ईख बहुत घनी थी, उसमें भेड़िया तेजी से भाग ही नहीं सकता था। मेरी मां उस भेड़िये के पीछे-पीछे चल रही थी। भेड़िया बहुत कोशिश कर रहा था। उसे खुली जगह मिल जाय और वह वहां से चंपत हो जाए। वह वहां से रुक-चक्कर होकर मुझे अपना निवाला बना ले।

मां ईख में भेड़िये के पीछे-पीछे घिसटते-घिसटते कुछ-कुछ बेहोशी की हालत में पहुंच चुकी थी। भेड़िये को मेरे साथ-साथ मेरी मां को भी खींचना पड़ रहा था। वह मुझे आगे की ओर खींचता था और मां मुझे पीछे को खींचती थी। यह दृश्य महाभारत के चक्रव्यूह की लड़ाई का सा बन गया था। अभिमन्यु बड़े-बड़े योद्धाओं को पीछे खदेड़ देता था। अकेला अभिमन्यु सब कौरवों पर भारी पड़ रहा था लेकिन उसे चक्रव्यूह में से निकलना नहीं आता था। वह बहुत देर तक युद्ध में डटा रहा था। वह चक्रव्यूह से बाहर निकलने की लाख कोशिश करता था परंतु सफल न हो सका था क्योंकि उसकी मां उस समय सो गई थी, जब अर्जुन उसे चक्रव्यूह में से निकलने की विधि के बारे में बताने जा रहे थे। मेरी मां एक बेटे की मजदूर मां थी। वह कैसे निद्रा के आगोश में सो सकती थी। वह जागते हुए अपने बेटे के लिए भेड़िये के साथ जंग में उसके दांत खट्टे कर रही थी।

भेड़िया इस घंटों की खीचा-तानी, थकान, घबराहट और हड़बड़ी में एक बार ईख के झुंड के बीच से निकलने की गलती कर गया। वह इसके बाद उस झुंड में से मुझे लेकर निकलने में कामयाब न हो सका। वह अपने मुंह में मुझे दबाये हुए घंटे भर से घूमता फिर रहा था। उसका मुंह थक सा भी गया होगा। कारण चाहे जो रहा हो मैं उसके मुंह की गिरफ्त से बाहर निकल गया था। भेड़िये के मुंह से एक

बार निकलते ही मां ने विजश्री का शंखनाद करते हुए मेरे ऊपर गिरकर अपना अधिकार जमा लिया था।

मां के हाथ में इस पूरी घटना के दौरान मेरी छोटी बहन सरोज भी लगी हुई थी। हिम्मत की बात तो यह है इस पूरी घटना के दौरान उस वीर मां ने अपने बेटे के लिए अपनी बेटी को नहीं छोड़ा था। वह चाहती तो बेटे के लिए बेटी को छोड़ सकती थी। अपनी बेटी को कहीं फेंक सकती थी। उसने दोनों को चुना था। एक को भी बेड़िए के लिए निवाला नहीं बनने दिया था। अब उसने मेरे ऊपर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। इसके बाद भी भेड़िया वहां काफी देर इस इंतजार में खड़ा रहा। यह दोनों में से एक को छोड़कर दूसरे को देखने की गलती कर बैठे। भेड़िया मेरी मां की आंखों में आंखें डालकर और मां भेड़िया की बड़ी-बड़ी आंखों में आंखें डालकर बहुत देर तक एक दूसरे को डराने की बहुत कोशिश करते रहे थे।

भेड़िया मेरी मां को ईख के बहुत बड़े खेत में घुमाता फिर रहा था। ईख के खेत से गन्नों के धड़ा-धड़ चटखने और टूटने की आवाजें निरंतर आ रहीं थी। इससे खेतों पर काम कर रहे लोगों को पता चल गया था। भेड़िये ने किसी बच्चे को उठा लिया है लेकिन किसी को कुछ पता नहीं लग पा रहा था। हादसा कहां पर हुआ है। मेरे बाबा और चाचा का बुरा हाल हो गया था। हम दोनों मां-बेटे उनके सामने अभी कुछ देर पहले खेतों पर से घर के लिए निकले थे। सब शोर मचा रहे थे। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था, इस दुःख की घड़ी में क्या किया जाए।

भेड़िये सदैव कम से कम दो और चार अथवा छह के समूह में रहते हैं। वह उस दिन दो भेड़ियों का जोड़ा था। मैं जब अपनी मां के साथ में खेतों पर आ रहा था। वे तब से हमारा पीछा कर रहे थे। उन्हें रास्ते में मुझे उठाने का अवसर नहीं मिला था। यह भी हो सकता है वह हमसे कुछ दूर रहे हो इसलिए वहीं आस-पास कहीं फसल में छिप गए थे। भेड़िया बहुत ही चालक और होशियार जानवर होता है। उस दिन उन्हें इस बात का बिलकुल अंदेशा नहीं था। एक बच्चे के लिए इतना बड़ा बखेड़ा खड़ा हो जाएगा। एक बार भेड़िये के मुंह में कोई बच्चा आ गया, तब उसे उसके मुंह से निकालना बहुत मुश्किल काम होता है। वह भी जीवित तो कभी संभव ही नहीं होता है।

उस दिन हमारे खानदान के बड़े ताऊ श्री देवी राम के भानजे तेजसिंह अपने मामाजी के जानवरों को पसाई में चरा रहे थे। भेड़िया पूरे बारह बीघे के ईख के चक

में घूमते-घूमते पसाई की ओर लेकर आया था। पसाई की ओर खुली जगह थी परंतु मेरे घर के लोगों को यह बाद में मालूम हुआ था वहीं थोड़ी दूरी पर दूसरा भेड़िया उसका इंतजार कर रहा था। तेजसिंह गन्नों के टूटने की आवाज बहुत देर से सुन रहे थे। इन आवाजों से उनके दिल की घबराहट भी बढ़ती जा रही थी। उन दिनों भेड़िये अकेले बड़े आदमी पर भी आक्रमण कर दिया करते थे। इसलिए उन दिनों आदमी अकेले जंगल में खेतों पर लाठी लेकर जाने में भी बड़ी मुश्किल से हिम्मत कर पाता था।

तेज सिंह ने जब भेड़िये को ईख के बाहर से अंदर की ओर जाते देखा। वह घबराहट में हल्ला मचाने लगे। इस आवाज को सुनकर सभी लोग भयंकर हो-हल्ला करते हुए, उसी ओर सरपट दौड़ पड़े। मां को भेड़िया इसी ईख में घंटे भर से इधर-उधर घुमाता फिर रहा था। सभी लोग तेज सिंह की बताई गई निशानी के आधार पर लाठी और बल्लम लेकर ईख के खेत में अंदर की ओर ढूंढने के लिए समूह में आगे बढ़ने लगे। उन लोगों को जिधर से आवाज सुनाई दे रही थी। उसी तरफ तेजी से आगे बढ़ते जा रहे थे। अंत में ईख में तलाश रहे लोगों ने मां की सिसकियों की आवाज सुन ली।

मां बताती है लोगों ने पहले मेरे शरीर की जांच की थी। मुझे भेड़िया के चार दांत लगे थे। एक दांत मेरे गाल पर लगा था जिसने मेरे प्राणों की रक्षा की थी। शेष तीन दांत मेरी गर्दन पर लगे थे। इस कारण मेरे शरीर का बहुत सा रक्त निकल गया था। बस किसी तरह रुक-रुक कर सांस चल रही थी। इससे उन्हें मेरे जीवित होने का विश्वास हो गया था। तब लोग उसी हालत में मुझे चादर में लपेट कर दवाखाने की ओर लेकर दौड़ पड़े थे। दवाखाने जाते समय गांव के लोगों का हुजूम साथ-साथ बल्लम-भाले लेकर चल रहा था।

यह भीड़ जिधर से निकल जाती थी। उसी तरफ सबका एक ही सवाल होता था। क्या हुआ? क्या हुआ?

इस प्रश्न का एक ही उत्तर होता था! भेड़िये ने बालक को उठा लिया परंतु उसे बच्चे की मां ने भेड़िये के मुंह से निकाल लिया है।

तब लोग अपने खुले दिल से प्रशंसा करते हुए कहते थे! धन्य है वह मां जिसने अपने बेटे को काल के गाल में से बचा लिया है। सभी लोग बड़े संतोष की सांस लेकर कहते थे। बड़ा अच्छा हुआ। उसके बाद जैसे ही उन्हें इस हादसे की जानकारी होती थी। वह लोग चार और लोगों को इस घटना को बताते थे। उन दिनों

इस घटना की बीस-बीस कोस तक जानकारी हो गई थी। इस घटना की जानकारी दूर-दूर तक होने के पीछे एक और कारण था। वह यह था, उस दौर में भेड़ियों ने बहुत से बच्चों को उठा कर अपना निवाला बना लिया था लेकिन आज तक कोई बच्चा जीवित भेड़िये के मुंह से नहीं छुड़ाया जा सका था। यह वर्षों का इतिहास रहा था। भेड़ियों ने जिस बच्चे को उठा लिया, वह उनका हो गया था।

मेरी मां बताती है किसी ने मां की गोद से मेरी बहन को लिया था। वह ईख के बड़े खेत में भेड़िये को खींचते हुए और स्वयं उसके द्वारा घिसटते और खिंचते हुए निढाल सी हो गई थी। वह उस समय बड़ी मुश्किल से चल पा रही थी।

मेरे छोटे बाबा दुर्गा के बड़े भक्त हुआ करते थे। वह उस तंगी के दौर में भी दस बार नगरकोट में दुर्गा के दर्शन कर आए थे। वह क्वार और चैत के महीने में पड़ने वाले नवदुर्गा के दिनों में नौ दिन मात्र एक लौंग का जोड़ा खाकर रहा करते थे। गांव के लोग उनका बड़ा सम्मान किया करते थे। जब उन्होंने मुझे घायल और अर्धचेतनता की अवस्था में जैसे ही देखा। तब उनकी आंखों में भी आंसू छलछला आए थे। मेरे शरीर से बहुत अधिक रक्त फव्वारों की तरह जाने और भेड़िये के दो बड़े दांतों के गहरे जख्मों से घायल होने के कारण बचने की उम्मीद बहुत कम नजर आ रही थी। मेरे सिर में भेड़िये के चार कीले अर्थात बड़े दांत लगे थे। एक कीला मेरे गाल में छेद करके पार हो गया था। इस कारण मेरी गर्दन एक तरफ को झुक सी गई थी।

उन दिनों मेरे छोटे बाबा को अपनी दुर्गा देवी पर अटूट विश्वास था। उन्होंने हताश होकर अपने दोनों हाथ उठाकर दुर्गा से मेरे प्राणों की भीख मांगी थी। मेरे सिर पर हाथ रखकर मुझे बचने और पूरी तरह ठीक होने की स्थिति में नगरकोट में आकर दर्शन करवाने के लिए वचन दे दिया था। डॉक्टर घंटों मेरी गर्दन और गाल पर टांके लगाने में व्यस्त रहे थे। मैंने कई दिन इलाज चलते रहने के बाद अपनी आंखें खोलीं थीं। इसके बाद भी महीनों इलाज चलता रहा था। मैं तब जाकर कुछ ठीक हो पाया था। इसके बाद ठीक पांच वर्ष के होने पर मेरे छोटे बाबा मुझे दुर्गा की जात करवाने के लिए नगरकोट की जात्रा पर ले गए थे।

उस दिन लोगों ने अपने खेतों पर कोई काम नहीं किया था। सब मेरे और मां के साथ-साथ गांव को लौट पड़े थे। इस हादसे से लोगों के दिल में एक डर बैठ गया था। गांव के लोग कई दिनों तक जंगल में काम करने नहीं गए थे। वह उसके बाद जंगल में समूह बनाकर काम करने जाया करते थे।

भेड़िये ने बच्चा उठा लिया है। यह खबर गांव में आग की तरह फैल गयी। गांव से लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। सभी तरफ मेरी मां की बहदुरी की चर्चा हो रही थी। उस दिन कस्बे में भी इसी हादसे की चर्चा रही थी। मेरे गांव के सातों जाति के लोग मेरे घर मुझे और मेरी बहादुर मां को देखने के लिए आए थे। गांव के बड़े घरों की औरतें, ठाकुरानी, जो कभी घर से नहीं निकला करती थीं, वह भी उस दिन मुझे और मेरी मां को देखने के लिए आयीं थीं। मेरी ननिहाल में उसी गांव के किसी आदमी ने बता दिया था। भूरे ठेकेदार तुम्हारा धेवता भेड़िया ने उठा लिया है। उसके दूसरे दिन मेरी ननिहाल से कई लोग बैलगाड़ियों में भरकर मुझे देखने के लिए आये थे।

गांव के लोगों को किसी तरह का कोई मुद्दा मिल जाए। उसी घटना को अलग-अलग लोग, अपना-अपना थोड़ा-बहुत नमक-मिर्च लगाकर, नये-नये ढंग से सुनाते रहते हैं। उन दिनों लोग भी मन लगाकर उन्हीं बातों को बड़े चटखारे देकर सुनते रहते थे। बस इसी मुद्दे पर कई-कई दिन बात चलती रहती थी। उसके साथ-साथ विगत वर्षों में घटी उससे मिलती-जुलती घटनाएं भी सुनाई जाती थीं। उन दिनों लोगों के पास समय काटने का और कोई साधन जो नहीं हुआ करता था। अलाव पर बैठकर लोग आपस में मेरे बारे में महीनों बात करते रहे थे,

यह बच्चा अब नहीं बचेगा। इसके पूरे शरीर में जहर फैल जाएगा। भेड़ियों के सूंघने की शक्ति बहुत तीव्र होती है। भेड़िये घर के अंदर से ढूंढकर अपने शिकार को फिर से उठा कर ले जाते हैं। इस बच्चे के साथ-साथ दूसरे बच्चों को भी खतरा उत्पन्न हो गया है। इसके बदले में भेड़िये और बच्चों को उठा-उठाकर ले जाएंगे। मेरे गांव की औरतों के मन में इस तरह के अनेकों-अनेक अंधविश्वास घर कर गए थे। इन औरतों की बेबुनियाद और बिना सिर-पैर की बातें सुन-सुन कर मेरी मां का बुरा हाल होता था इसलिए दूसरे बच्चों की मां अपने बच्चों को मेरे साथ खेलने के लिए मना करतीं थीं। इन सब बातों के कारण मेरे स्वस्थ होने के महीनों बाद भी मुझे बहुत अकेलापन महसूस होता रहा था। मेरे साथ घटी इस घटना के बाद मेरे बड़े होने तक दूर जंगल के खेतों पर जाने पर पाबंदी लगा दी गई थी। मेरे गांव के लोगों को जिस दुःखद घटना ने कभी हिला दिया था। वे सभी जन उस घटना को धीरे-धीरे भूलते चले गये। वक्त इस दुनिया का सबसे कारगर और असरदायक मरहम होता है जो छोटे-बड़े दुःखों की असाह्य पीड़ा और उससे बने गहरे घावों के जख्मों को देर सबेर भर देता है।

5

वह मेरा स्कूल में नाम लिखवाने के लिए जाने का पहला दिन था। मेरी दादी मां सांवरी देवी इस बात से बड़ी उत्साहित थी। वह मेरी मां से कह रही थी। आज सगुन सात छोरा कूं न्हवाइ-धुवाइ के सिर में नेक तेल डाल दईयो बहू! शंकर के बापू आज तेरे छोरा को नाम लिखाइवे कूं जामिगे। मेरी मां बेचारी को कामों से कहां फुर्सत थी फिर भी उसने मुझे नहलाया-धुलाया था। मुझे खूब याद है। मेरे सिर में तेल मेरी दादी मां ने ही डाला था। घर में तेल तो था ही नहीं। वह तेल मैं स्वयं उस समय घर में उपलब्ध मोटा अनाज जौ के बदले बाबा अब्दुल्ला की दुकान से लाया था। घर में तेल न होना कोई नई बात नहीं थी।

उस समय दाल-भात, सब्जी, आचार के साथ रोटी खाना धनवानों का भोजन माना जाता था। पूरी बस्ती के लोग नमकीन रोटी चटनी से खाते थे। उस दौर में बस्ती के लोग उसे रामरस कहते थे। ऐसी बात नहीं कि हमने कभी शाक-शब्जी नहीं खाई। खेतों में जाड़ों के दिनों में उग आया बथुआ और सरसों के पत्तों का साग, लौकी, तोरई, काशीराम मतलब काशीफल, मूली, सब घर में उगाई गयी होती थीं। कभी-कभी बहुत हुआ तब बस्ती के लोगों द्वारा उगाकर भेंट में दी गई सब्जियां खूब खाई हैं लेकिन जाड़ों के दिनों में प्रतिदिन बाजरे की रोटी से बथुआ तो कभी सरसों का साग महीनों खूब खाया है। शीरे की लपसी, बाजरे के आटे के लड्डू, गाजर का नमकीन गजरबत्त शायद ही किसी ने न खाया होगा, मैंने और मेरी बस्ती के लोगों ने न जाने कितने वर्ष मजबूरी में इसे खाकर अपनी क्षुधा शांत की है। आज तो मेरे गांव के लोग भी पहले के रामरस को नमक ही कहते हैं।

मेरे बाबा के नाम गांव पर कुछ मोटी जमीन थी। गाड़ एक तरह से मोटी जमीन होती है जिसमें बलुआ तुमट मिट्टी के स्थान पर चिकनी मिट्टी की अधिकता होती है। जहां वर्षा के दिनों में पानी भर जाता है उस खेत की जुताई करने पर बड़े-बड़े ढेले और चिखाड़ उखड़ आते थे। उसे लोहे के घन से फोड़कर महीन करते-करते घर के लोग पस्त हो जाया करते थे। उस मोटी जमीन के चिखाड़ को फोड़कर महीन न किया जाय तो उसमें डाला गया बीज उगता ही नहीं था। वह अनाज किसी प्रकार उग भी आया तो पर्याप्त नमी न मिलने और तेज धूप के कारण सूख जाया करता था। कभी-कभी खेत में अधिक ढेले होने से अनाज जमीन के ऊपर ही रह जाता

था। उसे बड़े आराम से पक्षी चुग जाया करते थे। पक्षियों को कुछ अनाज चुगने को डाल दिया जाय तब तो कोई बात नहीं है लेकिन पक्षी गरीब किसान की किस्मत ही चुग जाएंगे तो उस गरीब के बच्चे क्या खाएंगे। यह सब कारण थे जिससे उस जमीन में पैदावार बहुत कम होती थी। पानी की पर्याप्त व्यवस्था न थी। इस कारण उसमें मोटा अनाज जैसे-जौ, चना, मसूर, मटर, सोंदी एक तरह का देशी धान ही पैदा हुआ करता था।

हमारे खेतों में अधिकतर जौ की फसल की पैदावार होती थी। उसका मुख्य कारण जौ की फसल को पानी की जरूरत नहीं होती है। जब फसल पक जाती और उसे कूट-पीटकर तैयार करते। उसमें से सबसे पहले सवाये और ड्यौढ़े पर लेकर खा लिया गया अनाज तुलवाया जाता था। सवाया का सवा गुना और ड्यौढ़े का डेढ़ गुना, अनाज देना पड़ता था। वह भी अगले छह महीने के बाद जो भी फसल पक कर आती थी उसमें से सवाये के दस सेर के साढ़े बारह सेर और ड्यौढ़े के दस सेर का पंद्रह सेर अनाज देना होता था। बदकिस्मती से कभी प्राकृतिक विपदा आ गई। तब चार-छह साल तक घर के एक आदमी को लेनदार के खेतों में बंधऊ काम करना होता था। तब जाकर जान छूटती थी। अपना सवाया लेने के लिए लेनदार ठाकुर श्रीपाल और ठाकुर श्री रछपाल पहले ही आ जाते थे।

उसके बाद जो अनाज बचता, वह घर में आता था। उसी अनाज से लगान और घर के सारे खर्च किए जाते थे। इस तरह महीने-दो महीने में फिर से सवाये पर अनाज ठाकुर श्रीपाल सिंह और ठाकुर श्री रछपाल सिंह के यहां से आने लगता था। मेहनत-मजदूरी तो फसल के दिनों में ही मिलती थी, बाकी पूरे साल मजदूर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहते थे। घर के लोग कभी बहुत हुआ जानवरों के घास-फूस में लगे रहते थे। एक-एक, दो-दो बीघा जमीन वाले अपनी जमीन में लगे रहते थे। मुहल्ले के कुछ लोग भट्टे पर चले जाते थे। वे लोग साल के बाद बारिश होने से पहले लौटते थे। बारिश के दिनों में बस्ती के लोग अधिकतर आल्हा और ढोला सुना करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य लोग ताश का खेल चार हाथ, दहला पकड़ और अठारह गोटा खेलकर समय काटते थे। इस तरह के हमारे ही हालत नहीं थे, बल्कि पूरी बस्ती के लोगों के हालात इसी तरह के थे और सब लोग किसी तरह बस गुजारा किया करते थे।

भारत शायद दुनिया का वह एकमात्र देश है जहां गंगा-यमुना के दोआब में विकसित हुई भारत की मिली-जुली संस्कृति, दुनिया के लिए आज भी एक मिशाल

है यहां पर हिन्दू-मुसलमान ही नहीं सभी धर्मों के लोग मिल-जुलकर रहते हैं। यहां के सब लोग गंगा-जमुनी तहजीब के हामीं हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है भारत में हिन्दू-मुसलमानों के मिलजुल कर रहने की परंपरा का विकास मुगलों के भारत में आने के बाद में शुरू हुआ था। उससे पहले भारत में हिन्दू राजा ही राज्य करते थे। समाज में चारों तरफ भेद-भाव का बोल-बाला था। सवर्णों का ही बर्चस्व रहा करता था। उन दिनों भारतीय समाज पूरा अनेक जातियों उप-जातियों में बंटा हुआ था। यहां के लोग आपस में अपने से छोटों का शोषण किया करते थे।

हमारे घरों से सटे हुए कुछ मुसलमानों के घर भी थे। वे सब मुसलमान थे। परंतु वे सभी लोग मुसलमान होते हुए भी हमारे लिए सब बाबा, ताऊ और चाचा, भईया ही थे। हम जब सुबह-सुबह उनसे रास्ते में मिलते थे। तब उन्हें बाबा, ताऊ, चाचा कहकर संबोधित किया करते थे। हम उन्हें सुबह-सुबह मिलने पर राम-राम कहते। और वे भी राम-राम का जबाब राम-राम भैया कह कर देते थे। सभी नमाज पढ़ना जानते थे। इस बात को स्वयं वही लोग अच्छी तरह से बता सकते हैं लेकिन हमने उन्हें अपने जीवन में कभी नमाज पढ़ते हुए नहीं देखा है। हां इतना अवश्य मालूम है सभी ईद, बकरीद को नए कपड़े पहनकर अथवा नई टोपी लगाकर नमाज पढ़ने जवां की मस्जिद में जरूर जाया करते थे।

मैंने एक दिन मंगल खां चाचा से पूछा था। चाचा नमाज पढ़नी आती है। तब उन्होंने कहा था। भईया मस्जिद में जैसे सब करते हैं वैसे हम भी करते हैं। किसी को नमाज नहीं आती है। हम काम-धंधे वाले आदमी हैं। काम न करें तो बालकों का पेट कैसे भरेगा। हमारे गांव के मुसलमानों के पास जमीन नहीं थी। वह सभी लुहार, बढ़ईगिरी, इक्का चलाने का काम और दुकान किया करते थे। आम के बाग लेते थे। बहुत हुआ फसल के दिनों में भाड़ चला लिया। भाड़ में चना चबैना भूंजने का काम फसल के दिनों में ही होता था। जैसे गेहूं के दिनों में गेहूं की गुड़धानी, चना के सत्तू, जौ के सत्तू, जौ की बौरी तथा ज्वार, बाजरा और मक्का के दिनों में ज्वार और मक्का के फूला (आज के पॉपकॉर्न) आदि अनाज के दाने भूंजने का काम किया करते थे।

गांव के सभी भूमिहीनों को जब जमीन बांटी गई तब सरकार के आदेश अनुसार दलितों के साथ-साथ सभी मुसलमानों को भी परती जमीन आबंटित की गई। हमारे गांव का एक भी मुसलमान अपनी जमीन नपवाने के लिए नहीं गया। इसकी असल बात उन पर जमीन करनी नहीं आती थी। दूसरे उन्हें जमीन का

आबटन गांव के दबंगों की जमीन और रिहायसी इलाके के पास किया गया था। उन्हें उन दबंग लोगों का डर खाये जा रहा था। सभी ने गांव के दबंगों के डर के मारे अपनी जमीन उन्हीं को ओने-पोने दामों में बेच डाली। वह सभी फिर से भूमिहीनों की श्रेणी में आ गए। वह सभी कहते थे भैया हमें जमीन ऐसी जगह दी है। जहां शेर की मांदि है। हम वहां का अपने हाथ पांव तुड़वाइबे कूं जामें। पहले और आज भी कलुआ उर्फ मुहम्मद कल्लू खां, लालुआ उर्फ मुहम्मद लाल खां, आदि लोगों के घरों में दुकान अथवा अन्य किसी कार्य के बहाने हमारा आना-जाना रहा है इन सब लोगों के अतिरिक्त गांव में अनेक मुस्लिम परिवारों में मंगलखां उर्फ मुहम्मद मंगल खां, शमशेरा उर्फ मुहम्मद शमशेर खां, मुहम्मद हमीद खां, गफ्फार खां, नूर मुहम्मद, भोला उर्फ मुहम्मद भोला खां आदि-आदि अनेक लोग बड़े अमन चैन से रहते हैं। आज तक शहर के किसी दंगे का हमारे गांव में कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

आज वह बात नहीं रही है। गांव में एक मस्जिद है सभी लोग उसमें नमाज पढ़ने जाते हैं। उसमें एक मौलवी साहब रहते हैं। वह सुबह-शाम अजान लगाते हैं। वह बच्चों को भी पढ़ाने के साथ-साथ मजहब की भी तालीम देते हैं और सभी को नमाज पढ़वाते और दीन धर्म की बातें बतलाते हैं।

जब मैं बहुत छोटा था। तब मुझे रोटी अच्छी नहीं लगती थी। उसकी असल बात घर में जौ की रोटी बनाई जाती थी। उसे खाने पर हलक में कांटे से चुभते थे। जौ को चाहे जितना पीट-कूट लें। उसमें नुकीली भूसी की फांस रह ही जाती थी। वही भूसी हलक में रोटी खाने पर चुभती थी। यूं तो घर में मटर की रोटी भी बनती थी। मटर की रोटी के हर दो-चार कौर खाने के बाद पानी पीना पड़ता था। पानी पीने में कुछ देर हो जाने पर या पानी न पीने पर रोटी गले में अटक जाती थी। गिल्ला सी मोटी-मोटी आंसू भरी आंखें बाहर निकल आया करती थीं। कभी समय से और जल्दी से पानी न पीने पर लगता था कहीं प्राण ही न निकल जाएं। भई कोई रूखी रोटी कहां तक खाता। रोटी के साथ कभी बहुत हुआ तो लाल मिर्च की चटनी बन गई अथवा प्याज काटकर और उस पर रामरस डालकर रोटी खा ली। उन दिनों फसल तैयार पकने के समय एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि हमारे घर में मटर की रोटी और मटर की दाल भी खूब बनाई जाती थी। मुझे आज भी गरम-गरम रामरस की रोटी की भीनी-भीनी गंध बड़ी सुहानी लगती थी। मेरा यह जीवन उसी रूखी रोटी की देन है। वे हमारे परिवार और हमारी बस्ती

के लोगों के बड़ी तंगी के दिन थे। तंगहाली के दिनों में प्यार और एकता खूब पनपती है।

मुझे याद है वह सितंबर का महीना रहा होगा। गुनगुनी धूप की सुबह थी। अभी घर में कुछ खाने के लिए अनाज बचा था। अगर ऐसा न होता तब मैं सिर में डालने के लिए सरसों का तेल कहां से लाता। उस दिन मैंने गाड़े मलेछिया की हल्के तोतई रंग की काली बुंदकियों वाली सूती कमीज पहनी थीं। पूरे मुहल्ले के बच्चों की कमीज अधिकतर उसी कपड़े की सिलाई जाती थी। बस उसमें रंग का अंतर होता था। मेरी मां ने मेरी आंखों में उस दिन काजल भी लगाया था। दादी मां ने सिर पर तेल लगाने के बाद वही हाथ मुंह पर फिरा दिये थे। उस दिन मेरा मुंह कुछ चमक रहा था।

मेरे बड़े बाबा जिन्हें हम सब घर के लोग और पूरे मुहल्ले वाले ताउम्र बापू कह कर पुकारते रहे। वे उस दिन मुझे अपने साथ लेकर स्कूल गए थे। स्कूल के बढ़े मास्साब उस समय नहा रहे थे। मैं अपने बाबा के साथ स्कूल के बाहर जमीन पर बैठकर उनके नहाने का घंटों इंतजार करता रहा था। स्कूल के दूसरे किसी मास्टर ने बाबा को कुर्सी पर अथवा फर्स पर बैठने को नहीं कहा था। मास्साब स्नान से निवृत्त होकर पूजा करने बैठ गए थे। तब करीब-करीब साढ़े ग्यारह-बारह बजे स्कूल में बड़े मास्साब अपनी कुर्सी पर आकर बैठे थे।

बापू और मैं मास्साब के पास नाम लिखवाने जमीन से उठकर खड़े हुए।

मास्साब ने तब बापू से पूछा! इस छोरा का नाम और जन्म तिथि क्या है?

तब बापू ने बताया था! छोरा कौ नाम रमेश है और उमर यही कोई छह सात साल की होगी।

मास्साब ने स्कूल के रजिस्टर में मेरा नाम उमेश लिखा दिया था। स्कूल के रजिस्टर में मेरी जन्म तिथि "तीन फरवरी सन् उन्नीस सौ बासठ" लिख दी गई थी। घर के लोग अधिक पढ़े-लिखे तो नहीं थे। जो जन्म की तारीख को लिख लेते। मेरे गांव के लोग बताते हैं कि मैं दिन के चार बजे पैदा हुआ था।

मास्साब ने फिर पूछा! तुम्हारी जाति क्या है? चमार अथवा भंगी।

बापू ने जबाब दिया था! मास्साब चमार है।

मास्साब ने कहा था। चमार, भंगियों के छोरा जब पढ़ने के लिए नहीं आते हैं तो तुम लोग स्कूल में इनका नाम क्यों लिखवाते हो? न तुम नहाते हो, न साफ कपड़े पहनते हो फिर बच्चों को पढ़ाने के दिवास्वप्न क्यों देखते हो?

बापू ने उत्तर दिया था! मास्साब हम तो सब कुबड्ड रह गए हैं ज्या छोरा कूं पढ़ाइ देउगे तो हमारो जीवन सफल है जाइगो। हम तुम्हारो गुन जिंदगी भर मानेंगे। हमारे पास पैसा टका बहुत अधिक नहीं है लेकिन स्कूल में कुछ बनवाना हो, तब हम लोग दो-चार दिन मुफ्त में मेहनत-मजूरी के रूप में श्रमदान अवश्य कर देंगे।

मास्साब! अच्छा ठीक है कल से लड़के को स्कूल भेज देना।

मैं दूसरे दिन सुबह अपनी पट्टी बुद्दिका अर्थात खड़िया के घोल की दवात लेकर नियत समय से पूर्व स्कूल पहुंच गया था। मेरी पुरानी पट्टी थी। भाई ओमप्रकाश जो मेरे ताऊजी के बड़े लड़के थे, उन्होंने इसी पट्टी पर अपनी पढ़ाई पूरी की थी। मास्साब ने मुझे कक्षा एक में सभी लड़कों के साथ सबसे अंत में बैठा दिया था। इस देश में प्रारम्भ से लेकर आज तक अंत हम लोगों के साथ ही होता रहा है। हम लोगों का भाग्य सदैव बचा-खुचा ही रहा है। जब हमारी बारी आती है तब तक सब कुछ समाप्त हो चुका होता है।

इस कक्षा में मेरे मुहल्ले के साथ खेलने वाले संगी-साथी भी थे, इसलिए पहले दिन कुछ मन लग गया था। मेरा स्कूल में एक जगह पर बैठे-बैठे कुछ मन उकता सा गया था। मेरे मन में उस समय रह-रह कर एक ही विचार बार-बार आ रहा था। यहां कहां फंस गया। कहां दिनभर मुहल्ले भर के बच्चों के साथ खेल-कूद, भाग-दौड़ और न जाने पूरे दिन किन-किन खेल के कार्यों में व्यस्त रहता था। यहां कहां मुझे स्कूल में बिना रस्सी के बंधनों में बांध दिया है।

मास्साब ने मुझे उस दिन अपनी उंगली के संकेत से अपनी ओर पट्टी लेकर आने को कहा। मैं झिझक और संकोचवश उनके पास बहुत डरते-डरते हुए गया था। मास्साब ने मेरी पट्टी अपने हाथ में लेकर उस पर खड़िया से पहले दिन का पहला सबक अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः तक अक्षर लिख दिये थे। पट्टी की दूसरी तरफ एक से तीस तक गिनतियां लिख दी थीं। इतना ही नहीं उन्होंने अपने चाकू से पहले दिन सरकंडे की कलम बनाकर मुझे दी थी। उस दिन उन्होंने बड़ी कड़क आवाज में कहा था। इन अक्षरों पर ठीक तरह से बोर लगाना। इन शब्दों ने मेरी दुनिया ही बदल दी। मैं निरक्षरता की घुप्प अंधेरी खाइयों की दुनिया से साक्षर होने की दिशा में बढ़ने लगा। मेरा यह पहले दिन का अनुभव बहुत मधुर, प्रेम भरा और भेदभाव रहित लगा था। इस पर सारा जीवन न्योछावर किया जा सकता है परंतु मुझे पहले दिन की एक बात अखर गई थी। मेरे बूढ़े बाबा को कुर्सी न सही, बच्चों के साथ फर्स पर बैठने को भी नहीं कहा गया था। उस समय मुझे इस बात का ज्ञान

था। हम छोटी जाति के हैं इसलिए हम दोनों जमीन पर बैठ गए थे। हम अपने घर में भी अधिकतर जमीन पर ही बैठते थे।

आज मुझे समझ आता है गरीबों के बच्चे, सवर्ण बच्चों से अधिक समझदार क्यों हो जाते हैं। इसका मुख्य कारण उनका घर छोटा होना मान सकते हैं। इस कारण वे अधिक समय बड़ों के बीच उठते-बैठते और रहते हैं। वे अपने बचपन से ही माता-पिता के साथ कामों में हाथ बटाते हैं। जब उनके बड़े बात करते हैं उनकी हर बात सुनते हैं। बड़ों की बातों में सवर्णों के बुरे व्यवहार, बात-बात में गाली देना, बेगार लेना, मजदूरी न देना, धमकी देना और न जाने तमाम दुनियादारी की सौ बातें होती थीं। इन बातों में उनकी तीखी आलोचना भी हुआ करती थी, जिसे वह लोग सवर्णों के सामने नहीं कह सकते थे।

एक और महत्वपूर्ण बात जो मुझे समझ में आती है। वह यह है। अनपढ़ होने का संबंध बुद्धिमान न होने से बिलकुल भी नहीं है। अनपढ़ और विद्वान होने का दूर-दूर तक कोई जादुई संबंध नहीं है। अनपढ़ आदमी भी बुद्धिमान हो सकता है। टीपू सुल्तान का बाप हैदर अली अनपढ़ था लेकिन टीपू सुल्तान को राज विरासत में हैदर अली से मिला था। यह वही टीपू सुल्तान था जिसकी सेना द्वारा तोप के गोलों के साथ तलवारों की बौछार की जाती थी। इसी तकनीक के आधार पर आज की मिसाइल तकनीक का जन्म माना जाता था। आज भी वे तोपें और तलवारें इंग्लैड के म्यूजियम में रखी हुई हैं।

बाबा ने मेरा नाम मास्साब को रमेश बताया था लेकिन मास्साब ने स्कूल में मेरा नाम उमेश कुमार लिखा था। स्कूल के रजिस्टर में उमेश नाम लिखे जाने के पीछे की असल बात जो मेरी समझ में आती है। उस समय स्कूल में रमेश कई सवर्णों लड़कों के नाम थे फिर स्कूल रजिस्टर में मेरा नाम रमेश कैसे लिखा जा सकता था। हालांकि मेरे बाबा जिन्हें मैं बापू कहकर बुलाता था। बापू जब तक इस दुनिया में जीवित रहे मुझे रमेश नाम से ही पुकारते रहे। इतना ही नहीं मेरी दादी मां, मेरे चाचाजी, ताऊजी, बुआजी, फूफाजी, मौसीजी, नानाजी, मामाजी के साथ-साथ पूरे ननिहाल तथा मेरे मुहल्ले के सभी लोग जब तक मैं गांव में रहा सबके-सब लोग मुझे रमेश नाम से ही पुकारते रहे। स्कूल और यूनिवर्सिटी के संगी-साथियों के अलावा आज तक मुझे कोई भी सगे-संबंधी और हमारी बस्ती के लोगों में से एक भी उमेश नाम से नहीं पुकारता है। हां गांव के कुछ पढ़े-लिखे लोग जरूर मुझे उमेश के नाम से पुकारते हैं।

मेरे लिए स्कूल एक अच्छी जगह थी। जहां बहुत से बच्चे एक साथ मिलते थे लेकिन मुझे स्कूल में जो परेशानी महसूस हुई वह यह थी। कक्षा में एक ही स्थान पर घंटों बैठना पड़ता था। मेरा वहां दम घुटता था। मुझे स्वछंद विचरण करना बहुत पसंद था। मैं बापू से स्कूल न जाने की बात करता था। रात को उनके पास ही सोता था। बापू से बात करने में इसीलिए मुझे झिझक नहीं होती थी। वे सदैव मुझे सीने समय समझाते थे। एक दिन तुम पढ़-लिखकर साहब बन जाओगे। यह बात उन दिनों मेरी समझ में नहीं आती थी।

मैं ही नहीं हमारी बस्ती के अधिकतर बच्चे दोपहर की छुट्टी में घर पर नहीं जाते थे। वे दोपहर की छुट्टी में अगर जाते भी थे तब फिर वापस लौटकर नहीं आते थे। हमारी बस्ती के सभी बच्चे सुबह खाना खाकर आते थे। उसका कारण घर में खाना सुबह और शाम को ही बनता था फिर दोपहर में घर जाने से क्या फायदा था। दूसरा कारण दोपहर के समय में फिसल पट्टी खाली मिलती थी। उस पर खूब फिसलते थे। स्कूल में बहुत उछलते-कूदते और दौड़ते-भागते थे। जबकि सुबह, शाम और दोपहर की छुट्टी में सवर्ण लड़के खाना खाकर घर से वापस स्कूल आ जाते थे। तब उनके रहते फिसल पट्टी पर फिसलने का हमारा नंबर ही नहीं आता था। हम सब बच्चे फिसल पट्टी को ररकना कहते थे। मुझे ररकने में बड़ा सुखद अनुभव होता था। मुझे फिसल पट्टी पर फिसलने को मिल जाने से राजगद्दी मिल जाने जैसा अनुभव हुआ करता था। हमारे गांव में खेले जाने वाले खेलों में से यही एक खेल अलग था। शेष खेलों में कबड्डी, गुल्ली-डंडा, आंख-मिचोली, तर के ऊपर, किलकिल-कांटी, ढेरी-फोरा, गुट्ट, लगंडी टांग, कंचा खेलना, पिलकदंडी, बान चलना, टेसू, गिलोल चलाना आदि प्रमुख थे।

सुबह होते ही जिस खेल को खेलने में लग गए। उसी खेल को शाम तक खेलते रहते थे। मुझे खेल के आगे खाने की फुर्सत नहीं रहती थी। जब बहुत भूख लग गई होती और खेलते-खेलते थक से गए होते तब कहीं जाकर लौटकर घर पहुंच पाते थे। घर में जाते ही खाने पर टूट पड़ते थे। रूखी-सूखी, बासी-तिवासी रोटी खूब ठूंस-ठूंस कर खा जाते थे। वह क्या अभाव के दिन थे। खाना खा लेने पर भी घंटे भर में फिर भूख लग जाती थी। मुझे उन दिनों सब कंकर-पत्थर हजम हो जाया करते थे।

मेरी प्रथम कक्षा के पहले शिक्षक बृजमोहन मास्टर थे। उन्हें बच्चों को गालियां देने और मारने से बहुत प्रेम था। वह इनका प्रयोग दलित बच्चों को बहुत सी गाली

दे कर किया करते थे। जैसे—वैज्ञानिक लोग गरीब आदिवासियों और गरीब दलित बस्तियों में रहने वाले लोगों पर अपनी दवाइयों के टीकों का पहला प्रयोग किया करते हैं। इन पर परीक्षण सफल हो जाने पर उसे अन्य लोगों को प्रयोग के लिए दिया जाता है। वह सवर्ण बच्चों की छोटी सी शिकायत पर सूअर की औलाद की गाली ...उन्हें वेद ही ऋचाओं की तरह कंठस्थ थी। वे इस वेद मंत्रों के श्लोकों का उच्चारण पूर्ण कंठ, जिव्हा और ओठों का प्रयोग कर जोर से किया कहते थे। सूअर जिस तरह किसी व्यक्ति पर आक्रमण करता है ठीक उसी तरह उनकी मुखमुद्रा हुआ करती थी। उनके होंठ बड़े-बड़े और वे स्वयं बड़े कद काठी के व्यक्ति थे। हम सब बच्चे उनके राक्षसी रूप देखकर अंदर तक कांप से जाते थे। वह हमारी जाति के बच्चों में ऐसी मार लगाते थे जैसे कोई जानवर अपने प्रतिद्वंदी जानवर को प्रताड़ित किया करता है।

मास्साब बृजमोहन सवर्ण बच्चों की हर बात का विश्वास किया करते थे। उनके द्वारा झूठे शिकायत करने पर! मास्साब इसने मुझे छू दिया है? याने मोइ मां की गाली दई है? इसने मेरो बोर उंदकाई दयो? बस इतना सुनते ही! वे बड़ी बेदर्दी से बच्चों में मार लगाने के लिए पिल पड़ते थे। हमारे समाज के लोग बड़े सीधे सच्चे हुआ करते हैं लेकिन भाइयो सीधे गन्ने को कोल्हू में पेला जाता है। इसी प्रकार सवर्ण समाज के लोग हमारे समाज के सीधे-सादे लोगों का प्राचीन काल से लेकर आज तक अनवरत रूप से शोषण करते आ रहे हैं। अब भी मुझे याद है वह खेत में से ताजी अरहर की सोटी मंगवाते थे। उसी सोटी से सड़ाक-सड़ाक दस-बीस सोटी झाड़ दिया करते थे। उनकी मार से बदन पर खाल के साथ रक्त की बूंदें भी झल-झला आया करतीं थीं। वह मार से उछली खाल हमें अपने बदन पर खून से लिखे अक्षरों की तरह कई दिनों तक दिखाई देती रहती थी। वह मार हमारे लिए झूठी शिकायत का तोहफा हुआ करती थी। इसलिए हमने अपने बचपन में कभी किसी बच्चे को छूने की हिमाकत नहीं की थी। वहां कौन हमारी सुनने वाला था। उनकी इस मार से त्रस्त होकर बहुत से बच्चों ने स्कूल अपनी दूसरी, तीसरी कक्षा में ही छोड़ दिया था।

उन दिनों स्कूल में सब चमार-भंगियों के बच्चे भेड़, बकरी की तरह समझे जाते थे। इसी तरह का उनका कुछ-कुछ स्वभाव भी हुआ करता था। जब कोई कसाई किसी भेड़ को काटता है तब दूसरी भेड़ें अपनी सखी भेड़ को कटता हुआ देखती हैं वह भेड़ें उसका विरोध नहीं करती हैं। उन भेड़ों ने विरोध करना सीखा ही नहीं

है। तब वे भेड़ें अन्य दूसरी भेड़ों में पीछे को सरकती हैं ताकि किसी दूसरी भेड़ को कटने का नंबर पहले आ जाए। इस तरह सरकने से समझती है वह स्वयं बच जाएगी। यही उसकी नासमझी और सबसे बड़ी भूल होती है। इस तरह वह कभी प्रतिरोध नहीं करती हैं। वह सदैव अपने को बचाने की जुगाड़ में रहती है लेकिन उसे नहीं मालूम बचना उसकी किस्मत में नहीं लिखा है। उसे एक न एक दिन दूसरों की जीभ के जायके को बदलने और उनकी पेट की क्षुधा को शांत और शांति पाठ के लिए कटना ही होता है।

दलितों की सबसे बड़ी कमजोरी प्रतिरोध न करना है। वह सिर्फ जीना चाहते हैं। दूसरों के हाथों अपमानित होते हुए सौ बरस जीने की उनकी लालसा होती है। उन्होंने प्रतिरोध करते हुए रणभूमि में मरना कभी नहीं सीखा है हालांकि जीवन में अभाव और जीवन के लिए संघर्ष करना ही आदमी को मजबूत बनाता है। उसे हौसला देता है। उसे लोहा और चट्टान सा मजबूत बनाता है। सिकंदर, बाबर और हैदर अली जैसे योद्धा वर्षा और बर्फ के तूफानों में पले-बड़े थे। तभी तो वह महान बने और उन्होंने दुनिया में अपना एक मुकाम हासिल किया था।

दुनिया का कोई भी पढ़ा-लिखा आदमी कभी नहीं कह सकता है, सीधा होना ठीक नहीं है? अथवा शांति और अहिंसा में विश्वास करना ठीक नहीं होता है। सौ बार पूछा जाय और सौ बार मेरा एक ही उत्तर होगा! इससे बड़ा सच्चाई का और कोई दूसरा रास्ता विश्व में हो ही नहीं सकता है। मैंने कभी नहीं कहा सीधा होना ठीक है अगर कोई सीधा है तब जरूर उसके साथ शराफत का व्यवहार करना ठीक होता है। भारत का सम्राट् अशोक सीधा ही था। बादशाह बाबर, हुमायूं, अकबर, शाहजहां, औरंगजेब सब मुगल सीधे ही तो थे, सिकंदर महान सीधा ही तो था, हैदर अली और टीपू सुल्तान और भारत के सभी राजा-महाराजा, राजा मानसिंह, अमरसिंह राठौर, सब सीधे थे लेकिन देखो भाई सीधे गन्ने को कोल्हू में पेला जाता है।

प्रधान अध्यापक जिन्हें सभी बड़े मास्साब कहकर बुलाते थे। उनका नाम पंडित रामस्वरूप शर्मा था। वे सदैव अपने संस्कारों की रक्षार्थ बहुत पूजा-पाठ करने वाले भले, मिलनसार, और छुआ-छूत विशेष ध्यान रखने वाले भले व्यक्ति थे। वे बहुत हंस-हंस कर बात किया करते थे। उन्होंने एक दिन सभी दलित भंगी-चमारों के बच्चों को बुलाकर कहा! तुम लोग बहुत अच्छी सफाई करना जानते हो। तुम प्रतिदिन सुबह सबसे पहले आकर स्कूल की सफाई किया करो। तुम्हारा काम भी यही रहा है और तुम्हें काम का अभ्यास भी हो जाएगा। स्कूल साफ करने से तुम

पर खूब विद्या आ जाएगी। और तुम लोग पास भी हो जाओगे। वह सदैव कहा करते थे! गुरु की सेवा करना विद्यार्थियों की गुरु दक्षिणा होती है।

बालक बुद्धि थी। हमें बहुत ज्ञान नहीं था। हम लोग खूब मन लगाकर स्कूल साफ किया करते थे। इतना ही नहीं, हम इसके अतिरिक्त प्रतिदिन उनके लिए लगभग एक किलोमीटर दूर से पानी से भरी बड़ी बाल्टियों को कुंदा में फंसाकर लाठियों पर लादकर लाया करते थे। इसके लिए कभी चार, कभी छह बच्चों की टोली साथ होती थी। उसके बाद सर्दियों में पानी गरम करने की जिम्मेदारी हरिजन बच्चों की ही होती थी। नल से पानी चलाने का काम एक ठाकुर का लड़का किया करता था। वह यह भी ध्यान रखता था। कहीं पानी छू न जाए। यह देखने के लिए वह सदा साथ-साथ रहा करता था। नल जंगल में स्कूल से कुछ दूरी पर था। वह लड़का कुछ पतला-दुबला भी था। इसीलिए कभी-कभी नल से पानी भी दलित बच्चों से चलवाता था। वह मास्साब के बारे में कभी-कभी गंदी-गंदी गालियां भी देता था। वह कहता था। मास्टर तो सारो बाबरो है? इतना ही नहीं वह दोपहर में लड़कों के स्कूल के बस्ते में से गणित के सवाल हल करने के मोटे-मोटे पोथा निकालकर चूरन वाले से चूरन खा लिया करता था। यह वही मास्टरजी थे जो हमारे लिए बहुत पूज्यनीय थे। इतना ही नहीं वह लड़का मास्साब की बीड़ी चोरी से निकालकर पीता था। उसने हमें भी बीड़ी पिलाने की कोशिश की थी। वह बीड़ी न पीने पर मारता भी था। वह सदैव हम लोगों से अपनी चोरी के बारे में कहता था। सारे! काऊ ने मास्साब कू कछू बताई तो हड्डी-पसली तोड़ कें जान से मार दूंगा।

मेरी समझ से दुनिया में कोई भी काला जादू या कोई भी ऐसी दवा नहीं बनी है जो किसी स्वस्थ व्यक्ति के मस्तिष्क में क्षण भर में अथवा एक दिन में बदलाव कर दे। यह सौ प्रतिशत सच है सवर्णों ने दलितों का शोषण किया है। यह भी सच है यह सब गलत हुआ है। लेकिन सदियों से दलितों के शोषण की परंपरा को, छुआ-छूत के भेद को, ब्राह्मणों की अपने को सभी वर्णों से उच्च रखने की परंपरा को, उनके संस्कारों को, उनके रीति-रिवाजों को, उनके अपने धार्मिक विश्वासों को बदलने में समय लगता है। इस बात से बिलकुल इंकार नहीं किया जा सकता है उनमें बदलाव नहीं हुए हैं। समाज, संस्कार, परंपरा, उनके विश्वास जिस तरह से सदियों में बनाते हैं अगर वह गलत है तो उसी तरह से उनमें बदलाव भी होता रहता है। आज पश्चिम के लोग हम लोगों से आगे क्यों हैं। वे अपनी सोच और दूरदृष्टि के कारण आज हमसे आगे हैं। वहां के अतीत में खून-खराबा और गुलामों को खरीदने-

बेचने की अमानवीय परंपरा विद्यमान थी लेकिन आज उस परंपरा को अतीत के उस बर्बर समाज से समूल नष्ट कर दिया गया है। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने जाति के आधार पर छुआ-छूत की जिस पीड़ा को, जिस अपमान को भोगा था। क्या वह अपने उसी रूप में आज भी विद्यमान है। अथवा उसमें बदलाव हुआ है। मैं इस बात को बड़ी ईमानदारी के साथ कह सकता हूं उसमें बदलाव हुए हैं लेकिन इस समाज में उतने बदलाव अभी नहीं हुए हैं जितने बदलावों की समाज में आवश्यकता महसूस की जा रही है।

सवर्ण बच्चों का सदैव प्रयास रहता था। चमार-भंगियों के बच्चों पर विद्या न आ जाय क्योंकि अगर इन शूद्रों के बच्चों पर विद्या आ गई तो उनके लिए शायद विद्या कम पड़ जाएगी। इसलिए कक्षा के हम सभी दलित विद्यार्थी उस दौर में अपने हिस्से में अधिक से अधिक विद्या आने का प्रत्येक उपाय के रूप में टोना-टोटका आदि पर विश्वास करने से पीछे नहीं हटा करते थे जिससे अधिक से अधिक विद्या अपने हिस्से में आ जाए। अथवा हम लोग अच्छे नंबरों से पास हो जाएं। हम सभी बच्चे अपनी पुस्तक या बस्तों को जरा सा किसी के पैर अथवा अपने पैर से छू जाने पर, बस्ते को कई बार हाथ से छूकर माथे से लगाते थे और हर बार पुचकारते जाते थे। प्रत्येक बार पुचकारते हुए कहते जाते थे। विद्या विद्या मो पै आ। विद्या-विद्या मो पै आ। ताकि विद्यारानी मुझसे रूठ न जाये। यह सब बालमन की मनोवैज्ञानिक संवेदनाएं थी। वह सब विद्यारानी को मनाने के उपायों को किया करते थे। आज फालतू प्रपंच के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगते हैं। आज भी मुझे विद्यारानी मनाने का सबसे सरल उपाय निरंतर अभ्यास करने के और कुछ नहीं लगता है। वह जमाना मुझे फिर भी ठीक सा लगता है। उस अभाव और भयंकर गरीबी के दौर में भी लोग अपने माता-पिता की सेवा करना अपना धर्म समझते थे और संयुक्त परिवार में बच्चे कभी भी भूखे नहीं सोया करते थे। उस दौर में बच्चों को कभी सड़कों पर नहीं फैंका जाता था। एक तरह से संयुक्त परिवार में सभी जिम्मेदारियों को पूरी तरह से निभाया जाता था।

इसके साथ-साथ सवर्ण लड़के प्रत्येक वह उपाय किया करते थे जिससे विद्या चमार-भंगियों पर न चली जाए। उसमें एक प्रमुख उपाय था। बुद्दिका और स्याही की दवात में पेशाब कर देना। यह कार्य दोपहर की छुट्टी में सम्पन्न किया जाता था। जब दोपहर की छुट्टी में स्कूल बंद हो जाता था। तब बंद स्कूल में कुछ ही सवर्णों के लड़के अंदर प्रवेश कर सकते थे, जिन छात्रों पर मास्साब का अटूट विश्वास हुआ

करता था। विश्वासपात्र सवर्णों के बच्चे ही दूसरे बच्चों के बस्तों से चोरी भी किया करते थे। वही सब मास्साब को गाली देते थे। वही सब मास्साब को चूतिया और साला न जाने दिन में कितनी बार कहते थे। वही सब मास्साब की बीड़ी चुराकर पीते थे।

इस कार्य में कक्षा का एक लड़का बहुत माहिर था। वह सबसे उद्दंड भी था जिसने कई बार मेरे और कई अन्य छोटी जातियों के विद्यार्थियों के बुद्दिका और स्याही की दवात में पेशाब किया था। वह लड़का स्वयं पेशाब करने की बात अपने दूसरे सवर्ण सहपाठी विद्यार्थियों से कह देता था। मैंने उस सारे चमरा अथवा फलां भंगी, धोबी, खटीका, कुम्हरा के बुद्दिका, दवात में पेशाब कर दिया है। अब देखें सारे पै कैसे विद्या आ जाबैगी। इस तरह की बात शाम तक उड़ते-उड़ते मेरे अथवा उस विद्यार्थी के पास पहुंच जाया करती थी, जिसकी लिखने की दवात के साथ ऐसा अधम और नीच कुकर्म कार्य किया गया होता था। मैं अपने प्राइमरी स्कूल जीवन में कई बार इसके लिए रोया था। इस शिकायत को किससे करता। वहां कौन सुनने वाला था? मास्साब से कहता उन्हें हम लोगों की बातों पर कभी विश्वास नहीं होता था। वह उलटे मुझे ही डांट कर कहते थे।

अरे उमेशा! काहे कूं बन्ने/ मूढ़े बनाई रहियों है। भैंन...तेरे पुरखा ऊ पड़े हैं जों तू पड़ि जाइगो। चलि बैठ जा। नहीं तो अबई तेरी खाल उधेड़ दूंगा। आज कई दशकों के बाद मुझे उनकी इस बात पर एक सेर याद आ गया है।

"लिखा परदेस किश्मत में, वतन को याद क्या करना।
जहां बेदर्द हाकिम हो, वहां फरियाद क्या करना॥"

उस जमाने में मुश्किल से एक बुद्दिका, स्याही की दवात का प्रबंध हुआ करता था। वह हमारा गांव खांटी देहात था। वहां प्रतिदिन नई दवात, शीशी कहां से आती। उस दौर में आजकल की तरह शीशी सड़क पर पड़ी हुई नहीं मिला करती थी। उस स्थिति में बुद्दिका को पवित्र करने का एक ही उपाय था। पहले उसे मिट्टी से कई बार मांजते थे। उस दौर में स्याही की दवात को मिट्टी से इसलिए मांजते थे क्योंकि साबुन अछूतों के पास नहीं होता था। उन दिनों अछूतों के पास ही क्या? सभी छोटी जाति के गरीबों लोगों के पास पैसे नहीं हुआ करते थे। उस दवात पर पानी से धोकर गंगाजल से छींटे भी लगाया करते थे। इस प्रकार उसमें फिर से बोर, स्याही बनाई जाती थी। तब जाकर विद्यारानी दुबारा से वापस लौटकर आती थी। हम सभी ऐसा विश्वास करते थे। हमारा देहात और गांव उत्तर भारत में पड़ता है जहां पर ऊसर

जमीन अधिक थी। हमारे इलाके में गंगा नहाने का बहुत प्रचलन था। ब्राह्मण, बनिया, एवं क्षत्रियों के सभी समर्थ लोग पेट भरकर पाप और कुकर्म किया करते हैं और भरपेट पाप करने के बाद गंगा नहा लेने पर उनका बड़े से बड़ा पाप धुल जाया करता था। वह लोग फिर से निर्मल मन हो जाया करते थे। यह बात हमारी जाति के लोग भी माना करते थे। उन्हीं की राह पर चलते हुए दलित लोग भी बिना पाप किए हुए पुण्य कमाने के लिए लोग गंगा नहाने जाते थे। गंगा नहाने के बाद एक बोतल गंगाजल अपने साथ लाना कभी नहीं भूलते थे इसके चलते गंगाजल हर घर में बोतल में बंद रखा रहता था।

हमारी कक्षा के सवर्णों के लड़कों ने कहा था। अपनी पट्टी को घोंटकर चमकाने से विद्यारानी प्रसन्न हो जाती है। इसलिए हम दलितों के सभी छोटे बच्चे सुबह-सुबह बिना जूते चप्पल के नंगे पांव ठिठुरते हुए दूर घेर पर रमास के पेड़ों पर से उसके पत्ते तोड़कर लाते थे। इस प्रकार विद्यारनी को प्रसन्न करने के लिए हमने क्या-क्या प्रपंच नहीं किए हैं। इसके अतिरिक्त स्कूल में छात्रों में आपस में पट्टी चमकाने की भी प्रतियोगिता हुआ करती थी। इन सब जुगाड़ प्रपंचों के बाद जब बिना बात छोटी-छोटी बातों पर जमकर पिटाई होती थी। तब हमारी बस्ती के लड़के स्कूल का मैदान छोड़कर भाग खड़े होते थे।

यह सब बातें उस अबोध बच्चे के बालमन की थीं, जिसका अभी ठीक तरह से पूर्ण विकास भी नहीं हो पाया था। वह अपनी समझ और तर्कों के आधार पर अपने छोटे से अविकसित मस्तिष्क का विकास करने में लीन था।

उस जमाने में दुकान पर कपड़े धोने का डबल सेर साबुन मिला करता था। इस साबुन को फसल के दिनों में सभी लोग प्रयोग करते दिखाई देते थे। साल के अन्य दिनों में इस साबुन को वे मजदूर खरीद सकते थे जिनको निरंतर मजदूरी मिल जाया करती थी। हमारे घर के लोग ही नहीं पूरी बस्ती की औरतें और आदमी रेह से ही कपड़े धोया करते थे। रेह ऊसर अथवा बंजर जमीन में बरसात के दिनों में पानी भर जाने से जमीन के नीचे से जमीन के ऊपर एक सफेद परत की तह जम जाया करता था। यह कभी पाउडर की शक्ल में, तो कभी जमी हुई सिल्ली के रूप में मिलता था। देखा जाय तो यह कास्टिक सोडा ही था जो पानी के जमीन में प्रवेश करने से जमीन की ऊपरी सतह पर निकल आया करता था।

यह कक्षा तीन की बात है। मेरा मन पढ़ने में कम और खेलने में अधिक रहता था। स्कूल का काम करने के बाद भी वहां बैठे रहना पड़ता था। मुझे इस बात से

बहुत परेशानी थी। दूसरे मास्साब आपस में समूह बनाकर अलग बातें करते रहते थे और बच्चे आपस में अगल बातें करते रहते थे। मास्साब ने सुबह कुछ पाठ पढ़ाया या लिखवाया बस शाम तक की छुट्टी। शाम को एक लड़का गिनती जोर से बोलता था। सभी लड़के उसे दुहराते भर थे। मुझे कक्षा की पढ़ाई बोझिल सी लगती थी। उसमें कुछ नयापन नहीं था, बल्कि उन दिनों स्कूल की पढ़ाई बहुत उबाऊ और बोझिल हुआ करती थी।

स्कूल न जाने की सबसे बड़ी दूसरी विकट समस्या सप्ताह भर में दो-तीन बार अवश्य मार पड़ना मान सकते हैं। स्कूल न जाओ तब भी मार, स्कूल का काम कर लो तब भी मार, लड़कों द्वारा झूठी शिकायत करने पर मार, गंदे कपड़े पहनकर स्कूल जाने पर मार पड़ती ही थी, इसलिए मैं प्रारम्भ के महीने के दिनों में स्कूल नहीं जाया करता था। जब कभी सुबह जाता था तो दोपहर के बाद नहीं जाता था। इस कारण स्कूल में मेरा और पिटाई लगने का बहुत नजदीकी संबंध स्थापित हो गया था। मेरी यह सब बातें बाद में घर के लोगों को पता चल गई थीं। इसके लिए मेरे घर के लोगों ने पहले तो मुझे खूब समझाया-मनाया। मैंने बहुत समझाने-बुझाने के बाद घरवालों से स्कूल जाने की हामीं भर दी थी, फिर भी पता नहीं क्यों स्कूल जाने से बचता रहता था। मुझसे मेरे सब घरवाले तंग आ गये थे। इस कारण सभी जन मुझसे बहुत नाराज हो गए थे।

एक दिन मेरे ताऊजी ने दोपहर के बाद स्कूल न जाने पर कुछ लोगों से पकड़वाकर मुझे गोला लाठी लगाकर धूप में डाल दिया था। उस दिन धूप बहुत तेज थी। तेज धूप से मेरा चेहरा लाल पड़ गया और पूरा शरीर पसीने से तर-बतर हो गया था। उस समय मुझ पर बहुत से लोग हंस भी रहे थे। लोगों की भीड़ मेरे चारों ओर घेरा बनाकर खड़ी थी। उस भीड़ में बच्चे, बूढ़े, आदमी, और औरतें आदि हर उम्र के लोगों का हुजूम था। उस भीड़ में से कुछ मुझे दंडित करने के लिए कह रहे थे, तो कुछ यह सब करने के लिए मना भी कर रहे थे। यह भीड़ कई घंटे तक मेरा तमाशा देखती रही। उस दिन मैं वह जमूरा बन गया था जो अपने उस्ताद की हर बात मानता है। इसके बाद धीरे-धीरे लोग अपने काम धंधा करने चले गये थे। मेरे एक-दो संगी-साथी ही, इस बुरे समय में मेरे पास जमे हुए थे। मैंने अपने ताऊजी को, जो मुझे उस समय याद आये बहुत अपशब्द कहे थे परंतु उन पर इन अपशब्दों का कोई असर नहीं हुआ। हमारा परिवार संयुक्त परिवार था। हमारे बापू और छोटे बाबा के बाद ताऊजी घर के तीसरे बड़े थे, इसलिए घर के किसी की हिम्मत मुझे

बंधनमुक्त करने की नहीं हुई। मैंने बंधनमुक्त होने की लाख कोशिशें कीं परंतु मुझे सफलता नहीं मिल सकी। मैं अपने ताऊजी को अनगिनत अपशब्द कह-कहकर थक गया था। मेरा रो-रोकर बुरा हाल हो गया था। घंटों धूप में पड़े रहने और निरंतर रोते रहने के कारण अब मुझे रोया भी नहीं जा पा रहा था। मुझे रोते-रोते हिचकियां आने लगीं और हिचकी लेते-लेते कुछ जमहाइयां सी आने लगी थीं। मैं अंधमुदी आंखों में सिसकियां ले रहा था।

जब ताऊजी ने मुझे बंधनमुक्त किया था, उस समय शाम ढलने लगी थी। मेरा शरीर आग की तरह ज्वर की ताप में जल रहा था। मुझे याद है उस समय उनकी आंखें गीली हो गयीं थीं।

तब मेरी मां शीघ्रता से घर के अंदर ले गई थी। उसने मुझे पानी पिलाया था। मेरा हाथ-मुंह भी धुलवाया था। वह मुझे देखकर खुद भी बहुत रो रही थी। मुझे धुंधली सी याद है मुझे बुखार आ जाने के कारण उस शाम किसी को रोटी अच्छी नहीं लगी थी। ताऊजी ने कहा था अगर तू पढ़ने चला जाता तो, आज काहे कूं तेरी यह हालत होती...।

वह दिन मेरे जीवन का दूसरा बड़ा दिन था। जब मैंने दूसरा सबक याद किया था। स्कूल के पहले दिन के सबक के बाद, इस दूसरे सबक ने मेरी जिंदगी की दिशा ही बदल दी थी। इस दिन के बाद मैंने स्कूल न जाने की बात कभी सोची भी नहीं। मैंने हर मुश्किल से जूझना यहीं से सीखा था। इसके बाद अपने किसी अपमान को बुजदिल बनकर सहन किया भी है परंतु अपने जीने के लिए कभी नहीं! बल्कि अपने जीवन में आगे बढ़ने, पढ़ने और पढ़-लिखकर कुछ बनने के लिए किया है। समाज में लाख बुराइयां हैं। उन्हें खत्म करना भी जरूरी है परंतु उनसे लड़ने लायक पहले अपने आप में उतनी कुब्बत तो पैदा कर लेनी जरूरी है। तब ही उन बुराइयों से लड़ा जा सकता है। इतिहास की हर बात को खोज-खोज कर सवर्णों से बात-बात पर उलझने, लड़ने और खून-खराबा करने से जीवन में कटुता और कलुषिता व्याप्त होने लगी है जिससे जीवन में आगे बढ़ने का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

किसी भी समाज और किसी समाज के व्यक्ति को गालियां देने से अपना मन खराब होता है। मन में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। गाली देने से समाज सुधर जाय तो अब तक समाज सुधर गया होता, क्योंकि अब तक हजारों-लाखों दलितों ने सवर्णों को हजारों-लाखों गालियां तो दी होंगी। अब तक समाज क्यों नहीं सुधरा है। इस संबंध में मुझे एक दोहा याद आ रहा है। वह इस प्रकार है।

मूरख मारे ईंट से, मूंड़ आंख फूट जाय,
ज्ञानी मारे ज्ञान से, अंग-अंग बिंध जाए।

मैं बहुत मध्यम दर्जे का विद्यार्थी था। यह स्वीकारने में मुझे बिलकुल संकोच नहीं होता है। उन दिनों मुझे किसी बात को समझने में बहुत मुश्किल होती थी। गणित मुझे बहुत कम समझ में आता था। भाग, गुणा, जोड़, कोंण में से मुझे जोड़ और कोंण ही आते थे। मास्साब श्यामपट पर जब भाग का सवाल हल करवाते थे, तब हमें हासिल भी बताना मुश्किल होता था। किसी ने कह दिया हासिल चार तब हमने भी चार कह दिया जो सदैव गलत ही होता था। मुझे ठीक से याद है कक्षा चार तक शायद ही कभी एकादवार सही निकला होगा।

मुझे पाठ याद करने के लिए अनेक बार कोशिश करनी पड़ती थी लेकिन मेरे निरंतर बार-बार अभ्यास करने के बाद मुझे पाठ याद हो जाया करता था। मैं अपने इसी अभ्यास के सहारे, सदैव धीमी चाल चलते हुए इस संसार में सरपट दौड़ने वाले अनेक नरमरोवों वाले खरगोशों और अनेक नाज-नखरों में पले-पोसे बच्चों से आगे निकलता रहा था। अपने इसी दम के बलबूते पर अपनी हर कक्षा पास करके आगे बढ़ता रहा। यह नीति सच साबित होती है–

"करत-करत अभ्यास के, जड़मत होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर पड़त निसान॥"

मैं हमेशा कुछ सीखने की कोशिश करता रहता था। इसी कोशिश ने मुझे सफलता के द्वार तक पहुंचाया है वरना एक गांव के मामूली प्राइमरी स्कूल में पढ़कर, पैसे-पैसे के लिए मजबूर बालक के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना कितना मुश्किल होता है। जब उसके पास सही ढंग के कपड़े न हों, पैसे न हों, जान पहचान न हो, गांव के सिवाय कोई रास्ता न देखा हो, उन रास्तों पर चलना उतना ही मुश्किल होता है जितना एक छोटे बच्चे को चलना सीखना और भाषा बोलना मुश्किल होता है। इन सब मुश्किलों के बाबजूद हर एक बच्चा चलना और बोलना सीखता ही है। मैं भी ठीक उसी तरह उन अनजानी राहों पर हर अभाव और मुश्किलों का सामना करता हुआ आगे बढ़ने लगा था।

पंडित रामस्वरूप प्राइमरी स्कूल में ही रहा करते थे। उनका गांव अतरोली के पास में कहीं था जो हमारे गांव से दस-पंद्रह कोस की दूरी पर था। वह अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए कक्षा चार और पांच के छात्रों को रात को अतिरिक्त पढ़ाया करते थे। यह उनका स्कूल में बच्चों को रात में पढ़ाने के साथ-साथ भीड़-भाड़

बढ़ाने का एक नया तरीका था। जाडों के दिनों में दिन छोटे और रात कुछ बड़ी हुआ करती हैं। रात का भोजन मास्साब गांव के सबसे बड़े जमींदार महाराज सिंह के घर किया करते थे। वहां पर भोजन बनने में कभी-कभी कुछ देर हो जाया करती थी। इस प्रकार प्रारम्भ में सभी बच्चों की भीड़ उनके चबूतरे पर जुटती थी। हम लोग बाहर बैठे रहते थे। जो सवर्ण बच्चे थे, वे सभी भीतर चले जाया करते थे। अथवा बाहर धमा-चौकड़ी करते रहते थे। पंडित जी भोजन कर लेने के बाद जमींदार साहब के बच्चे भोजन करते थे, तब सब लोग बड़ी भीड़ के रूप में स्कूल की ओर प्रस्थान किया करते थे। इस तरह हम सभी एक साथ स्कूल की ओर जाते थे। इस भीड़ को देखकर बहुत से कुत्ते जोर-जोर से भोंकते थे। इस विकट स्थिति को टालने के उद्देश्य से कुछ दिन बाद पंडित जी के अपने निर्णयानुसार आस-पास के ठाकुरों और गोस्वामियों के बच्चे ही उनके साथ स्कूल जाया करते थे। इसके अतिरक्त अन्य जातियों के शेष बच्चे स्कूल पर ही पहले पहुंचकर इंतजार करते थे। इस प्रकार हमें स्कूल के बाहर जाड़ों के दिनों में ठंड में बहुत ठिठुरना पड़ता था। पंडित जी कभी-कभी घर के लोगों से बात करने में अधिक ध्यानमग्न हो जाया करते थे। तब उन्हें रात को स्कूल पहुंचने में दस भी बज जाया करते थे। शीत ऋतु की रातें बहुत लंबी और अधिक ठंडी हुआ करती हैं। इस भयंकर ठंड से कभी-कभी बहुत से बच्चे बीमार भी हो जाया करते थे। उन दिनों हमारे स्कूल पर बिजली नहीं थी। हम सब लालटेन की रोशनी में ही पढ़ते थे। दोनों कक्षाओं में कुल मिलकर लगभग चालीस छात्र हुआ करते थे।

इस तरह जाड़े की रात में ठिठुरने की परेशानी के कारण पूरे छात्र रात को कभी पढ़ने नहीं आया करते थे। स्कूल के कुछ बच्चे सच में बीमार होने के कारण तो कुछ मस्ती में अन्य कोई झूठा बहाना बनाकर जैसे-पेट में दर्द, दाढ़ में दर्द, मूड़ में दर्द, हाथ-पैरों में हड़कल, दस्त, अम्मा बीमार है, घर में कोई नहीं है आदि-आदि बहानों की इस दुनिया में कभी कोई कमी रही है। और शायद न आने वाले दिनों में कोई कमी रहेगी। वह बहाना बनाकर रात में पढ़ने के लिए नहीं आते थे। जब कभी बहाना हल्का पड़ गया, तब आंखों में झूठे मोटे-मोटे आंसू लाकर रो गए। बस काम पक्का। है कोई माई का लाल जो बहाने को काट दे। यह सब बहाने मास्साब को गोली देने के लिए हुआ करते थे।

उस दौर में सभी बच्चे आपस में बड़े सच्चे और ईमानदार हुआ करते थे। मुझे आज भी सब बच्चे सच्चे और ईमानदार लगते हैं। उनकी मजबूरी उन्हें झूठ बोलने पर मजबूर करती है। आपस में बच्चे एक दूसरे को सब सच्ची बात बता दिया करते

थे। वह मुझसे आकर कहते थे। आज मैंने सारो मास्साब चू...या बनाइ दयो। मैं उनकी इस नादानी पर बस हंस भर देता था। हमारी जाति के बच्चे अकसर मुझसे कहा करते थे। तू काये कूं रोज पढिबे कूं आइ जातुये। सा...रो मास्साब बाबरो है गयो है। वा पै तो कोई काम नाएं। हम का बाबरे हैं जो जा सारे की बात न में आ जामें।

मैं उनसे कहता था। कोई बात नाइ। का है गयो। मैं पढ़ाई का काम पूरा तो कर लेता हूं। नहीं तो तुम कहा से कॉपी की नकल करोगे। तब वह फिर कहते थे। जि तो ठीक है। लेकिन वहां हमारे संग कोई खेलिबे कू नाई मिलतु। यार हमें कहां कलट्टरी मिल रही है। मास्साब भी कहते हैं। हमें तो मेहनत मजदूरी ही करनी है। हम फिर काहे कू आपनों बक्त खराब करें।

कक्का! जानवरों को घुमाइवे की कहते हैं। वह रात में कह रहे थे। अबकें कोई शादी वारो आई जाई, तो तेरी भावर डाल दऊं।

अब मैं का करूं भैया। अबकें कोई शादी वारो आइ जाय, तो बस पढ़ाई बंद...। यह बात उसने मुझसे बड़ी जोर देकर कही थी।

मैंने उससे कहा! जब तुम शादी ही करने की इच्छा रखते हो तो ठीक है। तुम अपने घर जाओ और मौज करो।

इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक हो जाता है कि उत्तर भारत के गंगा-यमुना के दोआब में बसे मैदानी इलाकों के गांवों में पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था है इसलिए लड़के वालों के घर लड़की के पिता अपनी पुत्री के लिए योग्य वर की तलाश में अपने संबंधियों, मित्रों को लेकर बारिश के बाद में देवठान के बाद आना प्रारम्भ करते हैं।

जब हम सब बच्चे सुबह स्कूल जाते थे। तब मुहल्ले के सब लड़के एक साथ में जाते थे। सभी के साथ जाने के लिए लड़कों के घर जा-जाकर उसके रोटी खाने तक का इंतजार करना पड़ता था। इससे एक फायदा यह होता था कि हममें से किसी भी बच्चे को रास्ते में किसी माई के लाल की छूने अथवा मारने की हिम्मत नहीं होती थी। दूसरे कुत्तों के काटने का डर कम रहता था। घर से सभी के साथ स्कूल जाने में सबसे बड़ा नुकसान स्कूल में देरी से पहुंचना होता था। तब तक सभी छात्र प्रार्थना के बाद अपनी-अपनी कक्षाओं में बैठ चुके होते थे। अध्यापक कक्षाओं में पढ़ा रहे होते थे। कक्षा में देर से आने के लिए कभी मार पड़ती थी, तो कभी मार से बच भी जाया करते थे।

बढ़ाने का एक नया तरीका था। जाडों के दिनों में दिन छोटे और रात कुछ बड़ी हुआ करती हैं। रात का भोजन मास्साब गांव के सबसे बड़े जमींदार महाराज सिंह के घर किया करते थे। वहां पर भोजन बनने में कभी-कभी कुछ देर हो जाया करती थी। इस प्रकार प्रारम्भ में सभी बच्चों की भीड़ उनके चबूतरे पर जुटती थी। हम लोग बाहर बैठे रहते थे। जो सवर्ण बच्चे थे, वे सभी भीतर चले जाया करते थे। अथवा बाहर धमा-चौकड़ी करते रहते थे। पंडित जी भोजन कर लेने के बाद जमींदार साहब के बच्चे भोजन करते थे, तब सब लोग बड़ी भीड़ के रूप में स्कूल की ओर प्रस्थान किया करते थे। इस तरह हम सभी एक साथ स्कूल की ओर जाते थे। इस भीड़ को देखकर बहुत से कुत्ते जोर-जोर से भोंकते थे। इस विकट स्थिति को टालने के उद्देश्य से कुछ दिन बाद पंडित जी के अपने निर्णयानुसार आस-पास के ठाकुरों और गोस्वामियों के बच्चे ही उनके साथ स्कूल जाया करते थे। इसके अतिरक्त अन्य जातियों के शेष बच्चे स्कूल पर ही पहले पहुंचकर इंतजार करते थे। इस प्रकार हमें स्कूल के बाहर जाड़ों के दिनों में ठंड में बहुत ठिठुरना पड़ता था। पंडित जी कभी-कभी घर के लोगों से बात करने में अधिक ध्यानमग्न हो जाया करते थे। तब उन्हें रात को स्कूल पहुंचने में दस भी बज जाया करते थे। शीत ऋतु की रातें बहुत लंबी और अधिक ठंडी हुआ करती हैं। इस भयंकर ठंड से कभी-कभी बहुत से बच्चे बीमार भी हो जाया करते थे। उन दिनों हमारे स्कूल पर बिजली नहीं थी। हम सब लालटेन की रोशनी में ही पढ़ते थे। दोनों कक्षाओं में कुल मिलकर लगभग चालीस छात्र हुआ करते थे।

इस तरह जाड़े की रात में ठिठुरने की परेशानी के कारण पूरे छात्र रात को कभी पढ़ने नहीं आया करते थे। स्कूल के कुछ बच्चे सच में बीमार होने के कारण तो कुछ मस्ती में अन्य कोई झूठा बहाना बनाकर जैसे-पेट में दर्द, दाढ़ में दर्द, मूड़ में दर्द, हाथ-पैरों में हड़कल, दस्त, अम्मा बीमार है, घर में कोई नहीं है आदि-आदि बहानों की इस दुनिया में कभी कोई कमी रही है। और शायद न आने वाले दिनों में कोई कमी रहेगी। वह बहाना बनाकर रात में पढ़ने के लिए नहीं आते थे। जब कभी बहाना हल्का पड़ गया, तब आंखों में झूठे मोटे-मोटे आंसू लाकर रो गए। बस काम पक्का। है कोई माई का लाल जो बहाने को काट दे। यह सब बहाने मास्साब को गोली देने के लिए हुआ करते थे।

उस दौर में सभी बच्चे आपस में बड़े सच्चे और ईमानदार हुआ करते थे। मुझे आज भी सब बच्चे सच्चे और ईमानदार लगते हैं। उनकी मजबूरी उन्हें झूठ बोलने पर मजबूर करती है। आपस में बच्चे एक दूसरे को सब सच्ची बात बता दिया करते

थे। वह मुझसे आकर कहते थे। आज मैंने सारो मास्साब चू...या बनाइ दयो। मैं उनकी इस नादानी पर बस हंस भर देता था। हमारी जाति के बच्चे अकसर मुझसे कहा करते थे। तू काये कूं रोज पढिबे कूं आइ जातुये। सा...रो मास्साब बाबरो है गयो है। वा पै तो कोई काम नाएं। हम का बाबरे हैं जो जा सारे की बात न में आ जामें।

मैं उनसे कहता था। कोई बात नाइ। का है गयो। मैं पढ़ाई का काम पूरा तो कर लेता हूं। नहीं तो तुम कहा से कॉपी की नकल करोगे। तब वह फिर कहते थे। जि तो ठीक है। लेकिन वहां हमारे संग कोई खेलिबे कू नाई मिलतु। यार हमें कहां कलट्टरी मिल रही है। मास्साब भी कहते हैं। हमें तो मेहनत मजदूरी ही करनी है। हम फिर काहे कू आपनों वक्त खराब करें।

कक्का! जानवरों को घुमाइवे की कहते हैं। वह रात में कह रहे थे। अबकें कोई शादी वारो आई जाई, तो तेरी भावर डाल दऊं।

अब मैं का करूं भैया। अबकें कोई शादी वारो आइ जाय, तो बस पढ़ाई बंद...। यह बात उसने मुझसे बड़ी जोर देकर कही थी।

मैंने उससे कहा! जब तुम शादी ही करने की इच्छा रखते हो तो ठीक है। तुम अपने घर जाओ और मौज करो।

इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक हो जाता है कि उत्तर भारत के गंगा-यमुना के दोआब में बसे मैदानी इलाकों के गांवों में पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था है इसलिए लड़के वालों के घर लड़की के पिता अपनी पुत्री के लिए योग्य वर की तलाश में अपने संबंधियों, मित्रों को लेकर बारिश के बाद में देवठान के बाद आना प्रारम्भ करते हैं।

जब हम सब बच्चे सुबह स्कूल जाते थे। तब मुहल्ले के सब लड़के एक साथ में जाते थे। सभी के साथ जाने के लिए लड़कों के घर जा-जाकर उसके रोटी खाने तक का इंतजार करना पड़ता था। इससे एक फायदा यह होता था कि हममें से किसी भी बच्चे को रास्ते में किसी माई के लाल की छूने अथवा मारने की हिम्मत नहीं होती थी। दूसरे कुत्तों के काटने का डर कम रहता था। घर से सभी के साथ स्कूल जाने में सबसे बड़ा नुकसान स्कूल में देरी से पहुंचना होता था। तब तक सभी छात्र प्रार्थना के बाद अपनी-अपनी कक्षाओं में बैठ चुके होते थे। अध्यापक कक्षाओं में पढ़ा रहे होते थे। कक्षा में देर से आने के लिए कभी मार पड़ती थी, तो कभी मार से बच भी जाया करते थे।

उन दिनों प्राइमरी स्कूल में अध्यापक बहुत कम आया करते थे परंतु मिलिट्री के जवानों की तरह पीटी का आदेश मिलने पर घंटों सभी विद्यार्थी पीटी का अभ्यास ही कर रहे होते थे। खाली पीटी में बस कदम ताल, कदम ताल करते रहते थे परंतु हम अछूतों के बच्चों को लेजम की पीटी नहीं करने देते थे। लेजम की टीम में सब सवर्णों के बच्चे ही हुआ करते थे। सुबह के समय में सभी सुलेख, इमला अर्थात श्रुतिलेख लिखने में व्यस्त कर दिये जाते थे। सभी विद्यार्थियों को शाम के समय एक स्थान पर एक बड़े गोल घेरे में बैठाकर जोर-जोर से ऊंची आवाज में गिनती अथवा पहाड़े याद करने का सस्वर पाठ करवाया जाता था। यह सब कार्य स्कूल में एक ही अध्यापक संपन्न कर दिया करता था। स्कूल में सभी अध्यापक मात्र परीक्षाओं के समय, डिप्टी साहब के प्रस्तावित दौरे के समय और महीने में अपना वेतन लेने के समय में अवश्य उपस्थित रहा करते थे।

हमारे मुहल्ले के किसी भी बच्चे की पड़ने में दिलचस्पी नहीं थी। सभी बच्चे छुट्टी के बाद खेलना-कूदना, मौज-मस्ती में मग्न रहा करते थे। मुहल्ले के बच्चे अभाव के दिनों में किसी के खेत पर न रहने पर मूली उखाड़ लेते थे। गाजर उखाड़ लेते थे। मुझे सदैव उनके इस व्यवहार से डर लगा रहता था। मेरे संगी-साथी खेतों में से कुछ भी उखाड़ कर लाते थे। वह उसमें से मुझे मेरा हिस्सा अवश्य देते थे। उनके द्वारा मुझे हिस्सा देने के पीछे दूसरा कारण मेरी कॉपी से नकल करके अधूरा पिछला काम पूरा करना होता था लेकिन वे सब लोग कभी पकड़े जाने पर मार अकेले ही खा लिया करते थे।

स्कूल जाने का रास्ता श्री मथुरी प्रसाद प्रधान जी के घर के सामने से होकर जाता था। उनका एक काला कुत्ता था। वह काला कुत्ता उस रास्ते से आने-जाने वालों के ऊपर भोंकता रहता था। उस कुत्ते की विशेषता थी। वह आदमी और छोटे बच्चों को अकेले आने-जाने पर दौड़ा कर काट लिया करता था। एक दिन मैं भी उसके हत्थे चढ़ गया था। उस दिन फीस लेने के लिए मास्साब ने मुझे घर भेज दिया था। घर में पैसे नहीं थे। इस कारण से मुझे घर से फीस नहीं मिली थी। मैं इसी कारण उस दिन स्कूल नहीं आने वाला था। मेरा बस्ता स्कूल में ही रखा हुआ था। उस दिन मजबूरी में दोपहर की छुट्टी के बाद अकेले स्कूल जा रहा था। इसके बाद मुझे उस काले कुत्ते ने दौड़ा लिया। मैंने बहुत तेजी से दौड़ लगाकर बचने की लाख कोशिश की परंतु उस बेरहम कुत्ते ने मुझे पीछे से पैर में काट ही लिया था। मेरे पैर से लगातार खून बह रहा था। उसके बाद रोता हुआ स्कूल पहुंचा। मास्साब ने मुझे एक दूसरे

लड़के के साथ बस्ता लेकर तुरंत मेरे घर भेज दिया था। घर में मेरी दादी मां ने सूखी लाल मिर्च उल्टी सिल पर बटकर घाव पर बांध दिये थे। मुझे सूखी लाल मिर्च घाव पर लगाने से बहुत तकलीफ हुई थी। उस जमाने में सब गरीबों के लिए फोरीतौर पर यही पेटेंट इलाज हुआ करता था। इसके अतिरिक्त अन्य इलाजों में जखम होने पर हल्दी, सर्दी लगने पर गुड़, कांटा लगने पर तंबाकू, गुम्म चोट लगने पर गेहूं की एक तरफ पकी हुई रोटी अर्थात अधपकी रोटी और पेट दर्द होने पर हींग खाने को दी जाती थी।

हमारे प्राइमरी स्कूल में उन दिनों तीन लालटेनें होती थीं। एक लड़कियों के लिए दूसरी सवर्ण लड़कों के लिए तथा तीसरी अन्य पिछड़ी और निम्न जातियों के लड़कों के लिए। उन दिनों स्कूल में पढ़ाई कम मस्ती अधिक हुआ करती थी। सभी छात्र मुश्किल से एक अथवा डेढ़ घंटे के लगभग पढ़ते होंगे। इसके बाद सब बच्चों को नींद आने लगती थी और सभी विद्यार्थी सोने के लिए चले जाते थे। मास्साब कहते थे। कल सवेरे जग जाना। सब छात्र हां में एक साथ अपना सिर हिलाते थे। इसके बाद वे कभी सुबह उठते थे तो, कभी नहीं उठते थे परंतु सभी छात्र पंडितजी के कहने पर सुबह उठने का उपक्रम अवश्य करते थे, वे अल सुबह उठकर फिर से सो जाते थे। यह भी भला कोई सुबह के समय उठने में उठना हुआ।

हमारी कक्षा पांच की परीक्षा होने वाली थी। उस समय में कक्षा पांच की परीक्षा भी बोर्ड की हुआ करती थी। इसलिए हमारे स्कूल का केंद्र साथा गांव के बड़े स्कूल में पड़ा था। मास्साब ने हमें अपने साथ खाना, तथा सोने के लिए कपड़े लेकर एक दिन पूर्व साथा गांव चलने के लिए आदेश दिया था। मैं अपने घर से लोहे के बक्से में खाना, कपड़े और पढ़ने की पुस्तकें अपने सिर पर लेकर सभी छात्रों के साथ पैदल ही साथा गांव चल पड़ा था। साथा हमारे गांव से लगभग तीन-चार कोस दूर रहा होगा। हम सभी विद्यार्थी वहां दूसरे दिन परीक्षा देते रहे थे। हम उस गांव से तीसरे दिन लौटकर आए थे। हम सभी छात्रों ने इन दिनों में अपने घर से बनवाकर लाई हुई रोटी ही खाई थीं।

हम अछूत थे। उसका एक फायदा अवश्य होता था। हमारे सामान को कोई छूता नहीं था लेकिन ठाकुर, और ब्राह्मणों के लड़के हमारे सामान को अपने पैर से ठोकर अवश्य मार दिया करते थे। मुझे आज तक याद है मास्साब ने हमें अलग बाहर चबूतरे के एक कोने पर रहने को स्थान दिया था। उसी के बराबर में नाली बह रही थी। शेष सभी सवर्ण बच्चों ने ठाकुरों की चौपाल के बरामदे में अपना सामान रखा

था। उसी चौपाल के पास में ही ठाकुरों का कुंआ था। हम उस दौर में भी कुएं से स्वयं पानी नहीं खींच सकते थे। मुझे रोटी खाने पर पानी के लिए घंटों इंतजार करना पड़ा था। हमारा पानी पीना और पानी न पीना सब सवर्ण लड़कों की मेहरबानी पर निर्भर करता था। मैंने अपनी ओख से ही पानी पिया था। उस दिन पानी, पीने में मेरी कमीज की बांह भी भीग गई थी। एक बार पानी पीकर दुबारा पानी फिर कब मिलेगा, इसका कोई पता नहीं था। इसलिए मैंने खूब जी भरकर के पानी पिया था। इस पर भी सवर्ण बच्चे कहते थे। सा...रो नाको है। पूरी बाल्टी ही पीके हटैगो? मैं उनसे क्या कहता? हंसता हुआ अलग चला गया था। जब दूसरों की दया ही किस्मत है तब क्या किया जा सकता है। ऐसी विकट और विपरीत परिस्थिति में मेरे विचार से लड़ना किसी समस्या का सदैव हल नहीं होता है बल्कि उस समस्या के निदान के लिए संवाद जरूरी होता है। नीति भी यह कहती है-अगर आपका एक दुश्मन है तब उसके लिए दस दोस्त बना लीजिए लेकिन जब आपके सौ दुश्मन हों, तब आप एक हजार दोस्त नहीं बना सकते हैं। इस स्थिति में आप दुश्मनों से दोस्ती कर लीजिये। यहां मुझे किसी से लड़ाई-झगड़े के स्थान पर गांधीजी का सिद्धांत अहिंसा परमो धर्म उचित जान पड़ा। वैसे भी जहां पांच सात कसाई जुड़े हुए हों, वहां पर एक संत कर भी क्या सकता है। शायद इसीलिए गांधीजी ने एक गाल पर थप्पड़ मारने वाले व्यक्ति के सामने दूसरा गाल प्रस्तुत करने का सिद्धांत प्रतिपादन किया होगा। ऐसा करने से मारने वाले व्यक्ति के मन में दया का भाव उत्पन्न होने की संभावना की एक मद्धिम सी प्रकाश की किरण दिखाई पड़ती है।

6

जब मुझे भेड़िये ने उठाया था। अर्थात जब मुझे भेड़िया अपने मुंह में दबाकर ले भागा था तब मेरी उम्र लगभग तीन बरस की रही होगी। उस समय मेरी मां की गोद में मेरी छोटी बहन सरोज भी थी। उसकी उम्र करीब एक साल से कुछ अधिक रही होगी। इसके बाद मेरी छोटी बहन नीरा रानी, बहन चंद्रकला के अतिरिक्त मेरा एक भाई मुनीपाल सिंह को मिलकर हम पांच भाई-बहन थे। हम सभी भाई-बहनों में एक-दो साल का अंतर था। मेरा एक और भाई चन्द्रशेखर भी था। वह बहुत सुंदर और तीव्र बुद्धि का था। उसने जब बोलना सीखा था। तब से बहुत अच्छी-अच्छी

बातें किया करता था। वह अपने बचपन में ही बीमारी के चलते हमसे नाता तोड़कर कहीं दूर चला गया था। अब वह इस दुनिया में नहीं है। बस उसकी चंद यादें ही शेष रह गयीं हैं।

बहन सरोज मुझसे एक वर्ष छोटी थी। वह गुड़िया की तरह बहुत सुंदर थी। जब वह कुछ बड़ी हुई, तब घर के सब काम मजबूरी में वही संभालने लगी थी। मां जब-जब बीमार होती। तब-तब वह उससे पूछ-पूछ कर खाना बनाने का उपक्रम किया करती थी। एक तरह से घर का सारे काम मेरी बहन ही संभाला करती थी।

मैं घर में कभी झाड़ू लगाने के साथ-साथ कुएं से पानी भी भर लाया करता था। इतना ही नहीं घर में प्रतिदिन आवश्यकतानुसार हल्दी-मिर्च भी पीस दिया करता था। इसके बाद के सभी कार्य बहन के जिम्मे हुआ करते थे।

हम दोनों भाई-बहन पढ़ने के लिए स्कूल साथ-साथ जाया करते थे लेकिन हम दोनों के स्कूल अलग-अलग थे। मैं गांव के लड़कों के प्राइमरी स्कूल में पढ़ता था। मेरी बहन कन्या प्राइमरी पाठशाला में पढ़ती थी। वह देखने में बहुत छोटी परंतु उसके नन्हें-नन्हें हाथ बड़ी फुर्ती से काम किया करते थे। जब घर का काम समाप्त हो जाता था। तब वह नन्ही सी जान छोटे भाई-बहनों को संभाला करती थी। वह स्कूल से लौटने के बाद घर की झाड़ू बुहारू में लग जाया करती थी। उसका मन बहुत पढ़ने के लिए होता था परंतु बेचारी घर की मजबूरी के चलते आगे नहीं पढ़ सकी थी।

सरोज बहुत पूजा पाठ में विश्वास रखती थी। उसके सोलह सोमवार नहाये थे। वह इतना ही नहीं कार्तिक के ठंड के महीने में उपवास रखते हुए चार बजे नहाकर पूजा अर्चना करती तथा उसके बाद गीत गाया करती थी। हमारे पिताजी पुराने खयालात के थे। उन्होंने मेरी बड़ी बहन की शादी श्री सतबीर सिंह के साथ नौदेई में तय कर दी थी। उनके पास थोड़ी सी जमीन और बहुत अच्छा पक्का मकान बना हुआ था। इसके अतिरिक्त उनके घर में सिलाई का काम भी किया जाता था। मुझे इस बात अत्यंत दुःख है कि मैं अपनी इस बहन के लिए आज तक कुछ नहीं कर पाया हूं। उनकी अपने गांव में कुछ जमीन के साथ अच्छी हवेली बनी हुई थी परंतु वह कुछ समय बाद अपना गांव छोड़कर दिल्ली में एक्सपोर्ट फैक्टरी में काम करने लगे थे। इससे कुल मिलाकर उनका गुजारा अच्छा चल रहा था।

मेरी एक छोटी बहन नीरा कुमारी पढ़ने में कुछ ठीक थी। वह पढ़ना भी चाहती थी। जब उसने गांव के कन्या प्राइमरी पाठशाला से कक्षा पांच की परीक्षा पास की

थी। तब मैंने उसका प्रवेश पॉवर हाउस के कन्या विद्यालय में करवा दिया था। उस विद्यालय में सभी नौकरीपेशा लोगों के बच्चे पढ़ा करते थे। वहां पर पढ़ने वाली सभी लड़कियों के कपड़े बड़े अच्छे हुआ करते थे। उस स्कूल में सभी लड़कियां अपनी-अपनी साइकिल से पढ़ने के लिए आया करती थीं। उन दिनों उस कन्या विद्यालय में पढ़ने, वाली कक्षा दस की छात्राओं की पोशाक हरी कुर्ती और सफेद सलवार हुआ करती थीं।

उन दिनों बेचारी के पास एक जोड़ी सलवार और कुर्ती ही हुआ करती थी। वह उसी को छह दिन पहनती थी। मैं अपनी छोटी बहन की ड्रेस को इतवार के दिन धोकर इस्तरी कर देता था। हमें सबसे अधिक परेशानी बारिश के दिनों में होती थी। घर से स्कूल जाते समय कपड़ों पर कीचड़ के दाग लग जाया करते थे। लाख कोशिशों के बाद भी उन दिनों कपड़ों के दाग नहीं छूटा करते थे। इससे ड्रेस बहुत गंदी दिखाई दिया करती थी। मैंने अपने पिताजी से एक दूसरी जोड़ी सलवार-कुर्ती बनवाने के लिए कई बार आग्रह किया था परंतु मुझे खूब याद है मेरी बहन नीरा कुमारी के लिए एक अतिरिक्त ड्रेस कभी नहीं बन पाई थी। इस समस्या का निवारण दूसरी साल बनने वाली नई ड्रेस के साथ पुरानी ड्रेस को अदल-बदलकर पहन कर किया गया था। वह एक बार कक्षा आठ में फेल हो गई थी। इससे उसे बहुत दुःख हुआ था। इस समस्या का हल बड़ी मुश्किल से उत्तर पुस्तिकाओं की दुबारा जांच करवाकर निकाला गया था।

उसने कक्षा नौ और दस नियमित पढ़कर पास की थीं। मैं अपनी बहन को और अधिक पढ़वाने के लिए घर में पिताजी से निवेदन करता रहा था लेकिन पिताजी उसकी शादी करना चाहते थे। इस बात को लेकर घर में बहुत नाराजगी रही थी। उन दिनों घर में आखिर मेरी कौन सुनने वाला था।

7

मैंने अपने बचपन में अपने बाबा को कभी बीमार नहीं देखा था। इसका सबसे बड़ा कारण उनका कुछ न कुछ कार्य करते रहना माना जा सकता है। वह अपनी युवावस्था में चांदी के रुपये को एक हाथ के अंगूठे और उंगलियों से बीच से दबाकर दुहरा और फिर से उसे सीधा भी कर दिया करते थे। उन्होंने अपने पूरे जीवन काल

में शरीर के चलते रहने तक कभी बैठकर आराम नहीं किया था। अपने घर की खेती के साथ-साथ जानवरों का चारा स्वयं लाते और खुद हाथ के गढ़ासे से कुटी काटकर जानवरों को स्वयं चारा डालकर उनका पेट भी भरते थे। जब उनका शरीर कुछ थक सा गया था। तब उनसे खेती का काम नहीं हो पाता था। वैसे भी खेतों में नाममात्र का अनाज पैदा हो पाता था। वे किसी और की गुलामी करने से घर का काम करना बेहतर समझते थे। अब खेत में काम करने वाला घर में कोई भी नहीं था। दूसरे रात में कोई अन्य खेतों की रखवाली करने वाला न होने के कारण रेडियो स्टेशन में से नीलगाय आकर खेतों में बहुत नुकसान किया करती थीं। इस कारण उसमें अनाज कम हो पाता था।

इसी समय ताऊजी अपने परिवार को लेकर अलग हो गए थे। उस समय उनकी सिलाई से कुछ आमदनी भी बढ़ गई थी। तब उन्होंने अपने आपको संयुक्त परिवार की जिम्मेदारियों से भी मुक्त कर लिया। इसके बाद बाबा और अम्मा हमारे साथ रहने लगे थे। एक ही घर में सब लोग साथ-साथ ही रहा करते थे लेकिन दोनों घरों का खाना अलग-अलग बनता था। जब कभी किसी घर में अच्छा खाना बनता था तब बाबा और अम्माजी को पहले खाना दिया जाता था। परिवार के सगे-संबंधी और रिश्तेदारों के आने पर उन्हें एक-एक दिन का खाना खिलाया जाता था। यह सब मेरी ताईजी के जीवित रहने तक चलता रहा था।

इसकी असल बात मेरे चाचाजी द्वारा कुछ कम कमाना रहा था। दूसरे मेरे पांच भाई-बहन थे। सबमें एक से लेकर दो साल का अंतर था। इन सब छोटे बच्चों की देखभाल करना बहुत मुश्किल काम होता था। यह सभी बच्चे घर का कोई काम नहीं करने देते थे। उन्हें खाना-पीना और सोने के अतिरिक्त कुछ आता ही नहीं था। घर के सब बच्चों में कुल मिलाकर मुझे बड़ा समझ सकते हैं परंतु कितना बड़ा? मां मुझे सब बच्चों की देखभाल में लगा देती थी। मेरी बहन कुछ बड़ी हुई तब वह भी बच्चों की देखभाल करने लगी थी। इस तरह अपने भाई-बहनों की देखभाल करने के साथ-साथ हम दोनों भाई-बहन पढ़ने के लिए भी जाया करते थे।

उन दिनों पिताजी को जो काम मिल जाया करता था वे उसी काम को कर लिया करते थे। वे कभी-कभी मुंहअंधेरे चार बजे ही ईख की खुदाई करने के लिए चले जाया करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने जाड़े की ठंडी रातों में खेतों में खड़ी कच्ची फसल में पानी भी लगाया है। खेतों की परेवट भी की है। बेलदारी भी की

है। एक प्रकार से उन्होंने सब काम किये जो उन्हें मिलते थे। मेरे पिताजी जीवन जीने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात समय के सबब को बखूबी जानते थे।

समय के सबब को जानने से तात्पर्य प्रत्येक परिस्थिति में जीवन को जीने की कला से है। सुख में तो प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन जी लेते हैं लेकिन दुःखों और विपरीत परिस्थितियों में भी जीवन उसी सफलता के साथ योद्धा की तरह अपने सामने आने वाली हर मुश्किल का सामना करते हुए जीवन जीते हैं अर्थात सर्दी, गर्मी, और बरसात के मौसमों के बर्फीले तूफानों की मार को बर्दास्त कर जो जीवन बनता है वह फौलाद होता है। उसकी हस्ती सदियों तक मिटाने वाला इस दुनिया में कोई नहीं होता है।

देखा जाय तो दलित आज इस दुनिया में हर तरह के झंझावातों को बर्दास्त करते हुए निरंतर आगे बढ़ रहे हैं। यह उनके समय के सबब की कला ही तो है जो उन्हें निरंतर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती रहती है। अक्षुण्य अभावों के बीच पेट की आग को शांत करने की जद्दोजहद और समाज के कटीले व्यंग्य-बाणों की निरंतर मार, उन्हें बल और शक्ति प्रदान करती रहती है। यह बात अलग है सभी दलित आगे नहीं बढ़ पाते हैं कुछ अभागे उस युद्धभूमि में अपने समाज और समाज के लोगों की विजयश्री के लिए बलि चढ़ जाते हैं उस फूल की तरह जो मौसम के समय खिलने वाले फूल की तरह उसी पेड़ और उसी पेड़ की किसी डाल पर पुष्प बनकर लगता है जिन पर अन्य पुष्प बने और पल्लवित हुए और जिन्हें बहार भी आयीं है। आज वह समाज में ध्रुव तारे के समान अपनी चमक बनाए हुए एक मुकाम हासिल किए हुए हैं। उसी प्रकार जैसे अंटार्कटिका के बेरहम मौसम के बर्फीले तूफानों की मार को झेलते हुए जो जीव बड़े होते हैं। उनको कौन सा मौसम हरा सकता है। हराने की बात से याद आया जूलियस सीजर को भी हरा दिया गया था। वह हराना नहीं कायरता थी। दस लोग मिलकर एक की हस्ती मिटा दें, यह भी कोई बात हुई परंतु इस दुनिया में सब बड़े, राजे-महाराजे अपनी धूर्तता और चालाकी से ही बड़े बने हैं। इसी चालाकी का दलितों में बहुत अभाव है जो सवर्णों में कूट-कूटकर नाक तक भरी हुई है। इसी चालाकी के बल पर सवर्ण आज स्वतंत्र भारत में भी सत्ता के शीर्ष पर बैठे ही नहीं हैं बल्कि राज का आनंद और सत्ता का सुख भोग रहे हैं।

मुझे अपनी मां के लिए कुछ कामों में मदद करनी होती थी। उस समय घर में नमक मोटी डली वाला आया करता था। आज की तरह पिसे हुए ब्रांडेड नमक

नहीं हुआ करते थे। आज यह गलत प्रचारित किया जाता है नमक में आयोडीन नहीं होती है। नमक की हर डली के प्रत्येक कण में भरपूर और प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक आयोडीन की भरपूर मात्रा होती है। मेरे परिवार के सभी लोग उसी नमक को खाकर बड़े हुए हैं। मेरा परिवार ही नहीं पूरे गांव और मेरी बस्ती के लोग उसी डली वाले नमक को खा कर बड़े हुए हैं लेकिन मेरे पूरे समाज के लोगों में कभी भी आयोडीन की कमी महसूस हुई थी। आज आयोडीन-आयोडीन का हो-हल्ला मचाकर गरीबों के नमक से भी खूब कमाई की जाती है। नमक कल भी और आज भी समुद्र के खारे पानी को धूप में सुखाकर ही बनाया जाता है। दुनिया चाहे जितनी तरक्की कर जाय नमक हमेशा समुद्र के खारे पानी से ही बनेगा और बनता रहेगा। मेरे घर में आज भी डली वाला नमक ही प्रयोग किया जाता है। इतना अवश्य था। हम लोग अपने घर में प्रयोग के लिए स्वयं नमक सिलबट्टे से पीसकर रखते थे। इसके साथ कभी-कभी हल्दी और मिर्च के साथ-साथ नमक पीसने का शुभ कार्य मुझे ही करना होता था।

भारत को त्योहारों का देश कहना अतिशयोक्ति न होगा! घर में तीज-त्योहार आलू और दाल की कचोडियां भी भरने और पूड़ी बनाने के लिए गोल-गोल लोई बनाकर रखता था ताकि तेल पूड़ी कचोड़ियों के सेंकने में कम लगे और शीघ्रताशीघ्र खाना बनकर तैयार हो जाए। क्या करता बच्चे मां को काम करने नहीं देते थे। हम सब मिलकर घर का काम कर लिया करते थे। जब फसल पक जाती थी उन दिनों मैं सरसों की लकडियां भी काट-काटकर आने वाले दिनों के लिए जमा करता था। घर का सब कार्य करने के कारण मुहल्ले के लोग मेरी बहुत मजाक उड़ाया करते थे। मजाक उड़ाने वाले नहीं चाहते हैं, हम ठीक तरह से रहे, यह बात मुझे उस समय बहुत अच्छी तरह के मालूम थी। आज भी मुझे किसी की मदद करने में बहुत सुख का अनुभव होता है। आज जब भी मुझे किसी की मदद करने का अवसर मिलता है उसकी खुले हाथ से चुपचाप मदद कर देता हूं। मुझे आज तक मदद करने से दुःख नहीं हुआ है। दुःख तब होता है जब हम मदद करने वाले से कुछ पाने की आशा रखते हैं। मेरी कोई आशा-अभिलाषा ही नहीं है तब मुझे भला दुःख क्यों कर होने लगा। इस दुनिया में कोई कार्य छोटा अथवा बड़ा नहीं हुआ करता है। सभी कार्य, कार्य ही होते हैं इसलिए कार्य करने से आदमी बड़ा होता है और आदमी कार्य करने से छोटा तो कभी भी नहीं होता है। दलितों की सबसे बड़ी पूंजी यही है। इसी

के बल पर आज कदम-कदम पर दबाने के बावजूद दलित प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं।

उन दिनों गांवों में मौसम के अनुसार खेल भी बदल जाया करते थे परंतु हमारी बस्ती के लड़कों के अधिकतर खेल मुफ्त में खेले जाने वाले हुआ करते थे। उसमें किसी सामान की आवश्यकता नहीं होती थी। हमारे खेलने का क्षेत्र भी हमारी बस्ती ही हुआ करती थी। उससे आगे हमारी हद नहीं होती थी। हम सब बच्चे अपनी जाति के बच्चों में ही खेल खेला करते थे। हमारे मुहल्ले की तरफ चकबंदी में भी कोई आबादी नहीं छोड़ी गई थी। घरों से ही सटकर खेत थे। हम लोगों के लिए न कोई खेल का मैदान, न आबादी के लिए जगह थी। सब मजबूर और तंगहाल थे। हम लोग दिशा-मैदान से लेकर हर प्रकार की आवश्यकता के लिए सवर्णों पर आश्रित थे इसीलिए हमारे लोगों के समक्ष उन दिनों उनकी बेगार और गालियां सुनने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं हुआ करता था। यही वह एकमात्र कारण था। दलित उनका कोई प्रतिउत्तर नहीं दे पाते थे।

मुहल्ले भर के बच्चे जब खेत खाली हो जाते थे, तब से लेकर बरसात के पहले तक नियमित कबड्डी का खेल खेलते थे। कंचों का खेल भी खेला जाता था। मुझे इस खेल को खेलने का बड़ा शौक था। उस दौर में मेरे पास पांच पैसे भी नहीं हुआ करते थे। इसलिए मैं दूसरों के कंचों से उनके लिए खेला करता था। इस खेल में कभी अधिक कंचे जीत जाने पर, जिसकी ओर से कंचे खेला करता था, वह मुझे दो-चार कंचे दे दिया करता था। उन कंचों को पाकर मुझे मन में अति प्रसन्नता हुआ करती थी।

हम सब बच्चे "किलकिलकांटी" के खेल को बरसात के दिनों में खेला करते थे। इस खेल में खड़िया से आड़ी-तिरछी रेखाएं खींची जाती थी। पहले इन रेखाओं को ढूंढ-ढूंढकर काटा जाता था। जो रेखाएं काटने से बच जातीं थीं, उन्हें गिना जाता था। जिस बच्चे की रेखाओं की संख्या अधिक होती थी। वह जीत जाता था। इस तरह "किलकिलकांटी" खेल में हार जीत का फैसला किया जाता था।

बरसात के बाद में "ढुकीमींचना खेल" में एक बालक आंख बंद कर लेता था। सब बच्चे दूर-दूर जाकर छिप जाया करते थे। इसके बाद उस बच्चे को ढूढ़ने के लिए आवाज दी जाती थी। वह जिस किसी बच्चे को ढूंढ कर पकड़ लेता था। इस पकड़े गये बच्चे को वही प्रक्रिया बार-बार दुहरानी होती थी। इस खेल में भागकर दूर जाकर छिपने में जाने-अनजाने बहुत परिश्रम हो जाया करता था।

"तक के ऊपर अथवा नौके नौई", इस खेल में एक बालक दूसरे बालक को अपनी पीठ पर लादकर अपने घर नहीं किसी अन्य के पास के घर में जाता था। वह उसके बाद उस घर के किसी व्यक्ति से पूछते थे। तर के ऊपर कै नौके नौई। अगर उस घर का कोई व्यक्ति कह देता था। नौ के नौई, तब वह बालक उसी अवस्था में दूसरे घर उस बालक को अपनी पीठ पर लादकर ले जाया करता था। इस खेल में किसी को पिदाने के लिए कभी-कभी नौ-के-नौई कह दिया जाता था परंतु ऐसा कम ही होता था। इस खेल में भी बहुत अधिक शारीरिक श्रम करना पड़ता था। इस प्रकार के खेलों में अभ्यास करने के बाद किसी प्रकार का अभाव नहीं सताया करता था। जो भी रूखी-सूखी घर में मिल गई। बस उसे खाकर ठंडा पानी पी लिया करते थे।

क्वार के महीने में लड़के टेसू और लड़कियां झांझी मांगने के लिए जाया करती थीं। सभी बच्चे टेसू मांगते समय गीत गाया करते थे। गीत तो बहुत से प्रचलित थे। एक-दो गीत बहुत नमूने के तौर पर इस तरह के हुआ करते थे।

टेसू के रे टेसू के, टेसू मेरो मम्मन बीर,
सोने के गड़ाए तीर, एक तीर मैंने मांग लिया,
चल घोड़े सैलान किया, कीया है भाई कीया है।
सोने का है कारा कोट, मार सिकंदर पहली चोट।

इस तरह के गीत हमें कहीं न कहीं इतिहास के आधार पर सफल होने के लिए प्रेरणा देते थे। सिकंदर ने विश्व विजय की थी। यह गीत उससे कहीं न कहीं जोड़कर देखा जा सकता है।

टेसू मेरो रंग बिरंगों, आज भांग खाके आयौ है।
भांग खाकर सो गया, तब मां जगाने आई है।
मां कहे मेरों ऊताताई, बहन कहे मेरा भाई है,
बहू कहे तेरी चांदिये पीटू, तूने भांग कैसे खाई है।

इस गीत को गाकर अंत में सभी बच्चे बड़ी जोर से ठहाका लगाकर खिलखिलाकर हंसते थे। इस तरह घर में हंसी के कहकहों की बारिश के साथ-साथ पूरा परिवेश खुशनुमा हो जाया करता था। इस तरह के गीत हमारे मनोरंजन के अतिरिक्त हमें अपनी बुराई को मां और बहन की तरह छिपाने की सीख नहीं देता है बल्कि उस पर बहू की तरह कड़े शब्दों में प्रहार करने की आवश्यकता पर बल देता है। हम सभी बच्चे इस तरह के खेल-खेलते और खूब आनंदित होते थे। इस

तरह के खेलों के खेलने से हमारे मस्तिष्क के साथ शरीर की वर्जिस और मनोरंजन दोनों हो जाया करते थे। हम बच्चों के बालमन में इस प्रकार से छोटे-बड़े सबके लिए प्यार भी पनपता था।

मुझे अपने बचपन की कुछ घटनाएं बखूबी याद हैं जब मेरे खाने-पीने के दिन थे, तब मेरे घरवालों के सबसे अधिक मजबूरी के दिन थे। घर में रोटियों के अतिरिक्त कभी कुछ खाने की चीजें नहीं आतीं थी। हम सब बच्चे रूखी नमकीन रोटी, लाल मिर्च की चटनी के साथ बड़े मन से खा लिया करते थे। जाड़ों के दिनों में कभी बथुआ पत्ता के साग के साथ बाजरे की रात की रोटी हाथ में लेकर आज के पीजा और बर्गर की तरह बहुत कम-कम दांतों से काटकर खाते थे। उसे खाकर इकट्ंगा खेलते और बड़ी धमा-चौकड़ी किया करते थे।

गर्मियों के दिनों में जब असाड़ा जामुन पक जाती थीं। तब हम सब जामुन खाने के लिए संगी-साथियों के साथ-साथ जंगल-जंगल घूमते-फिरते थे। घर के लोगों के लिए भी जामुन झोला भर कर लाया करते थे। ऐसा करने से घर में मार लगती थी परन्तु कभी-कभी उससे बच जाते थे। इसके बाद बरसात के दिनों में बहुत से पेड़ों पर जामुन पकती थीं। तब जामुन खाने का महीनों दौर चलता रहता था। मुझे जामुन तोड़कर लाने में बहुत आनंद आता था। मुझे पता नहीं जामुन खाने के लिए जाने का क्या जुनून था। चाचाजी के द्वारा सदैव समझाने और लाख मना करने के बाबजूद जामुन खाने के लिए घर के लोगों के दोपहरी में आराम करने के दौरान सदैव उनकी आंख बचाकर चला जाया करता था।

इसके बाद जाड़ों के दिनों से कुछ पहले जब सोंधी की खेती पक रही होती है। सोंधी धान से कुछ देर में पकती है। तभी बेर भी कुछ पक से जाते थे। हम लोग सड़क पार रेडियो स्टेशन में से भी बेर तोड़कर लाते थे। मुझे खट्टे मीठे बेर बहुत अच्छे लगते थे। बेर के दिनों में बेर भी झोला भर-भर कर लाया करता था। उन दिनों यही हम सब गरीब लड़कों के खाने के फल हुआ करते थे। बाजार के फलों में कभी वर्ष में एक बार मुश्किल से अमरूद ही आ पाते थे। जब खाने को अनाज कम पड़ रहा हो, तब फल के बदले भरपेट रोटी मिल जाना कहीं बेहतर विकल्प कहा जा सकता है। मेरी समझ में उससे अच्छी और कोई क्या बात हो सकती थी।

सबसे पहले मटर की खेती पकती है। मटर की खेती न भी पके तब भी उसकी कच्ची फलियां बड़े चाव से खाया करते थे। जब मटर की फली अपने खेत में है तब हम सब बच्चे अपना खेत, नहीं तो दूसरों के खेतों से भी चोरी करके खाकर

खुश हुआ करते थे। कम से कम मटर की मीठी-मीठी फलियां खाकर पेट तो भर जाता था। गाजर भी इन्हीं दिनों बड़ी हो जाया करती थी। हमारे खेत में भी एक बीघा गाजर बोई जाती थीं। हम घर के लोग और हमारे जानवर बैल-भैंस भी गाजर खूब खाया करते थे। अकसर नमकीन गाजर का गजरबत्त, कभी-कभी मीठा गजरबत्त जाड़ों के दिनों में लगभग प्रतिदिन ही खाया करते थे। वही एक प्रकार से मेरे परिवार के लोगों का कलेऊ का खाना होता था।

जब जौ की फसल पक जाती है उसके बाद गेहूं की फसल पकने वाली होती है। हम लोग गेहूं के कच्ची बालियां काटकर भूनकर खाते थे। इसके खाने से पेट भी भर जाता था। और हमें कच्चे गद्दर गेहूं की बालियों में से भरपूर प्रोटीन विटामिन भी जाने-अनजाने में मिल जाया करती थी। मुझे ख़ूब याद है इन दिनों में कितने चाव से उन्हें खाया करते थे। उन दिनों घर की रोटी अच्छी नहीं लगतीं थीं।

इसके बाद चने के होरहा भी खूब खाया करते थे। जब तक अपने चने नहीं पक पाते थे, तब मुहल्ले के दूसरे लड़कों के साथ किसी दूसरे के खेतों में से पके-पके होरहा उखाड़ लाते थे। उसके बाद उन्हें भूनकर खूब खाया करते थे। जब अपने खेत में चने कुछ पक जाते तब दूसरे लड़कों को साथ लेकर अपने खेत से भी चोरी-छुपे दूसरे लड़कों को होरहा खिलाये जाते थे। हम सब बखूबी जानते थे चोरी करना पाप है। इससे आदत खराब हो जाती है। इसके प्रतिपक्ष में कृष्ण भी अपने बाल सखाओं के साथ माखन चोरी करके खाया करते थे। खाने की भी कोई चोरी होती है। हां इसका हम संग्रह करके घर ले जायं तब बात अलग होती है। हम सब मुहल्लेभर के बच्चे इसी तरह के अनेकों अनेक तर्क जुटा लिया करते थे।

हमारी जाति के अधिकतर लोग फसल के दिनों में लाई किया करते थे। लाई एक तरह की मजदूरी ही हुआ करती थी। इसमें सुबह से लेकर शाम तक मजदूर किसान का खेत काटा करते थे। उसके बाद उस कटे हुए खेत को खलिहान में ढोकर भी रखते थे। उन दिनों दोपहर में अधिक धूप के समय थोड़ा आराम करने का समय मिला करता था। इसके बदले में मजदूर लोग किसानों का थोड़ी अधिक देर तक काम कर दिया करते थे। तब जाकर कहीं देर शाम को उनके लिए दस किलो अनाज की लाई रखी जाती थी। उस लाई में कभी-कभी आठ सेर अनाज भी नहीं निकला करता था। इस बात पर गुस्सा आना स्वाभाविक था। उम्रदराज पुराने लोग फिर भी इस बात को खून का घूंट पीकर बर्दास्त कर लिया करते थे लेकिन युवा पीढ़ी के लोग इस बात पर आग बबूला हो जाया करते थे।

हमारे लोगों का इस बारे में कहना था, जब आप हमसे काम पूरा लेते हैं तब उसके बदले में हमारी मेहनत का पारिश्रमिक कम क्यों दिया जाता है। इस बात पर एक बार सवर्ण किसानों और शूद्र शूरवीरों के बीच बहुत गर्मा-गर्मी हो गई थी। बस क्या था। किसानों के हिमायतियों और चमार मजदूरों के बीच लाठियां चलने लगीं थी। सवर्ण अपनी धन की गर्मी के मद में चूर थे। इस दुनिया में कभी भी लाठी चलते समय अमीरों का धन उन्हें बचाने के लिए नहीं आता है। यह आजकल और आने वाले कल में भी धन जन बल के आमने सामने की लड़ाई में फीका पड़ जाता है।

बातन, बातन बतबड़ हो गई, और बातन बाढी है रार,
दोनों दल में हल्ला है गयो, क्षत्रिनु खेंचि लई तलवार।

वह रात का समय था। उस रात के घुप्प अंधेरे में बस परछाइयां भूतों की तरह आपस में लड़ती हुई दिखाई दे रहीं थीं परंतु उस अंधेरे में बहुत से लोगों की मरम्मत, मशीन की रुई धुनाई की तरह हो गई थी। इस पर चमारों ने दूसरे दिन से सवर्णों के खेत काटने पर प्रतिबंध लगा दिया था। दोनों तरफ के बुजुर्गों की पहल पर इस फौजदारी का फैसला करीब-करीब दस-पंद्रह दिनों के बाद हुआ था। हमारे लोगों ने पहले पिछली मजदूरी लेने के बाद ही किसी दूसरे किसान के खेत में काटने के लिए कदम रखा था। उस समय बहुत बड़ी फौजदारी की अनहोनी को दलित और सवर्णों के वरिष्ठ और समझदार लोगों ने समय रहते दोनों पक्षों में फैसला करवाकर बहुत बड़े हादसे को समाप्त कर दिया गया था। उसके बाद सभी किसान फूटा हुआ दस किलो अनाज तोलकर देने लगे थे। इसका हमारी बस्ती के किसी भी मजदूर का कोई नुकसान कुछ नहीं हुआ था बल्कि उन्होंने अपने आपको किसी अनहोनी से बचाने के लिए तैयार और मजबूत कर लिया था।

जब मेरे पिताजी के बड़े भाई की पत्नी असमय में ही उन्हें और उनके परिवार को छोडकर इस दुनिया से चली गयी। तब ताऊजी टूट से गए थे। अब उनकी गृहस्थी संभालने वाला कोई नहीं था। ताईजी के देहावसान के दुःख ने हमारे परिवार को हिला दिया था। परिवार के अलग होने अथवा अलग खाना बनाकर खाने से दुःख थोड़े ही बट जाते हैं। परिवार क्या पूरी बस्ती और गांव तक दुःख-सुख और बड़ी विपत्ति के समय में एक हो जाते हैं यह भारतीय दलित परिवारों की विशेषता होती है। इस तरह हमारा परिवार एक ही था। तब उसका दुःख भी एक था। ताईजी अपने पीछे दो छोटे-छोटे बच्चे छोड़ गयीं थीं, उनमें एक छह माह का एक बच्चा भी था।

उसकी परवरिश एक बड़ी जिम्मेदारी थी जिसे हमारे परिवार ने मिलकर निभाया था परंतु इसके बाद ताऊजी के साथ अम्मा जी और हमारे साथ बाबाजी रहने लगे थे। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गए थे।

जब हमारी दादीजी भी इस संसार से विदा हो गईं थीं। उसके बाद एक बार फिर से दोनों परिवारों का खाना एक साथ बनने लगा था। ताऊजी के दो छोटे-छोटे बच्चे थे, उनकी परवरिश करना एक बड़ी जिम्मेदारी का काम था। ताऊजी का काम में मन नहीं लगता था। वह बस किसी तरह अपने काम चलाने लायक काम कर लिया करते थे।

8

पिताजी की आंख में पॉवर हाउस की चिमनी से निकलने वाले धुएं के साथ उड़ने वाली राख का बहुत बारीक कोयला पड़ गया था। उस कोयले को आंख से निकालने के प्रयास में आंख में हल्का जख्म सा होता चला गया था। उन दिनों पिताजी ने उसका बहुत इलाज करवाया परंतु अनेक प्रयासों के बावजूद उनकी आंख ठीक होने का नाम नहीं ले रही थी। गांधी आई हॉस्पिटल अलीगढ़ में कई महीने तक आंख का इलाज चलता रहा था परंतु उससे कोई फायदा नहीं हो पा रहा था। डॉक्टर बस दिलासा ही देते रहते थे, लेकिन आंख में ठीक होने के नाम पर कोई फायदा नहीं होता था। इलाज में बहुत से पैसे लगते जा रहे थे। हम लोग घर में पैसे-पैसे को मोहताज होते चले गए। मेरे छोटे-छोटे अबोध भाई-बहन थे। उनको खाने के लिए जो मांगते सो देना ही पड़ता था। हम दोनों बड़े भाई, बहन कुछ समझदार थे। अपने घर की हर मजबूरी बखूबी समझते थे।

घर में खाने के लिए अनाज का दाना नहीं था। इससे छुटकारा पाने के लिए हमने ब्याज पर पैसे उधार ले लिए थे। उन दिनों उन पैसों से हमारे लिए कोई अनाज भी खरीदकर लाने को तैयार नहीं होता था। बाबा बीमार और बुजुर्ग थे। मेरे ताऊजी शरीर में बहुत हल्के थे, उनसे कोई भारी काम नहीं हो पाता था। मैं बहुत छोटा था। इतना छोटा कि साइकिल पर पूरे पैर भी नहीं आ पाते थे इसलिए साइकिल को कुछ दूर कैंची की और कुछ दूर पैदल चलकर लाता था। छोटा होने के बाबजूद पैंठ अर्थात साप्ताहिक बाजार से अपनी सामर्थ्य से अधिक वजन का अनाज लेकर आता था।

मुझसे पैंठ में से साइकिल पर बीस सेर से अधिक अनाज नहीं चल पाता था। साइकिल पर अधिक वजन होने के कारण मुझसे उसका वेलेंन्स अर्थात संतुलन नहीं बन पाता था और कभी-कभी साइकिल बीच रास्ते में अनाज के बोरे के साथ गिर जाती थी।

तब मुझे उस रास्ते में किसी छोटी जाति के आने वाले आदमी का घंटों इंतजार करना पड़ता था क्योंकि पंडित और ठाकुर मेरे अनाज को नहीं उठवाते थे। अनाज घर लेकर आने तक पसीने में तर होने के साथ-साथ थक कर चूर भी हो जाया करता था। इस विकट स्थिति में हमारे खाने का अनाज लाने का और कोई विकल्प नहीं नजर आता था। इसके बाद उस अनाज को अपने सिर पर रखकर पिसवाने के लिए भी मुझे ही लेकर जाना पड़ता था। वह अनाज मुश्किल से सात-आठ दिन ही चल पाता था। पैंठ में से मुझे अगले इतवार को फिर से अनाज लेने जाना पड़ता था। मैंने अपने बचपन में बहुत बुरे दिन देख लिए थे। हम लोग जिस गरीब बस्ती में रहते थे। वहां पर सब गरीब लोग ही रहा करते थे। सब लोग अपने पेट भरने और काम-धंधे में लगे रहने के कारण व्यस्त रहते थे। इस कारण उस बस्ती का कोई भी आदमी हमारी मजबूरी में हमारे लिए अनाज लेकर नहीं आ सकता था। हम सब बस्ती वाले दुःख-सुख में भले एक थे परंतु हम सब लोगों को अपने पेट के गड्ढे को भरने की जद्दोजहद स्वयं करनी पड़ती थी।

जब अलीगढ़ के आंखों के चिकित्सालय में उपचार करवाने से कोई लाभ नहीं हुआ तब पिताजी ने अपनी आंख का इलाज हरी आंखों के अस्पताल हाथरस में करवाने के लिए निर्णय लिया। वहां पर रहकर कई महीने इलाज करवाया गया परंतु उस अस्पताल में भी उनकी आंख में कोई फायदा नजर नहीं आ रहा था। तब मेरे पिताजी हारकर अपने घर लौट आये थे। वह अपनी आंख ठीक न होने के कारण बहुत दुःखी होते थे। इसके अतिरिक्त अन्य कई आंख के विशेषज्ञों की सलाह ली गई। जब आंख किसी तरह ठीक नहीं हुई तब डॉक्टरों ने आंख की पुतली बदलने के लिए पिताजी से कहा था। उसमें उन दिनों लगभग पंद्रह हजार रुपये खर्च होने की बात डॉक्टर लोगों ने कहीं थी। उस समय पिताजी से इतने पैसों का इंतजाम नहीं हो पाया था। इसके बाद भी वह लोग आंख में रोशनी आने की कोई गारंटी नहीं दे पा रहे थे। इतने अधिक पैसे इलाज पर खर्च भी किये जाएं और उस आंख से कुछ दिखाई भी न दे। तब इस प्रकार के इलाज को करवाने से उन्हें कोई फायदा दिखाई नहीं दे रहा था। आंख में सुधार के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे, इसलिए

पिताजी ने अपनी आंख ठीक करवाने का सपना सदा-सदा के लिए त्याग दिया था। इसके बाद उन्होंने अपनी एक आंख के सहारे पूरा जीवन काटने का फैसला किया था।

मनुष्य के शरीर का कोई भी छोटे से छोटा कष्ट क्यों न हो उससे दुःख तो अवश्य उत्पन्न होता है। मैंने अपनी आंखों से पिताजी को अंधेरे में छुपकर रोते हुए अनेकों बार देखा था। वे मुझसे अकसर कहा करते थे। बात यह नहीं कि मेरी एक आंख खराब हो गई है। इस संसार के लोग मेरे रास्ते से गुजरने और पीठ पीछे बिना बात, बिना लड़ाई-झगड़े के भी मेरी आंख को लेकर भला-बुरा कहते हैं भला इसमें मेरा क्या दोष है। रमेश देख यही जीवन है। इस दुनिया में कोई खुश नहीं है। सबको कोई न कोई चिन्ता सताए रहती है। किसी को औलाद, किसी को धन, किसी को दूसरे की उपलब्धि से मृत्यु लोक के प्राणी जलते-भुनते रहते हैं। हमें भी इनके बीच में ही हर हालत में रहना पड़ेगा। इसमें हमारा कोई वश नहीं है। जब तक सांस चल रही है तब तक दुःख-सुख में अपने कर्तव्यपथ पर चलते रहो।

हमारे पिताजी बाहर चौपाल के कमरे के बरामदे में चारपाई बिछाकर सोया करते थे। मैंने उनसे इस संबंध में कई बार बाहर न सोने के लिए माना किया था परंतु उन्होंने कभी भी हमारी बात पर ध्यान नहीं दिया। वे मुझसे कहा करते थे तुम चिन्ता क्यों करते हो, जो होना है वह हर हालत में होकर रहेगा। इस संबंध में वे अकसर एक दोहा कहा करते थे।

चिन्ता चेता मत करे, सिर ऊपर सांई,
जो लिखी लिलार में, वो मिलिवे की नांई।

मेरे पिताजी अपने पिताजी मेरे बाबा साहब की तरह भाग्यवादी और आशावादी थे। वे सुबह भोर में ही उठ जाया करते थे। दैनिक नित्यक्रिया के उपरांत मुंह अंधेरे ही भजन गाने के लिए लग जाते थे। बड़ी जोर-जोर से भजन गाया करते थे। उनके भजन गाने की आवाज सुनकर लोग अपना दैनिक कार्य प्रारम्भ किया करते थे। आज भी अधिकांश गांव में लोगों के पास घड़ी नहीं होती है। माना पुरुषों पर घड़ी हो भी सकती है लेकिन आज इक्कीसवीं सदी में भी औरतों के पास गांव में घड़ी नहीं होती है इसका एक बड़ा कारण शिक्षा का न होना तथा दूसरे स्त्रियों का अर्थ में स्वावलंबी न होना बड़ा कारण माना जा सकता है। उस दौर में और आज भी गांव की घड़ी आकाशगंगा के हरिणी पैना, और शप्तरिशी तारों की स्थिति के अतिरिक्त मोर की केकों, मुर्गे की बांग सुबह होने की अलार्म घड़ी होती है।

9

पांचवीं कक्षा पास करने के बाद मुझे पूर्व माध्यमिक पाठशाला जवां में प्रवेश लेना था। उस समय उस स्कूल को मिडिल स्कूल कहा करते थे। उन दिनों उस स्कूल में अपनी बस्ती से प्रवेश लेने के लिए जाने वाला मैं अकेला छात्र था। उस समय मेरे साथ बस्ती में से एक भी लड़का स्कूल में पढ़ने के लिए जाने वाला नहीं था। मैं इस कारण से अपने घर पर ही कई दिन तक इस इंतजार में बैठा रहा था, शायद मेरे साथ प्रवेश दिलवाने के लिए कोई अवश्य जाएगा। मेरे पिताजी काम करने के लिए भोर में मुंह अंधेरे ही चले जाते थे। शाम को अंधेरे में घर में वापस आते थे। मिडिल स्कूल गांव से करीब-करीब पांच से छह किलोमीटर दूर था। मेरे बड़े बाबा ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे और कस्बे का स्कूल था। एक-एक कर दिन निकलते जा रहे थे। गांव के सभी लड़के स्कूल में प्रवेश ले चुके थे। घर का कोई भी सदस्य स्कूल जाने के लिए तैयार नहीं था। इस स्थिति में मेरे स्कूल में नाम लिखवाने की जिम्मेदारी मेरे ताऊजी के लड़के को सौंप दी गई। वह रिश्ते में मेरे बड़े भाई लगते थे। हम दोनों भाई अगली सुबह स्कूल के लिए पैदल निकल पड़े थे।

ओमप्रकाश! मेरे बड़े भाई रास्ते में चलते-चलते यकायक एक स्थान पर रुक गए। उन्होंने मुझे संबोधित करते हुए कहा था। कारे बाबा को शीश नबाकर राम-राम कर ले। मैंने उनसे कहा कौन से बाबा। मुझे तो नाइ दिख रहे हैं। तब भाई ने कहा था! अरे मूरख तोय जे कारे बाबा को मंदिर नहीं दिख रहा है। तब मैंने कहा! अच्छा ये हैं तुम्हारे कारे बाबा। भाई ने फिर कहा था। मेरे नहीं। मूरख हम सबके, इस पूरी दुनिया के कारे बाबा हैं। यहीं डंडा लेकर बैठे रहते हैं। दिखते नहीं हैं। इनसे मिलकर रहेगो तो कोई भूत-भूतनी, प्रेत-प्रेतनी नाइ चिपटेगी लाला। मेरे भाई मुझसे बड़े थे। मुझे उनकी बात माननी पड़ी। मैंने अपने भाई की बात मानते हुए कारे बाबा को राम-राम कर ली थी। उसके बाद हम दोनों आगे बढ़े थे।

जवां एक छोटा कस्बा था। स्कूल जाने का रास्ता उस कस्बे से होकर था। जहां पर बहुत सी दुकाने थीं। मुझे बस मिठाइयों की दुकान की याद है। उन दुकानों पर गरम-गरम जलेबियां बन रही थीं। मेरा मन जलेबी खाने को कर रहा था लेकिन हमारे पास मात्र नाम लिखवाने के लिए ही पैसे थे। हम मन पर काबू करके कस्बे में से निकलकर स्कूल की ओर आगे बढ़ने लगे। स्कूल कस्बे से करीब-करीब एक या दो किलोमीटर से कुछ कम रहा होगा।

मिडिल स्कूल, प्राइमरी स्कूल के मुकाबले में बहुत बड़ा था। यहां पढ़ाने के लिए लगभग दस अध्यापक थे। मेरे भाई ने स्कूल में नाम लिखाई के पैसे बड़े मास्साब को जमा कर दिए थे। उन्होंने साथ में एक फार्म भी भर कर दिया था जिसमें अभिवावक के स्थान पर मेरे भाई श्री ओमप्रकाश ने अपने हस्ताक्षर किये थे। इस प्रकार उन्होंने मेरा नाम मिडिल स्कूल में लिखवाया था। इस दिन के बाद में मेरे घर का कोई भी सदस्य स्कूल में मेरे पढ़ने के बारे में कभी भी दरयाफ्त करने के लिए नहीं गया। मैं स्कूल में जाता हूं, नहीं जाता हूं, वहां पढ़ता हूं अथवा नहीं पढ़ता हूं या फिर वहां पर घूम-फिरकर घर वापस लौट आता हूं। मेरे संबंध में स्कूल में पूछने के लिए कभी न जाने का कारण जो मुझे लगता है उस स्कूल का गांव से दूर होना भी रहा होगा। उस जमाने में अपने बच्चे के बारे में पूछने के लिए स्कूल जाने का मतलब, एक दिन की मजदूरी खोना ही न था बल्कि एक दिन के लिए घर के लोगों का खाना बंद कर देना भी समझा जा सकता है। हमारी बस्ती के सभी परिवारों के लिए उस जमाने में एक दिन का खाना जुटाना भी बड़ी बात हुआ करती थी।

मेरा नाम कक्षा छह में लिख लिया गया था। यहां पर मुझे दो नए विषय पढ़ाये जाने वाले थे। उसमें से एक अंग्रेजी और दूसरा काष्ठकला विषय पढ़ाया गया। उन दिनों इस विषय की पढ़ाई के साथ-साथ लकड़ी का काम करना भी सिखाया जाता था। अब इस विषय की पढ़ाई सभी स्कूलों में यूपी सरकार ने बंद करवा दी है।

इस विद्यालय में कई शिक्षक थे परंतु मैं जिनके व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित हुआ था उनके व्यक्तित्व के बारे में बताना बहुत आवश्यक समझता हूं। एक वर्माजी थे, वे हमें बीजगणित पढ़ाते थे। उन्हें सूअर की औलाद की गाली के आगे कुछ नहीं आता था। दूसरे पीपली साहब थे। वह हमारी कक्षा में गणित पढ़ाते थे। एक दिन वे हमारी कक्षा में आये। उन्होंने कहा! आपको बहुत जल्दी से एक प्रश्न का उत्तर देना होगा। कक्षा के सभी विद्यार्थी तैयार हैं। हम लोगों ने एक साथ जबाब दिया तैयार हैं। तब उन्होंने हम सभी विद्यार्थियों से एक प्रश्न पूछा? अच्छा बताओ? सतहत्तर, अठहत्तर और उनहत्तर में से कौन सा नंबर बड़ा है। सभी ने उनहत्तर जबाब दिया। मैंने भी उनहत्तर ही जबाब दिया था। जबकि उसका सही जबाब अठहत्तर था परंतु उस दिन के बाद में कभी भी सतहत्तर, अठहत्तर और उनहत्तर संख्या को ही नहीं बल्कि उसके अंतर को भी नहीं भूला हूं। एक राय साहब हैड मास्टर थे। उनकी धुंधली सी याद बाकी है। वे बहुत कड़क और तुनक मिजाज थे। सभी छात्र उनसे बहुत डरा करते थे।

उस विद्यालय में एक चाहर साहब मास्साब हुआ करते थे। देखा जाय तो सही मायने में वही शिक्षक कहलाने के हकदार थे। वह बड़े मृदुभाषी और सरल स्वभाव के थे। उनका रंग एकदम साफ गौरवर्ण का था। उनका कद लगभग पांच फिट चार इंच का रहा होगा। वह आगरा के पास कहीं अकोला के रहने वाले थे।

चाहर साहब मास्साब! हमें काष्ठकला और अंग्रेजी पढ़ाया करते थे। वे एक दिन हमारी कक्षा में अंग्रेजी विषय पढ़ा रहे थे। हमारी कक्षा में किसी भी छात्र की अंग्रेजी ठीक नहीं थी। इसका मुख्य कारण सभी छात्र दूर-दूर गांव के इलाकों से पढ़ने के लिए आते थे। कक्षाएं शाम पांच बजे तक चलती थी इसलिए विद्यार्थियों का अधिकतर समय गांव से आने और जाने में निकल जाया करता था। हम सभी छात्रों को कक्षा के अतिरिक्त पढ़ने का समय नहीं मिल पाता था। चाहर मास्साब ने पहले कक्षा के एक लड़के से "हम" की अंग्रेजी पूछी। उसने कहा Ham। फिर एक के बाद दूसरे, तीसरे से पूछते हुए पूरी कक्षा के छात्रों से "हम" की अंग्रेजी पूछ डाली। सभी ने हम की अंग्रेजी का उत्तर Ham ही दिया। किसी को हम का अंग्रेजी अर्थ (we) मालूम नहीं था। सभी का एक ही उत्तर था- (Ham)। कक्षा के किसी भी छात्र ने दूसरा उत्तर नहीं दिया था। मैं तो अवर्ण था। अभावों में पल रहा था। खाना अच्छा नहीं मिलता था लेकिन सवर्ण छात्रों को क्या हो गया था। उनका परिवेश अलग था। उनकी सदियों से पढ़ने की परंपरा थी। उनका ज्ञान कहां चला गया था। वे भी मेरी बराबर में क्यों खड़े थे। यह पहेली मुझे आज तक समझ में नहीं आई है। आज जब में अपने बीते दिन याद करता हूं तब मुझे अपनी इस गलती पर बहुत हंसी आती है।

मेरी जाति और परिवार की स्थिति के बारे में महेंद्र सिंह चाहर मास्साब अच्छी तरह जानते थे। मेरी जाति दुनिया की एक ऐसी जाति है जो छिपाए न छिपती है। वैसे भी भारत के किसी भी स्कूल में जाति जैसी संवेदनशील और महत्वपूर्ण बात कभी छिप जाय ऐसा कदापि हो नहीं सकता है। जाति तो भारत में सवर्ण जाति के लोगों के जीने का आधार है। जाति न होती तो उच्च जाति के लोग, अपने से नीचे की जाति का शोषण कैसे करते। जाति व्यवस्था न होने पर समाज बंट नहीं सकता था। जातियों के बीच ऊंच-नीच की खाई पैदा न होती। सबसे ऊपर ब्राह्मण, उससे नीचे क्षत्रिय, उनके नीचे वैश्य न होते। वैश्य से नीचे शूद्र कही जाने वाली सभी जातियां एक दूसरे से ऊपर होने का दंभ न भरती। भारत का समाज विभिन्न जातियों और उप-जातियों में बंटकर, मैं बड़ा, मेरा बाप बड़ा, मेरे बाप का बाप बड़ा, तू छोटा, तेरा

बाप छोटा, तेरे बाप का बाप छोटा के सवर्ण और अवर्ण के चक्कर में घनचक्कर बनकर आज तक चक्कर न लगा रहा होता।

जाति व्यवस्था ने ही तो अच्छे भले भारतीय समाज को गर्त में पहुंचाया है। सदियों से आज तक जिसके बलबूते सवर्ण जाति के लोग एक हो जाते हैं। अथवा दूसरे शब्दों में हम सच इस प्रकार कह सकते हैं। वे एक कभी नहीं होते बल्कि एक होने का ढोंग करते हैं। दिखते हैं अथवा दिखावा करते हैं कि वे एक हैं। देखा जाय तो वो एक दूसरे से जलते हैं। एक दूसरे को सदैव नीचा दिखाने की जुगाड़ में लगे रहते हैं। और यदि उन्हें मौका मिल जाय तो सभी सवर्ण ब्राह्मण-क्षत्रिय, क्षत्रिय-वैश्य और वैश्य-ब्राह्मण एक दूसरे के मुंह पर थूकने से कभी नहीं चूकते हैं।

मेरी जाति के लोगों से घृणा करने की बात सदा मेरे लिए अनबूझ पहेली ही बनी हुई है मेरी जाति के लोग जूते और चमड़े से जुडा कार्य सदियों से करते चले आ रहे हैं। उन्होंने भारत की सभी जातियों के लोगों को जूते बनाकर सर्दी, बरसात, गर्मी की मार से बचाने का कार्य किया है। सवर्णों के आवासीय परिवेश से मरे हुए जानवर उठाकर स्वच्छता प्रदान की है। उसे उनके रहने लायक बनाया है फिर पता नहीं क्या बात है। मेरी जाति का नाम सुनते ही भारत की हर जाति और धर्म के लोग नफरत करने लगते हैं। मुझे लगता है दुनिया में शायद कोई दूसरी जाति न होगी जिसने स्वयं भूखों रहकर इतनी ईमानदारी और मेहनत से समाज द्वारा सौंपा गया कार्य किया हो, फिर भी उसे इतना अपमान और कष्ट भरा जीवन जीने को मजबूर होना पड़ा हो। इस जाति के प्रति इतनी घृणा, उनका कष्ट भरा जीवन और भूखी मानवता का अपमान देखकर...भगवान दुनिया में होते जरूर रो पड़ते।

मेरी जाटव जाति के लोगों ने कभी दबना नहीं सीखा है। शायद यही उनका सबसे बड़ा अपराध है। उन्हें अवसर दिया जाए। तब चमार प्रत्येक क्षेत्र में अव्वल ही आएंगे। यह जाति मेहनत करने से कभी पीछे नहीं हटती है। इतना ही नहीं भारत की छोटी जातियों के लोगों की सेवा के दम पर भारत चल रहा है। आज सभी अवर्ण काम करना बंद कर दें तब भारत के सभी कल-कारखाने बंद हो जाने के कगार पर खड़े होंगे। आज हमें मेहनत मजदूरी करने के अवसरों से महरूम रखा जाता है। तब भी हम अपनी मजदूरी के बल पर इतने उछल सकते हैं जब सभी दलितों को पर्याप्त कार्य के अवसर प्रदान किये जाएं तब तो हम पूरी दुनिया बदल देने का हौसला रखते हैं। मुझे इस अवसर पर ठाकुर जी की एक कहानी याद आती है–

"एक ठाकुर जी थे। अच्छे खाते-पीते घर के थे। वह बड़ी शान-शौकत के साथ रहा करते थे। वे धीरे-धीरे कुछ दिनों में गरीब हो गए। अब तो उनके खाने के लाले पड़ने लगे। एक तरह से भूखों मरने लगे। अब उन्हें कई-कई दिन तक खाना नसीब नहीं होता था। जब उनकी हालत बिगड़ने लगी और जीने का कोई सहारा नहीं रहा। तब वह अंत में मजबूर होकर भीख मांगने लगे। उन्होंने डंडे के एक सिरे पर छेद करके कुछ घुंघरू, पंसुरिया बांध ली। वह जब भी किसी के घर भीख मांगने के लिए जाते थे। वहां अपना डंडा जोर से हिला देते थे। डंडा हिलाते ही घुंघरू बज उठते थे। गांव के हर घर की औरतें, बड़े और बच्चे सब दया करके उनको अधिक से अधिक भीख डाल दिया करते थे। इस तरह कई साल बीत गये। ठाकुर जी धीरे-धीरे धनवान होते चले गये। ठाकुरजी ने इसके बाद एक दिन धनवान होने पर भीख मांगना भी छोड़ दिया। वे फिर अपने उसी गांव में उसी शान-शौकत के साथ रहने लगे। जब भी गांव में ठाकुर जी के सामने कोई बात आती थी। वह कुछ कहने को होते थे। उसी समय गांव के लोग उनकी दुःखती रग पर हाथ रख दिया करते थे। अर्थात उनको उनके बीते दिनों की याद दिलाकर उनका अपमान करने की कोशिश करते थे। ठाकुर जी का उन सबके लिए एक ही जबाब होता था। तुम ठीक कहते हो। हम भीख मांगा करते थे परंतु हमने सदैव भीख भी तुमसे अपने डंडे के बल पर मांगी थी। आज हम सब दलित लोग अपनी कड़ी मेहनत के बल पर जीवन जीते हैं किसी के दया धर्म पर नहीं।"

चाहर साहब मुझसे बहुत स्नेह किया करते थे। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा! बेटा काष्ठकला अच्छी तरह से पढ़ लोगे तो तुम बेरोजगार नहीं रहोगे। तुम्हें इस दुनिया में दर-दर की ठोकरें नहीं खानी पड़ेंगी। इतना ही नहीं तुम अधिक पढ़ गए तो काष्ठकला के मास्टर भी बन सकते हो। तुम चाहो तो काष्ठकला का काम सीखने में अपना अतिरिक्त समय दिया करो। मुझे तुम्हें इसके लिए अनुमति देने में अति प्रसन्नता होगी। इसके बाद मैंने काष्ठकला सीखने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी।

काष्ठकला में मन लगने का दूसरा कारण अंग्रेजी और गणित मेरी रुचिकर विषय नहीं थे। अपनी कक्षा में प्रतिदिन खूब मन लगाकर पढ़ता था, तब भी मुझे गणित और अंग्रेजी कुछ कम समझ में आते थे। इतिहास, भूगोल, कला, और बीजगणित में कोंण, क्षेत्रफल, शारीरिक व्यायाम आदि विषयों को अच्छी तरह से समझता ही नहीं था बल्कि अच्छे नंबरों से पास भी होता था। गणित और अंग्रेजी में बस पास ही हो पाता था। इसी कारण कक्षा छह और कक्षा सात में बस किसी

तरह पास हो पाया था लेकिन कक्षा आठ में मेरे गांव के दो ही विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में पास हुए थे। उसमें से एक मेरा नाम भी था। मेरे गांव के साथी मित्र छात्र योगेन्द्र सिंह ठाकुर थे और कलुआ मुसलमान थे। ये दोनों मित्र आठवीं के बाद फिर नहीं पढ़ सके थे। गांव में ठाठ से अपनी दुकान करने लगे थे।

कक्षा सात का मेरे जीवन में विशेष महत्व है। जब मैंने सातवीं कक्षा पास की और आठवीं कक्षा में पढ़ रहा था। तब मेरे जीवन में एक विशेष घटना घटी। वह अप्रैल का महीना था। हमारी परीक्षाएं होने वाली थीं। परीक्षाओं से पहले काष्ठकला की प्रैक्टिकल परीक्षाएं चल रही थीं। एक दिन अचानक दोपहर के समय मेरे चाचा मुझे बुलाने के लिए स्कूल पहुंच गये।

अपने पिताजी को मैं चाचा कहकर बुलाया करता था। उस दौर में गांव में सब बच्चे अपने मां-बाप को चाचा-अम्मा, काका-काकी, दादा-अम्मा कहकर ही बुलाया करते थे। बच्चे अपनी मनमर्जी से मां-बाप को जिस सम्बोधन से बुलाना चाहें, अथवा मां-बाप के लिए जो सम्बोधन उन्हें अच्छा लगे। उसी सम्बोधन से बच्चों को अपने मां-बाप को पुकारने की छूट हुआ करती थी। वह जीवन बड़ा सीधा और सरल था। जीवन में कोई दिखावा नहीं था। जीवन में बहुत सी कमियां थीं लेकिन आपस में इतना प्यार था कि कमियां मालूम नहीं होती थी। आज आधुनिक युग में मम्मी-पापा के हास्यास्पद संबोधन मोम, पैप और न जाने क्या-क्या विकास की बलिबेड़ी के नाम पर प्रयोग किए जाते हैं।

चाचाजी उस दिन मुझे स्कूल से बाहर बुलाकर लाये। वह दोपहर बाद का समय था। स्कूल के बाहर पेड़ों की छांव में जमीन पर दो-तीन आदमी बैठे हुए थे। मैं उनमें से एक व्यक्ति को अच्छी तरह से पहचानता था हालांकि उनसे एक बार ही मेरी मुलाकात हुई थी। इसका कारण उनकी बड़ी-बड़ी झब्बेदार पूरा सी मोंछें थी। उनका नाम बाबूलाल था वे मेरे मामाजी के रिश्ते के साले के लड़के थे। इस तरह रिश्ते में वे मेरे बड़े भाई होते थे।

चाचाजी ने मुझसे कहा! रमेश यह लोग हमारे रिश्तेदार हैं। तुम उनके पास पहुंचकर उन लोगों को राम-राम कर लेना।

मैंने कहा ठीक है। राम-राम करने में क्या है मैं उनसे राम-राम अवश्य कर लूंगा। आप निश्चिंत रहे। जब मैं और चाचाजी स्कूल के बरामदे से धूप में चलकर बाहर आ रहे थे, तब स्कूल के बाहर पेड़ों की छांव में बैठे हुए लोग मेरी ओर दूर से बड़े गौर से निहार रहे थे।

पिताजी के कहे अनुसार! मैंने उनके पास पहुंचकर राम-राम की। मैं उनके पास लगभग पंद्रह मिनट के करीब खड़ा रहा था।

बाबूलाल ने मुझसे पूछा! रमेश तुम अपनी ननिहाल कब से नहीं गये हो?

मैंने उत्तर दिया! पिछले साल गर्मियों की छुट्टियों में ही गया था।

बाबूलाल ने मुझसे फिर पूछा! पढ़ाई कैसी चल रही है? पास हो जाओगे?

मैंने उत्तर दिया! पढ़ाई अच्छी चल रही है। मैं जब मेहनत से पढ़ाई कर रहा हूं तब पास क्यों न होऊंगा।

बाबूलाल ने कहा! आपरेटर तुमऊ कछू पूंछि लेउ।

आपरेटर ने मुझसे पूछा! लल्ला कौन सी कक्षा में पढ़ रहे हो?

मैंने सीधे स्वभाव उत्तर दिया। कक्षा सातवीं पास कर ली है अब कक्षा आठवीं में पढ़ रहा हूं।

वह लोग मुझसे कुछ देर तक, इधर-उधर की बातें करते रहे। जिन दो आदमियों को मैं नहीं जानता था। वह आपस में कुछ दूर जाकर धीरे-धीरे कुछ विचार-विमर्श करते रहे। अंत में सभी मेरे चाचाजी और बाबूलाल के पास में आकर बैठ गये। तब उन्होंने मुझसे कहा! अच्छा ठीक है लल्ला तुम स्कूल में जाओ। मैं सीधे स्वभाव स्कूल में पढ़ने के लिए चला गया था।

उस दौर में हमारी जाति के ही नहीं सभी शूद्र समझी जाने वाली छोटी जातियों के लड़के-लड़कियों की कम उम्र में ही शादी हो जाया करती थी। मेरी उम्र के लड़कों की जब शादी होती थी। तब वह बहुत खुश हुआ करते थे लेकिन मुझे शादी करवाने के नाम से खुशी रंचमात्र भी नहीं हो रही थी। मुझे शादी के नाम से पीड़ा अधिक हो रही थी। उसका परिणाम मेरे सामने था। मुहल्ले के कई लड़कों की शादी मेरे सामने हुई परंतु उनमें से एक भी लड़का शादी के बाद स्कूल नहीं गया था। मेरी लालसा पढ़-लिखकर कुछ बनने की थी। मेरा भी हश्र उन सब लड़कों की तरह न हो जाए। यह मेरे सामने सबसे बड़ी दुविधा थी।

बच्चों की कम उम्र में शादी करने की सोच के पीछे सबसे बड़ा कारण, उस समय के समाज का अधिक पढ़ा-लिखा न होना माना जा सकता है। उनकी अपनी सोच का दायरा गांव, परिवार, और रिश्ते-नातेदारी तक ही सीमित होता था, बहुत हुआ तब इलाके के बाहर अथवा साठ गांव तक उनकी सोच का दायरा हुआ करता था। गांव के बहुत से लोग बिना शहर देखे ही जीवन गुजार देते थे। बस्ती के लोगों में से एक-दो आदमियों की ही कस्बे, तहसील और थाने तक पहुंच हुआ करती थी।

उनके अंदर डर और अंधविश्वास कूट-कूट कर भरा हुआ था। वह लोग जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त होने में विश्वास रखते थे। उस समाज के लोग शीघ्रता-शीघ्र अपनी बेटी के हाथ पीले करने अथवा अपने बेटे की भांवर डाल देने के पक्ष में रहा करते थे। समाज का हर व्यक्ति अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त होकर वैकुंठ जाने अथवा स्वर्ग सिधारने की लालसा रखता था।

उस दिन जब चाचाजी लोगों को लेकर स्कूल में आये थे तब से मुझे लगा मेरे चाचा मेरी शादी करना चाहते हैं। मुझे इस बात को सोच-सोचकर ही मेरे पैरों के नीचे से जमीन खिसकती हुई नजर आने लगी। मुझे इस बात का गम था। मेरे सपनों का क्या होगा? अपने समाज की गरीबी, अपमान और मजबूरी को देखकर अंदर ही अंदर तड़पता हूं। अपनी इन्हीं खुली आंखों से दिन में चलते हुए सपने देखता हूं। पढ़ते-लिखते, खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते मेरे मन में सदैव एक विचार उमड़ता-घुमड़ता रहता था। मुझे अपने समाज के लिए कुछ करना चाहिए। मैं समाज के लिए कुछ करना चाहता था? लेकिन अपनी छोटी सी उम्र में कर भी क्या सकता था। जब बड़ा हो जाऊंगा तब शायद कुछ कर सकूं। मैं गांव के खेतों में गेहूं-जौ की नव-अंकुरित फसलों को देखता था। उन फसलों को भी पकने के लिए कम से कम चार-पांच महीने पालना-पोसना पड़ता था। उसकी नियमित देखभाल करने के बाद कहीं जाकर उसे बालियां आती हैं फिर उन बालियों में कुछ दाने पड़ते थे। जब फसल पकती है तब किसान काटता है। न पहले न बाद में इसलिए मेरे मन में यह विचार दिन-प्रतिदिन मजबूत होता चला गया। "कुछ भी न होने से बेहतर है कुछ हो"। जब जीवित रहेंगे तब ही आगे बढ़ने की बेहतर कोशिश की जा सकती है। जब कुछ भी न रहेगा तब तो जीवन ही समाप्त हो जाएगा। उस स्थिति में आगे बढ़ने की क्या खाक उम्मीद रह जाएगी। दुनिया में जो जंग हारे हैं उन्हीं ने कभी जंग जीती भी हैं। उन्हीं ने नया इतिहास लिखा है। जो जंग में हार कर मर गए, वह हमेशा-हमेशा के लिए खाक में समा गए।

मैं छठी से आठवीं कक्षा तक जवां मिडिल स्कूल में पढ़ने जाया करता था। स्कूल का बहुत बड़ा मैदान था। एक तरफ मिडिल स्कूल और दूसरी तरफ संस्कृत पाठशाला थी। उससे सटी हुई एक समाधि थी। वह समाधि सफेद पत्थर से बनाई गई थी। उसके सामने नीम के पेड़ के नीचे एक चाट वाला अपनी साइकिल पर पड़ाके (गोल गप्पे/ गुपचुप/ पानीपूरी) रमास, करेला, और मटर की चाट बेचा करता था। उसके पास कभी-कभी मूंग की दाल की दही और सोंठ की गुजिया भी होती

थीं। मैंने गुजिया अपनी आठवीं कक्षा पास करके जाने तक कभी नहीं चखी थीं।

हम कुछ लड़के उस समाधि के अंदर और बाहर बैठकर अपनी रोटी खाया करते थे। मेरी रोटी सदैव रूखी नमकीन लाल मिर्च की चटनी के साथ रहती थी। वह भी किसी पतले कपड़े में चार तह करके मेरे लिए चार रोटी बंधी होती थीं। सबसे ऊपर वाली कभी एक, कभी दो, रोटी सूख जाती थी। रोटी सूखकर इतनी खड़ंक हो जाती थीं। उन्हें चने के दानों की तरह चबाना पड़ता था। उनको चबाने में मुझे बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता था। सूखी रोटी खाने में गले में फंस जाया करती थी। तब मुझे उठकर पानी पीने जाना होता था। उस जमाने में मुझे क्या गजब की भूख लगा करती थी। मैं उन रूखी-सूखी नमकीन रोटियों को भी बड़े स्वाद से खा जाया करता था।

हम अछूत लड़के सवर्ण लड़कों के पानी पीने के बाद ही नल से पानी पी सकते थे। इस अलिखित नियम का पालन अछूतों के सभी लड़के बिना गलती के, सरकारी कर्मचारियों या मिलिट्री के जवानों की तरह सुबह स्कूल में होने वाली प्रार्थना की तरह बिना नागा के किया करते थे। उस स्कूल में ठाकुरों के लड़कों का दबदबा था। नल से जब उच्च जातियों के लड़के पानी चलाते थे। तब ही हम पानी पी सकते थे। जब कोई नहीं होता था। तब हमारी जाति के लड़के जिनमें स्वयं मैं भी शामिल रहता था, चुपके से नल चलाकर पानी पी लिया करते थे। मेरे जीवन में शायद ही ऐसा कोई समय आया होगा जब ऊंची जाति का कोई लड़का नल के पास न रहा हो। मैं कभी भी उन लड़कों से बिना वजह उलझना नहीं चाहता था।

उस दौर में जब हमारी रोटी मिलने के ही लाले पड़े थे। उस विकट स्थिति में चाट खरीदने की बात सोच भी नहीं सकते थे। जब चाट खरीदने की भी हमारी हैसियत नहीं थी। तब इस दुनियादारी से बराबरी कैसे कर सकते थे। दादी मां कहती थी बेटा सब्र का फल बहुत मीठा होता है। उसमें दुनिया के सब फलों से अलबेली मिठास होती है। इस तरह हम सब्र कर बैठ जाते थे। मुझे मालूम था। यह सब बातें हमारा मन समझाने के लिए कही जाती हैं फिर भी उनकी इस बात को आज तक शब्दशः पालन करता रहा हूं। आज भी कुछ सवर्ण मुझ गरीब मामूली इंसान से अपनी बराबरी करते नजर आते हैं तब मुझे बहुत अफसोस होता है सदियों से पढ़ने-लिखने की परंपरा से जुड़े हुए स्थापित लोग, जिनका सदैव ज्ञान पर अधिकार रहा है। जो लोग जमीन, जायदाद, समाज, पद एवं प्रतिष्ठा में सदैव आगे रहे हैं और आज वही आगे हैं। उनसे मेरी क्या बराबरी? कहां जंगल के बर्बर राजा सेर और मैं...

अस्तित्वहीन मात्र एक निरीह प्राणी। भला यह भी कोई मुकाबला है। यह तो वही बात हो गई। कहां राजा भोज और कहां गंगू तेली से बराबरी। मुझे समझ में नहीं आता है क्या यह उनकी नादानी और अज्ञानता है? अथवा मेरी नादानी और अज्ञानता है?

10

हमारे मुहल्ले में श्री मलूकचंद और श्री खचेरमल दो व्यक्ति नाई का काम किया करते थे। ये दोनों सज्जन हमारी ही जाति के व्यक्ति थे। हमारी बस्ती में बहुत से लोग होने के कारण मिलिट्री की तरह बाल कटवाने का नंबर महीनों में आता था। उनका एक पखवाड़े में एक बार हजामत बनाने एक नियम था। वे सिर के बाल तीन से चार महीने में एक बार काटते थे। आपके बाल कितने ही बड़े क्यों न हो गए हों, परंतु समय से पहले बाल नहीं कट सकते थे। शादी-विवाह, टीका-लगुन अथवा नाते-रिश्तेदारी में दावत खाने के लिए जाते समय छूट दी जाती थी। इसके अतिरिक्त अन्य अवसरों पर ऊपर से उनकी खुशामद भी करनी होती थी।

हमारी जाति के नाई अलग हुआ करते थे। उन दिनों आजकल की तरह बाल ब्लेड से नहीं उस्तरे से बनाए जाते थे। उस्तरा चलाना सबके बस की बात नहीं हुआ करती थी। आजकल गांव में बेचारे नाई बेकार हो गए हैं अब तो नाई ही नहीं, धोबी, कहार, कोरिया, कढेरे और धीमर आदि सभी बेकार हो गए हैं लेकिन पहले उनकी चांदी हुआ करती थी। गांव में उनकी मारी हलाल थी। उनके पास हर घर की सभी सूचनाएं हुआ करती थीं। वही शादी-विवाह तय करवाया करते थे। खूब दावतें उड़ाया करते थे। वही लोग शादी-विवाह के अवसर पर गांव में घर-घर में निमंत्रण दिया करते और खाने के लिए बुलाया करते थे। उनके पास अपनी सांस लेने भर को फुर्सत नहीं हुआ करती थी।

स्कूल के मुख्याध्यापक प्रतिदिन प्रार्थना के समय लड़कों के बाल और कपड़ों की नियमित जांच किया करते थे जिस किसी लड़के के कपड़े गंदे और बाल बड़े हुआ करते थे। उसको एक-दो बार चेतावनी देकर छोड़ दिया करते थे परंतु बार-बार चेतावनी देने के बावजूद बाल नहीं कटवाए तब उस विद्यार्थी को स्कूल से वापस कर दिया जाता था। मुझे भी एक बार स्कूल से बाल बड़े होने के कारण निकाल

दिया था। मैंने अपने गांव में नाई से बाल बनवाने का कई बार अनुरोध किया परंतु उसने बाल नहीं काटे थे। हैडमास्टर द्वारा स्कूल में न घुसने देने की समस्या से मेरा बुरा हाल हो गया था। तब मैंने अपनी मां से बाल कटवाने के लिए एक चवन्नी बड़ी जिद करके मांगी थी।

गांव में उन दिनों सवर्ण जाति के नाई अलग हुआ करते थे। वे सातों जातियों के बाल काट सकते थे परंतु हमारी अछूत समझी जाने वाली छोटी जातियों के लोगों के बाल नहीं काटते थे। वैसे तो गांव में नाइयों के कई परिवार थे उनमें से एक राम राम राम राम राम थे। उन्होंने अपनी दुकान जवां कस्बे में खोल ली थी। मुझे इस बात की बिलकुल भी जानकारी नहीं थी। एक बार मैं उस कस्बे में गया था। उनसे बाल कटवाने के लिए उनकी कुर्सी पर बैठ गया था। नाइयों की आदत होती है वह बाल काटते हुए सी.आई.डी. की तरह हंसी-मजाक की बातें करते हुए बहुत सी जानकारियां ले लिया करते हैं। मेरे बाल काटते-काटते उनका पहला सवाल था। कौन से गांव के हो? मैंने उनके सवाल के उत्तर में कहा नगौला का। अच्छा! यह सुनते ही उन्होंने तुरंत दूसरा सवाल दाग दिया था? कौन जाति के हो? मैंने कहा जाटव। यह सुनते ही उन्हें बहुत गुस्सा आ गया था। चेहरा एकदम लाल हो गया था। अच्छा! चमार हो। मैंने कहा हां। मेरे अधबने बाल से मुझे कुर्सी पर से धकेल दिया था और कई बुरी-बुरी गालियां भी दी थीं। साले मेरी दुकान पर कहां-कहां से भंगी चमार चले आते हैं। मेरी दुकान बंद करवाएंगे। उसके बाद में अपनी झेंप और खिसियानी सी सूरत लेकर सर्कस के जोकर की तरह इधर-उधर कई नाइयों के पास घूमता रहा। उस दिन किसी ने मेरे बाल नहीं बनाए थे। सब लोग मेरे सर्कस की सी शक्ल-शूरत देखकर हंसे जा रहे थे। शाम को दुकान बंद करने के समय जब कुछ अंधेरा सा होने लगा तब एक मुस्लिम नाई पहले पैसे लेकर बाल बनाने के लिए सहमत हुआ था। उस शाम अपने घर जाकर मां के सामने मुझे बहुत रोना आया था।

मेरी मां ने मुझे उस दिन बहुत समझाया था। बेटा! सब दिन रहत न एक समान। तुम इस बात से बिना विचलित हुए, जीवन में आने वाली सभी मुसीबतों को पार करते हुए बढ़ते रहो। तुम्हारे एक न एक दिन अवश्य अच्छे दिन आएंगे। आज माना इस विवाद को लेकर हम किसी से मुंहवाद कर भी लेंगे। तब इससे क्या लोगों के मन में व्याप्त हमेशा-हमेशा के लिए कलुषता समाप्त हो जाएगी। इससे

तुम्हारी मुश्किलें समाप्त नहीं बल्कि और बढ़ जाएंगी। हम कहां-कहां रक्षा के लिए तुम्हारे साथ-साथ घूमते फिरेंगे। इससे तुम्हारे मन और बुद्धि पर विपरीत असर पड़ेगा। जब तुम पढ़ जाओगे, तब किसी दिन बड़े आदमी बनने की संभावना दिखाई देती है। इस संसार में लड़ाई करने से न कोई कभी जीता है और न कभी जीत सकता है। मेरे दादा (पिताजी) कहते थे। हमारे देश में एक अशोक नाम का राजा राज्य करता था। उसने बहुत सी लड़ाईयां लड़ीं और जीतीं भी थीं। अंत में उसने एक बड़ी कलिंग की लड़ाई लड़ने के बाद सदा-सदा के लिए लड़ाई करना छोड़ दिया था। उसके बाद में वह बुद्ध धर्म का साधू हो गया था। इसलिए बेटा लड़ाइयां सदैव विनाश की ओर ले जाती रही हैं। मेरा मानना है किसी भी छोटी-बड़ी समस्या का हल संवाद के द्वारा संभव है और सदैव संभव रहेगा। हमें और हमारे समाज को लड़ाई सदैव विनाश की ओर ले जाती रही है और सदैव ले जाती रहेगी।

11

मेरा बचपन से बहुत जिद्दी स्वभाव था। किसी छोटी सी हंसी की बात पर भी बहुत शीघ्र नाराज हो जाया करता था। यह किसी बच्चे की स्वभावगत विशेषता भी होती है वह क्षण में प्रसन्न और क्षण में नाराज। मेरा बचपन ननिहाल में अधिक गुजरा था। नानाजी के एक ही बेटी थी और मैं उनकी उस बेटी का बड़ा बेटा था। वे सभी मुझे बहुत स्नेह किया करते थे। मेरे खाने का बहुत ध्यान रखते थे। मेरे वहां होने पर नानाजी घर कभी भी खाली हाथ नहीं आया करते थे। उनका अपना भी एक नाती था लेकिन वह मुझे सबसे पहले और अपने नाती को बाद में खाने को दिया करते थे। मेरे मामाजी का लड़का मुझसे बड़ा और बहुत तंदुरुस्त भी था। मेरा शरीर कुछ कमजोर था। नानाजी शायद इसीलिए मुझ पर अधिक लाड़-प्यार लुटाया करते थे।

मेरे नानाजी के घर की दीवार से लगा हुआ एक गगनचुंबी शिव मंदिर था। वह बड़ा भव्य और आलीशान मंदिर था। मंदिर के अलावा उसमें कई कमरे बने हुए थे। उसका बहुत बड़ा परकोटा खिंचा हुआ था। उस मन्दिर के परकोटा की दीवार से सटकर मेरे नानजी के बैल बांधे जाते थे। मंदिर के बगल में उनके घेर का बड़ा

आहाता था। जहां पर उनके बहुत से जानवर बंधे रहते थे। उनके बाद में भी बहुत दिनों तक उनके बैलों की लड़ावरी वहां पर बनी रही थी। उससे कुछ दूर हट करके खुली जगह मेरे खेल का मैदान हुआ करता था। मैं जब भी अपनी ननिहाल जाया करता था, अपने बचपन से लेकर बड़े होने तक वहीं पर खेला करता था।

मैं अपने नानाजी और उनके घर के लोगों द्वारा फुर्सत के क्षणों में हंसने के लिए कही गई बातों से भी रूठ जाया करता था। उनसे रुठाकर अपने गांव जाने की कहकर घर से चला जाया करता था। मेरी ननिहाल में मेरे रुठाकर जाने का एक ही ठिकाना हुआ करता था। वह मंदिर के बगल में मेरे नानाजी के घर की दीवार से साथ सटकर खड़ा होता था। वहां खड़े होकर दीवार में लगी लोन की रेत को अपनी उंगली से कुरेद-कुरेद कर निकालता रहता था। जब तक मुझे कोई मनाने के लिए न आ जाता था। मेरे घर से जाने के कुछ देर बाद घर का कोई सदस्य मुझे मनाने के लिए अवश्य आया करता था। वह लोग सबसे पहले हंसते हुए मुझसे कहा करते थे।

अरे! हमारा रमेश भैया तो अपने गांव पहुंच गया है। तब मैं उनकी बात से शरमाकर अपना मुंह अपनी बांह की ओट से छिपा लिया करता था। सभी लोग प्यार से मुझे अपनी गोद में उठाकर घर ले जाया करते थे। यह रुठाने और मनाने का सिलसिला मेरे बड़े होने तक अनवरत रूप से चलता रहा था। आज मुझे कौन मनाता है? शायद...।

मैंने अपने नानाजी को बुढ़ापे में देखा था। उनका कद कुछ छोटा था। उनकी बड़ी-बड़ी झक्क सफेद मूंछें हुआ करती थी। वह सदैव सफेद कपड़े पहना करते थे। अपने सिर पर सदैव सफेद साफा अर्थात पगड़ी बांधा करते थे। उस जमाने में सभी युवा सिर पर गांधी टोपी और बुजुर्ग लोग पगड़ी बांधा करते थे। जब वह चलते थे। तब वह अपना एक हाथ जोर-जोर से हिलाते हुए चला करते थे।

मेरे लिए उन्होंने बड़े स्नेह से मेरे पैरों के लिए बजने वाले खडुया बनवाए थे। उस जमाने में भी और आज भी बदस्तूर अलीगढ़ में नुमायश लगा करती है। एक बार नानाजी मुझे अपने कंधे पर बैठाकर अलीगढ़ की नुमाइश दिखाने के लिए ले गए थे। नुमायश में बड़ी भीड़ थी। किसी ने भीड़ में मेरे पैर में से खडुया खींच लिया था। यह बात उन्हें घर आने पर पता चली थी। इससे उन्हें बहुत दुःख हुआ। उस समय उनके पास पैसे नहीं थे। उन्होंने मेरे लिए उधार लेकर पहले खडुया बनवाये थे। उसके बाद ही मुझे मेरे गांव भेजा गया था।

मेरे मस्तिष्क में अपने नानाजी की कुछ-कुछ धुंधली सी याद बाकी है। उनका गोरा बदन और भूरी-भूरी मूंछें हुआ करती थी। उनकी गर्दन कुछ आगे को झुकी हुई थी। इस कारण उनसे अधिक वजन नहीं चल पाता था। वह हमारे गांव प्रतिवर्ष तीज त्योहार पर सिंगारी, मिठाई, कुछ दाल, चावल आदि देने के लिए अवश्य आया करते थे। वह सदैव अपने कंधों पर गठरी रखकर लाते थे। मुझे याद है वह उस दिन गठरी के वजन से पसीने-पसीने हो गए थे। उनका कुर्ता भीग सा गया था। मेरी मां ने उनका पसीना सूखने के बाद में पहले पानी पिलाया था। तब मेरी मां ने अपने पिताजी को दादा कहा था जिन्हें वे अपने बचपन से दादा कहकर बुलाती थीं। उन्होंने उनसे दादा कहकर पूछा! दादा तुमसे इतना वजन नहीं चल पाता है फिर क्यों इतना वजन लाते हो?

इसके प्रति उत्तर में मेरे नानाजी ने कहा था! बेटा तुम्हें इससे कुछ सहारा लग जाता है। बच्चे दो-चार दिन कुछ अच्छा खा लेते हैं। अब तुम्हारा बाप इस बुढ़ापे में और कर भी क्या सकता है। यह कहते हुए उनकी आंखों में आंसू छलछला आये थे। उनकी बूढ़ी आंखों से अपनी बेटी के घर का हाल छिपा थोड़े ही था।

एक दिन अचानक नानाजी की किसी सदमे के कारण तबीयत खराब होने की सूचना गांव में आई थी। घर के लोगों ने इसकी सूचना मेरी मां को नहीं दी थी क्योंकि वे जाड़े के दिन थे और हम सब बच्चे बहुत छोटे-छोटे थे। वे इस शरद ऋतु में हम सबको छोड़कर महीने-पंद्रह दिन के लिए कैसे जा सकती थीं। मुझे याद है वे एक दिन जाड़े की ठंडी रात में हमसे, इस दुनिया से नाता तोड़कर सदा के लिए दूर चले गए थे। उनका अंतिम दर्शन करने के लिए मेरी मां के पास सूचना भिजवाई गई थी। तब मेरे बाबा और पिताजी मां को लेकर उन्हें देखने के लिए मेरी ननिहाल गए थे।

मेरी मां के पहुंचने से पहले ही उनके गांव के लोग नानाजी की अर्थी को लेकर शमशान की ओर चल पड़े थे। मेरी ननिहाल में उन दिनों घर से निकलने के बाद गांव के बाहर किसी भी स्त्री को शव के दर्शन करवाना, अपशकुन समझा जाता था। इसे उनका अंधविश्वास ही कहा जा सकता है। मेरी मां अपने पिता से बहुत प्यार करती थी। वह बहुत रोने-बिलखने लगी थी। इसके बाद वह किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में किसी की परवाह किए बिना घर से शमशान की ओर जाने के लिए जिद करने लगीं। वे अपनी जिद में अकेली ही घर से अपने पिता के अंतिम दर्शन करने के लिए निकल पड़ी थीं। जब लोगों ने उन्हें अर्थी के पीछे दौड़कर आते हुए देखा! तब

सभी लोग आश्चर्यचकित होकर एक दूसरे का मुंह ताकने लगे थे। वहां लोग घंटों अर्थी लेकर खड़े रहे थे। उनके गांव के बुजुर्ग लोगों ने बहुत सोच-विचार और गहन मंथन के बाद उनको कुछ क्षणों के लिए बस उनका मुख दर्शन ही करवाया था। इसके बाद मेरी मां बिना आंसू बहाये स्वयं अपने पिता के घर लौट आई थीं।

नानाजी के जाने के बाद मेरी नानी उनके सोच में सदैव डूबी रहती थीं। इसके बाद दिन-प्रतिदिन उनका शरीर निर्बल होता चला गया। उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता था। इसके बाद उन्हें कई बीमारियों के संक्रामण होने लगे थे। उनकी तबीयत कुछ खराब रहने लगी थी। कुछ समय बाद दुर्भाग्य से उनके पैर में एक फोड़े का जख्म बन गया था। उसका बहुत इलाज करवाया गया था परंतु वह ठीक नहीं होता था। आज मुझे लगता है शायद उन्हें शुगर की बीमारी भी हो गई थी, जिसके कारण उनका जख्म ठीक नहीं हुआ था। उनका मेरे परिवार के लिए बहुत बड़ा योगदान है। वह स्वयं नहीं आ सकती थीं। नानीजी ने मेरे पिताजी को एक बार पांच रुपए अलीगढ़ रोटियों में बांधकर भेजे थे। वह नहीं चाहती थीं। उनके घर में पैसे भेजने को लेकर किसी तरह की कलह हो। जब उनका अंतिम समय आया तब उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया था। मेरी मां अपने गांव में अपनी मां की सेवा, टहल करने के लिए दो माह के लगभग रही थीं। जब वह इस मायावी संसार से हमेशा-हमेशा के लिए विदा हो गयीं थीं, तब जाकर मेरी मां अपने मायके से गांव लौटकर आई थीं। वे अब इस दुनिया में नहीं हैं बस हमारे पास उनकी कुछ याद ही शेष रह गई है।

मेरी ननिहाल में हमारी जाति के लोग ही अधिक संख्या में रहा करते थे। मेरे मामाजी बहुत अधिक पढ़-लिख नहीं सके थे। उन्होंने अपने जीवन में कई काम शुरू किये, लेकिन एक भी काम पूरी तरह से मन लगाकर नहीं किया था। उन्होंने अपने घर परचूनी की दुकान खोली थी। इस काम में मेरे नानाजी भी मदद किया करते थे। बाद में उन्होंने दुकान बंद करके कपड़े बेचने का काम शुरू किया था। इसके बाद उन्होंने गुरु नानक देव की तरह ईश्वर के नाम पर सच्चा सौदा करने के लिए अपनी पूरे कपड़ों की गठरी को साधू बाबा के कहने पर गरीबों में बांट दिया था। इसके बाद मामाजी स्वयं साधू हो गए थे। महीनों बाद में उन्हें मेरे बाबाजी दिल्ली के पास के एक साधुओं के एक बड़े आश्रम से बड़ी मुश्किल से समझा-बुझाकर घर वापस लाये थे।

एक बार हमारे घर खबर आयी। किसी ने मेरे मामा जी को मार कर कुएं में डाल दिया है। मेरे घर के सब लोग खबर सुनते ही सकते में आ गए थे। इस खबर के सुनते ही मेरी मां का रो-रोकर बुरा हाल हो गया था। मेरे बाबा इस विपत्ति की घड़ी में, जंगलों के अंधे कुओं में रस्सी में कांटा बांधकर उनकी लाश को खोजते फिर रहे थे। उनका महीनों कोई पता नहीं चल पाया था। घर में सबने स्वीकार कर लिया था। अब वे इस दुनिया में नहीं रहे परंतु फिर उनका कई महीने के बाद में पता चला। वे किसी बहुत बड़े योगी साधू बाबा के साथ रह रहे हैं। वहां से भी मेरे बाबा उन्हें बड़ी मुश्किल से मनाकर घर वापस लाये थे।

मेरे मामाजी मनमौजी फक्कड़ किस्म के सच्चे और ईमानदार व्यक्ति थे। वह कभी कोई बात छिपाया नहीं करते थे। वे हर बात बड़े जोश में सुनाया करते थे। उन्हें तास खेलने का बड़ा शौक था। जब भी उन्हें समय मिलता। वह इस शौक में अपना हाथ अवश्य अजमाया करते थे। इसके साथ-साथ भांग, सुलफा, गांजा भी खूब पिया करते थे। वह गांजा पीते हुए कहा करते थे। "सुबह-शाम की सुरकी खबर लाबै धुर की" मेरी मामीजी अपने पति की इन सब बातों की मेरे पिताजी और मेरी माताजी से शिकायत किया करतीं थीं। मेरी मां के सामने मामाजी को बहुत बुरा-भला भी बोला करतीं थी। हमें बहुत बुरा भी लगता था लेकिन उनकी आदत अब छूट नहीं सकती थी। मेरे घर के लोग और मेरी मां जब भी समय मिलता मामाजी को बहुत समझाया करती थी। वह उस समय तो सब बातों को मान भी जाते थे, परंतु फिर दो-चार महीने में उसी काम को करने लगते थे।

मेरे मामाजी की जीवन भर कभी मेरी मामीजी से नहीं बनी। हमेशा उनके बीच अनबन और झगड़े के कारण छत्तीस का आंकड़ा बना रहता था। उनका एकमात्र लड़का श्री छत्रपाल सिंह हैं। मेरे मामाजी के लड़के को पढ़ाई बहुत अच्छी नहीं लगती थी। वे घर से सुबह समय पर खाना खाने के बाद स्कूल जाया करते थे। शाम तक शहर में इधर-उधर घूम-फिरकर समय से घर वापस आ जाया करते थे। जब उनका नाम स्कूल से कट गया। तब घर के लोगों को उनके स्कूल न जाने के राज का पता चला। वे उसके बाद कभी पढ़ने के लिए नहीं गए। तब घर के लोगों ने हारकर उनकी शादी कर दी थी। मामा के लड़के अधिक पढ़-लिख न सकने के कारण अपने पिताजी के साथ राज मिस्त्री और अंत में ठेकेदारी का काम करने लगे थे।

मेरे मामाजी अंत में परिस्थितिवश मन मार कर जीवन पर्यन्त राज मिस्त्री का काम करते रहे। वह बड़े ऊंचे दर्जे के राज मिस्त्री थे। उनका बड़े-बड़े सेठ लोग अपने घर में काम करवाने के लिए इंतजार किया करते थे। उनकी एक खासियत थी। वह काम बड़े इतमीनान के साथ किया करते थे। काम करने में कोई जल्दबाजी नहीं करते थे। वह सदैव कहा करते थे। ताजमहल एक दिन में नहीं बनता है। मढ़ैया बनवानी है, तब किसी टटपूंजिया राज मिस्त्री को पकड़ लेना। जाओ मेरा वक्त मत खराब करो। कोई भी अच्छा काम, काम की राह से खूब मन लगाकर धीरे-धीरे और आराम से होता है।

वह जब काम करते थे, तब महीनों काम करते रहते थे। जब उनका मन नहीं हुआ, तब महीनों घर पर आराम किया करते थे। वह जीवन पर्यंत अपनी शर्तों पर जिये। वे पूरी दुनिया को अपना घर मानते थे। इस खुले आसमान में मन माफिक तरीके से विचरण करना चाहते थे। उनकी शादी न हुई होती और घर के लोगों का दबाब न रहा होता। तब वह निश्चित रूप से बहुत पहुंचे हुए संत महात्मा अवश्य हुए होते। वह अभी कुछ साल पहले हमसे तथा इस मायावी दुनिया से नाता तोड़कर सदा के लिए दूर चले गए। अब बस उनकी चंद यादें ही शेष रह गयीं हैं। वे मुझे बहुत चाहते थे।

मामाजी से मैंने अपने जीवन में एक बात सीखी है। वे सदैव मुझसे कहा करते थे। रमेश! तुम कोई भी काम करो, पूरा मन लगाकर करो। इस दुनिया का कोई भी काम कभी छोटा और बड़ा नहीं हुआ करता है। उनकी इस महत्वपूर्ण बात के लिए सदैव ऋणी रहूंगा। मामाजी जीवन पर्यंत अपने कर्तव्य पथ भागते ही रहे। उन्हें कभी आराम नहीं मिला था। उन्हें अपने साथ रखने की मेरी बड़ी लालसा थी। अब यह लालसा शायद कभी पूरी नहीं हो सकेगी।

हम सम्बन्धों से नाता तोड़कर जी तो सकते हैं लेकिन संबंध हमारे ज्ञान की प्रथम पाठशाला होते हैं हम जिसे पढ़-लिखकर अपने बड़े होने के मद में भूल जाते हैं। उस बारहसिंघा हिरण की तरह जो सरोवर में पानी पीते समय, पानी में अपनी परछाई का प्रतिबिंब, उसके सिर पर मुकुट की तरह उगे सुंदर बड़े-बड़े सींगों को देखकर बहुत खुश होता है लेकिन अपनी पतली-पतली टांगों को देखकर बहुत दुःखी होता है। जबकि शिकारी की पहुंच से उसकी टांगें ही बचाती हैं और जीवन रक्षा करते समय कटीली घनी झाड़ी में अंदर प्रवेश करने से सिर पर मुकुट की तरह उगे उसके सींग उसे रोकते हैं। तब वह भय और जीवन रक्षा के लिए और शिकारी का

ग्रास बनने से बचने के लिए अपनी उन्हीं पतली-पतली टांगों के सहारे सरपट भागता, भागता ही जाता है।

12

हमारे गांव नगौला की इलाके के बहुत बड़े गांवों में शुमार की जाती है। इस गांव के बड़े होने का मुख्य कारण दो छोटे-छोटे माजरों को इसी गांव में शामिल किया जाना मान सकते हैं। कभी इन माजरों के दो-चार घरों में दस-बीस आदमी ही हुआ करते थे। फिर धीरे-धीरे परिवार बढ़ते गए और दूसरे गांवों से लोग उखड़कर इन माजरों के नगलों में बसते गए। अब उन छोटे-छोटे नागलों ने दो बड़े-बड़े गांवों की सूरत हासिल कर ली है। अब इनमें लगभग पांच-पांच सौ घर के करीब होंगे। इस लिए अब हम कह सकते हैं कि इन तीनों गांवों में लगभग पांच हजार वोटरों की संख्या होगी। हमारे इस गांव की सबसे बड़ी बात है। यहां सातों जाति के लोग रहते हैं। सबसे पहले सवर्णों से शुरुआत करते हैं। ब्राह्मण, बढ़-गूजर ठाकुर, चौहान ठाकुर, गुसाईं, खत्री, गड़रिया, धोबी, कढेरे, कुंभार, नाई, लुहार मुसलमान, फकीर मुसलमान, दर्जी, खटीक, कोयरी, नट, वाल्मीकि और अंत में जाटव रहते हैं।

चमार उर्फ जाटवों और भंगी उर्फ वाल्मीकिों का बहुत पुराना साथ है। इस प्रकार कह सकते हैं सदियों से इस समाज के लोगों में इनमें बड़ी गहरी दोस्ती है। इन दोनों जातियों का खान-पान लगभग एक सा रहता आया है। इन दोनों जातियों के लोग खाने के अनाज के अभाव में जीवन जीने के लिए मांस भक्षण करने के लिए मजबूर हुआ करते थे। जमाने बीते हुए कल के दौर में इसी मांस भक्षण के कारण आज के दलितों को शूद्र कहा गया था। अछूत कहा गया लेकिन आज स्थिति बिलकुल उल्टी हो गई है। आज सवर्ण समाज के लोग ही कहीं खूब धड़ल्ले से तो कहीं कुछ छिपकर मांस का भक्षण करने से परहेज नहीं करते हैं। आज बेचारे दलित जातियों के लोगों को इस दौर की महंगाई के चलते मांस भक्षण करने के लिए तो दूर की बात है उन्हें मांस देखने को भी नहीं मिलता है।

आज भी भारत के हर कोने में दक्षिण की ओर एक तरफ जाटव और उनसे एकदम सटे हुए दूसरी तरफ वाल्मीकि रहते हैं। इन दोनों जातियों के कभी असली नाम चमार और भंगी हुआ करते थे। समय बदलता गया। चमार, चमार से जाटव

हो गए और भंगी, भंगी से वाल्मीकि हो गए हैं। आज इस स्वतंत्र भारत में उनके सामने कोई चमार को चमार अथवा भंगियों को भंगी कहे तब वे उस पर कड़ा विरोध दर्ज करते हैं। जातिसूचक शब्दों से अपमानित करने पर दंडित करने का एक कानून भी बना है। यह इन जातियों का दुर्भाग्य है अथवा भारत का दुर्भाग्य है। आज विज्ञान के इस युग में अनपढ़ लोगों की बात को छोड़ भी दिया जाय तो ठीक है लेकिन बहुत से पढ़े-लिखे, सुसंस्कृत, कर्ता-धर्ता, सवर्ण जातियों के लोग प्रतिदिन जाति सूचक शब्दों से अपमान करने में अपनी शान समझते हैं। देश की सरकार कानून तो बनती है लेकिन उन्हें पूरी तरह लागू कर पाने में असमर्थता महसूस करती है।

यह बात मैंने यहां पर इसलिए कही है। स्कूल में चमार-भंगियों के बच्चे सबसे आखिर में पीछे बिठाए जाते थे। उन्हें एक बार स्थान दिखा दिया जाता था। वह उस हद, सीमा को कभी नहीं तोड़ते थे। गांव में सबसे अधिक संख्या में जाटव रहते हैं जिन्हें सवर्ण समाज के विद्वतजन लोग बड़े प्रेम और बड़े सम्मान के साथ सदैव चमार कहकर पुकारने में अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। किसी जाटव के सामने वह जाटव ही कहते हैं। भारत में चमार-भंगी तो एक गाली है। क्या चमारों की तरह रहते हो, क्या चमारों की तरह लड़ते रहते हो। ये लोग चोरी चमारी ही किया करते रहेगे।

किसी जमाने में पूरे गांव की एक ही होली हुआ करती थी। गांव की पथवारी और शिव मंदिर से कुछ दूरी पर होली रखी जाती थी। वसंत पंचमी के दिन बड़े जोश-ओ-खरोश, उत्साह और उमंग के साथ पांच कंडे रखकर होली का मुहूर्त कर दिया जाता था। गांव के सब लोग मिलकर सवा महीने तक होली बढ़ाने के लिए रात को वृक्ष काट-काटकर इकट्ठे करते रहते थे। वह बड़ी खुशी और उत्साह का माहौल हुआ करता था। होली बढ़ाते हुए रात में आपस में हंसी मजाक भी खूब हुआ करती थी लेकिन उनमें चमार-भंगियों के लोगों और औरतों को लेकर अधिक गालियां दी जाती थीं। इस अपमान को अनेक सालों तक पुरानी पीढ़ी के लोग बर्दास्त करते रहे थे। जब मेरी पीढ़ी के नये लोग आ गए। तब भी पुरानी परंपरा बदलने का नाम नहीं ले रही थी। दोनों ओर संघर्ष बढ़ता जा रहा था। हमारे मुहल्ले से कई वर्षों तक इस संघर्ष को टालने के उद्देश्य से होली बढ़ाने के लिए कोई व्यक्ति नहीं जा रहा था। जब होली जला दी जाती थी। तब उसके बाद में बस होली की आँग लेने के लिए जाया करते थे। सवर्णों के लड़कों को इस बात पर भी शख्त एतराज था। वह

लोग होली की आग लेने आने वालों को मां-बहन की गाली दिया करते थे। एक होली पर दोनों ओर के गाली-गलौज और गरमा-गरमी हो गई। किसी तरह से मामला शांत हुआ। इस वर्ष हमने उनकी होली में से आग नहीं ली।

हमने उसी रात अपने मुहल्ले से कुछ लकड़ी इकट्ठी करके और कुछ बिटोराओं की छान उतार कर अपनी अलग होली जमा ली थी। होली तो रख दी गई परंतु अब हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या थी उस होली की पूजा कैसे होगी? पूजा कौन करेगा? उसमें आग कौन लगाएगा? हम सब बड़े चिन्तित थे। हम किसी पंडित को बुलावे। क्या पंडित आएगा? आएंगे तब उनकी दक्षिणा कहां से आएगी। हम लोगों के मन में अनेक प्रश्न आ और जा रहे थे। इस बात का हल मेरे हमउम्र रिश्ते के चाचा दलबीर सिंह ने निकाला।

दलबीर सिंह ने कहा! हममें से रमेश उर्फ उमेश सबसे अधिक पढ़ता-लिखता है। आज इस विपदा की घड़ी में यही हमारा पंडित है यही हमारी होली जलाने का काम करेगा। न कोई दक्षिणा और न कोई सीधा। बस हो गई बात साफ। अंत में उन्होंने कहा किसी को कोई एतराज है। सबने एक आवाज में कहा था। बिलकुल ठीक है। हमें कोई एतराज नहीं है। जब उस रात हमने अपनी अलग होली अपने हाथों से जलायी। उसी आग से अपने घरों में होली की नई बालियां भूनी। अपने बुजुर्गों को नया अन्न देकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। उस अंधेरी रात में हम सभी बच्चे बड़े संतोष और हर्ष का अनुभव कर रहे थे। उस दिन मेरे युवा संगी-साथियों को ऐसा लग रहा था जैसे-हम सदियों की यातना भरी गुलामी के बंधनों से आज मुक्त हो गए हैं।

मुहल्ले में धूल वाले दिन सब लोग रंग की होली खेलते थे। अबीर और गुलाल से रंगे लोग हंसी खुशी और उल्लास के साथ होली की मस्ती में झूम-झूमकर होली गाते थे। यह सब देर रात तक चलता रहता था लेकिन हमारे गांव में सवर्ण लोग इस रंग के त्योहार के दिन भी रंग के साथ-साथ कीचड़ की होली भी खेलते थे। यह हम लोगों को पसंद नहीं था। एक बार वह लोग हमारे मुहल्ले में भी रंग के साथ कीचड़ डालने लगे, तब बहुत गरमा-गरमी हो गई थी। उस होली के अवसर पर किसी तरह से झगड़ा होते-होते बचा था। उसके बाद सवर्ण लोग हमारे मुहल्ले में रंग की होली खेलते हैं कीचड़ की होली नहीं खेलते हैं। होली के दूसरे दिन पूरे गांव में कीचड़ की होली खेली जाती है। उस दिन पूरे गांव की गंदी नालियों की कीचड़ को स्वेच्छा

से साफ कर दिया जाता है लोग हंसते हुए एक दूसरे को कीचड़ में सानते हुए बड़ा गर्व महसूस करते हैं। इसी एक दिन सवर्ण लोग सफाई का काम करते हुए शूद्रत्व को प्राप्त होते हैं वैसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य जन्म से सभी शूद्र होते हैं।

दूसरी होली हमने बहुत बड़ी रखी। दिन-रात हम सब होली को बढ़ाने में लगे रहते थे। इसके चलते सवर्ण लोग हम लोगों से ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने हमारी होली, होली के दो दिन पहले चुपके से जला दी। हम सभी बच्चे सवर्णों के इस अधम कृत्य से बड़े निराश हो गए थे। हम सब बच्चों ने फिर से हिम्मत करके दो रातों में ही होली को फिर दुगुना बड़ा कर दिया था। इस बार हमने दो बड़े उम्रदराज हरफनमौला व्यक्तियों को कुल्हाड़ी लेकर होली पर पहरा देने के लिए बैठा दिया था। यह अच्छा ही हुआ उसके बाद कोई भी हमारी होली दहन करने के लिए नहीं आया। उस रात नहीं तो बड़ा अहित हो गया होता। हमारे गांव में इसी मनमुटाव के चलते हर कोने पर आज एक अलग होली रखी जाती हैं। अब गांव में चार-चार होलियां जलाई जाती हैं वहां अब सब अमन चैन है।

13

मैं अपना विवाह करवाने के पक्ष में बिलकुल भी नहीं था, लेकिन मेरे घर के लोग मेरा विवाह करवाना चाहते थे। उस समय मेरी उम्र लगभग बारह वर्ष की रही होगी। उन्नीसवीं सदी में भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की शादी हुई थी, उस समय उनकी उम्र तेरह वर्ष की थी। डॉ. भीमराव रामजीराव अंबेडकर की भी कम उम्र में शादी हो गई थी। जब मेरी शादी हुई उस समय मेरी उम्र बारह वर्ष थी। मैंने मात्र सातवीं पास की थी, भला यह भी कोई विवाह करवाने की उम्र होती है लेकिन उस दौर में बच्चों की कम उम्र में ही शादियां कर दी जाती थीं। मेरी बस्ती के सभी हमउम्र बच्चों की शादियां हो चुकीं थी अथवा किसी-किसी की शादी होने वाली थी, गांव के जिन लड़कों का चाल-चलन ठीक नहीं होता है जिनका मन पढ़ने में नहीं लगता है, उनकी शादी शीघ्र कर दी जाय, यह कहीं तक उचित जान पड़ता है।

घर के सारे काम मेरी मां के जिम्मे हुआ करते थे। जब कभी मां बीमार हो जाती थी। उस दिन घर में रोटियां नहीं बनाई जाती थी क्योंकि मां ही सुबह चार बजे उठकर घर की हाथ की चक्की से आटा पीसती थी। तब जाकर कहीं घर में

रोटियां बनती थी। दादी मां और बुआजी मेरी मां के रहते घर में कोई काम नहीं किया करती थीं। जब भी मां बीमार होती थी, उस दिन निश्चित ही भूखे पेट ही स्कूल जाना पड़ता था। तब दूसरे दिन तड़के ही स्कूल को निकल जाया करता था। क्योंकि घर में भात भी बना तो दोपहर तो होनी ही है।

जब भी मेरी मां कभी अपने मायके जाती थी। वहां पर दस-पंद्रह दिन रहने के बाद आया करती थी। मेरे बाबा मेरी मां को बुलाने जाते थे। हमारे नानाजी के घर की हालत हमारे घर से अच्छी थी। वहां खाने के लिए अच्छा खाना मिलता था। मेरा ननिहाल मंदिर नगला में थी जो शहर के पास का एक गांव था। वहां मजदूरी मिलने में कोई परेशानी नहीं होती थी। जब भी मां अपने गांव से आती थी अपने साथ पूड़ी की डलिया लेकर आती थी। उसमें मीठी और नमकीन पूड़ी हुआ करती थी।

मेरी दादी मां मेरे चाचाजी के दोस्त श्री सोनपाल सिंह अटल को बड़ा स्नेह किया करती थीं। उनका गांव लहटोई था। वे हमारे घर में हमारे साथ ही हफ्तों रहा करते थे। उनका भी मेरी दादी मां से भी बड़ा प्रेम था। वह सदैव मेरी दादी को अम्मा कहकर बुलाते थे और उसकी हर बात मानते थे। अम्मा उनसे कहती! भैया नेक धान कूट ले। अभी बहू नहीं आई है। तब वह धान कूटने लग जाते थे। दादी उनसे बीच-बीच में कहती! सोनपाल छत पर जा कर देख तो जरा। तेरे बापू बहू को लिवाकर आ रहे होंगे। वह दोपहर बाद से ही छत पर बार-बार देखने जाते थे। छत पर बार-बार बहू को देखने से तात्पर्य होता था उस दिन सभी को मुलायम पूड़ियों खाने को मिला करती थीं। दूसरे उस दिन के बाद घर के सभी कामों से छुटकारा भी मिल जाया करता था।

यह वह समय था, जब हमारा संयुक्त परिवार था। घर के सभी लोग शामिल ही रहा करते थे। मुझे कभी-कभी पूरा-पूरा दिन पानी पीकर ही गुजारना होता था। शाम को घर आने पर नमकीन भात मिल जाया करता था। जब तक मां बीमारी से नहीं ठीक हो जाती थी। तब तक घर के सभीजन भात से ही काम चलाते थे। जब कभी बुआजी ने आटा पीस लिया तो रोटी बन जाती थी। कभी बहुत हुआ तो जौ की घाट ओखली में कूट-कूट कर बनाई जाती थी। वह कढ़ी बेसन और छाछ के साथ बहुत स्वादिष्ट लगा करती थी।

जौ की नमकीन गरम रोटी लाल मिर्च की चटनी के साथ फिर भी खाई जा सकती थी लेकिन ठंडी रोटी नहीं खाई जाती थी। जौ की रोटी गरम खाने में गेहूं की

तरह लगती थी लेकिन उसकी भूसी की फांस गले में चुभती थी। बृजभाषा में कहें तो गरेन्टुआ अर्थात गले में फांस सी चुभतीं थीं। उस समय जौ की रोटी के खाने के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं था। जौ में मटर मिलाकर नमक और मिर्च डालकर रोटी बहुत स्वादिष्ट लगती थी। रोटी का जायका बढ़ाने के नए-नए तरीके ईजाद किए जाते थे।

उस दौर में मां-बाप अपने बच्चों की शादी करके उनके कंधों पर परिवार की जिम्मेदारी का बोझ डाल देते थे। इससे उन्हें घर के काम-काज में कुछ सहूलतें हो जाया करती थीं। घर का काम-काज करने के लिए बहू के रूप में मुफ्त में एल गुलाम मजदूर मिल जाया करता था। दूसरे जो लड़का सदैव इधर-उधर ताक-झांक और रात देर तक बाहर बैठक करते हैं उससे निजात मिल जाया करती थी। इसके अतिरिक्त उनके अपने खर्च बढ़ जाते हैं ऐसा करने से लड़का स्वयं काम करने लग जाता था। इससे उनके घर में कुछ आमदनी अवश्य बढ़ जाया करती थी। तीसरे मां-बाप इस दुनिया से जाते-जाते पोता-पोती का मुंह देख जाते थे। एक सबसे बड़ा कारण जो मुझे महसूस होता है वह अपने बच्चों को कच्ची उम्र में किसी गलत राह पर भटक जाने से बचाना माना जा सकता है।

गांव में जो लड़के-लड़कियां पढ़-लिख नहीं रहे हैं उनके बारे में मां-बाप इस प्रकार का निर्णय लें, यह कहीं तक उचित जान पड़ता है। लेकिन जो बच्चे पढ़-लिख रहे हैं उनसे आगे बढ़ने की कुछ उम्मीद की जा सकती है। इस बारे में भारतीय परिवार विशेषकर निम्नवर्गीय दलित परिवार के लोग नहीं सोच पाते हैं। असल में उनके सोचने का दायरा घर परिवार, गांव तक ही सीमित होता है। इसका एक विशेष कारण उनका परिवेश है। उनकी बातचीत, उनका उठना-बैठना पढ़े-लिखे लोगों से नहीं होना कह सकते हैं। उन्हें कोई समय पर समझाने वाला नहीं होता है। वह अपने परिवार के खाने-पीने और शादी-विवाह से आगे नहीं सोच पाते हैं।

भारत की छोटी जातियों के मुसलमान फिर भी ठीक हैं जो कम से कम अपनी दीन-दुनिया, जन्नत और दोजख के बारे में सोच सकते हैं। इस दुनिया में उन्हें अच्छे-बुरे का भेद बताने वाले मौलवी साहब हैं। लुहार, अंसारी, भिस्ती, धुन्ना, और फकीर फुल्ला आदि छोटी जाति के मुसलमानों की भी दीन, जन्नत और दोजख में बराबर की भागीदारी है। वह मस्जिद में बिना रोक-टोक नमाज पढ़ सकते हैं भले ही उनके लड़के-लड़कियों से शेख, सैयद, मौलवी और काजी शादियां न कर सकते

हों। उनका इस दुनिया में जीना फिर भी जीना माना जा सकता है। उन्हें इस समाज में कुछ हद तक हक भी हासिल हो जाते हैं। उनका एक तरह से जीना सार्थक कहा जा सकता है।

हम दलित हिन्दू हैं सवर्णों के भाई हैं। कब! जब वह अपना धर्म परिवर्तन करते हैं। तब हिन्दू धर्म खतरे में आ जाता है। मैं अपने जन्म से लेकर आज तक की बात कर रहा हूं। आज भी हिन्दू दलितों को मंदिर में नहीं जाने देते हैं। न वह मंदिर में पूजा कर सकते हैं, न वह हिंदुओं के साथ उठ बैठ सकते हैं, न उनके साथ शादी कर सकते हैं, न उनके साथ खा-पी सकते हैं, न वह पढ़-लिख सकते हैं, न वह उनके सामने बोलने की जुर्रत कर सकते हैं, न उनके बराबर बैठ सकते हैं, न उन्हें संविधान में दिए गए नियमानुसार नौकरी दी जा सकती है, फिर दलित किस बात के हिन्दू हैं, यह बात मेरी समझ से परे है?

जब इस मशीनी दुनिया में जहां पर प्रत्येक स्त्री और पुरुष स्वयं जीविकोपार्जन के बाद खाता है। यहां पर कोई किसी को कुछ नहीं दे सकता है वहां इतना भेदभाव, इतनी ऊंच-नीच, इतनी छुआ-छूत और गैर बराबरी हो सकती है। इस मृत्युलोक में जहां सब कुछ फानी हैं, यहां हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चोखो आवै, की स्थिति बनी हुई है वहां पर धर्म में दलितों को कोई हिस्सेदारी देने को तैयार.नहीं है। यहां हर तरफ सारी लड़ाई भगवान को खुश करके, सब कुछ स्वयं हड़प कर लेने की जुगाड़ में सवर्ण हिन्दू दिखाई देते हैं। जबकि सभी को पता है, सब कुछ यहीं पर रह जाने वाला है फिर किस बात के लिए भगवान को दलितों से छिपाते हैं, उनसे सदैव उस भगवान को दूर रखने का जुगाड़ करते रहते हैं। यह बात भी मेरी समझ से परे है?

इस संबंध में एक दृष्टांत इस प्रकार है-एक बहुत धनवान व्यक्ति था। उसने अपने घर पर एक बड़े साधु को आमंत्रित किया। साधु जब उस व्यक्ति के घर पहुंचे तब उनका बहुत सम्मान के साथ आव-भगत की गई। शाम के समय उस व्यक्ति ने साधु से उसके द्वारा आतिथ्य और सेवा में कोई कमी होने की बात पूछी। साधु ने कहा सब ठीक है। इसके बाद में उस व्यक्ति ने साधु से कहा! महाराज मैंने आपके आतिथ्य पर एक करोड़ रुपये खर्च किए हैं। साधु ने बड़े विनम्र भाव से कहा! आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। दूसरे दिन जब साधु चलने लगे तब उन्होंने उस धनी व्यक्ति से एक सुई मंगवाई। उस सुई को लेकर साधु ने कहा! बेटा मेरी इस सुई को अपने पास रख लो। जब तुम ऊपर स्वर्ग में आओ। तब तुम इस सुई को मुझे वापस

कर देना। कहने का तात्पर्य यह है इस दुनिया की कोई भी वस्तु मरने के बाद साथ नहीं ले जाई जा सकती है फिर इस दुनिया के लोगों की छुआ-छूत, भगवान के मंदिर में प्रवेश न करने देने का प्रतिबंध सब बेकार ही नजर आते हैं फिर लालच कैसा?

इसके बाद अब परलोह पर बात कर लेते हैं। पहले मुसलमानों की बात कर ली जाए। उनके धर्म ग्रंथ के अनुसार जिसका अल्लाह में विश्वास है उन सभी मुसलमानों की जन्नत में बराबर की हिस्सेदारी है। हिन्दू धर्म में कहीं पर भी जिक्र नहीं है। शूद्रों का स्वर्ग में क्या स्थान होगा। जब शूद्रों के भगवान नहीं हैं, शूद्र इस लोक में भगवान की पूजा ही नहीं कर सकते हैं। उन्हें विधि विधान बताने वाला कोई नहीं है। उनकी धर्म ग्रन्थों में हिस्सेदारी नहीं है। जब धर्म ग्रंथ में उनके लिए कोई विधान ही नहीं है। इसमें दो सौ प्रतिशत रिजर्वेशन सवर्णों का ही है। स्वर्ग में तो कोई काम ही नहीं करना पड़ता है। वहां कोई कुछ खाता-पीता भी नहीं है। इस स्थिति में वहां गंदगी कैसे हो सकती है। जहां पर कोई गंदगी नहीं है वहां पर शूद्रों का कोई काम भी नहीं हो सकता है फिर स्वर्ग में शूद्र कैसे प्रवेश कर सकते हैं। भारतीय धर्म ग्रन्थों के अनुसार स्वर्ग में दलितों के प्रवेश का कोई प्रावधान भी इसीलिए नहीं किया गया है। यह बात मेरी समझ से परे है?

खैर छोड़िए इस सबके बाद भी कहने के लिए मेरे बाबा हिन्दू थे, मेरे पिताजी हिन्दू थे, मैं भी हिन्दू हूं। यह कहावत सच है "मान न मान मैं तेरा मेहमान"। जब हम भारत में रहने वाले सभी हिन्दुओं के मेहमान हैं फिर लड़ाई किस बात की है। हम दलितों को प्रत्येक स्थिति में स्वीकारने के अतिरिक्त उनके पास और कोई दूसरा विकल्प ही नहीं है परंतु वे अभी भी हमें क्यों स्वीकारते नहीं हैं इसके पीछे कौन सा ऐसा गहरा राज छिपा है। यह बात भी मेरी समझ से परे है।

मां-बाप का अधिक पढ़े-लिखे न होना भी एक बड़ा कारण माना जा सकता है। वह शादी-विवाह और बाल-बच्चों से आगे की सोच ही नहीं सकते थे। सभी कच्चे मकानों में रहते थे। वह कभी गांव छोड़कर शहर नहीं जाते थे। विकास किस चिड़िया का नाम है वह नहीं जानते थे। जिसने शहर नहीं देखा है वह शहर के बारे में कैसे कल्पना कर सकता है।

लड़की वालों ने शादी पक्की करने का एक रुपया मेरे हाथ पर रख दिया था। उस दिन शादी तय होने के ठीक एक माह बाद में मेरे विवाह का दिन निश्चित भी कर दिया गया था। आठवीं कक्षा का परीक्षा परिणाम उसके बाद में आया था। जिसमें मुझे अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण घोषित किया गया था।

मुझे शादी के लिए किसी तरह तैयार कर लिया गया था। उन दिनों हमारी जाति के दूल्हे को आज की तरह सिल्क के चमकने वाले कपड़े की पगड़ी नहीं पहनाई जाती थी। इस तरह की पगड़ी सेठ साहूकारों और बड़े-बड़े लोगों के दूल्हों को पहनाई जाती थी। हमारी जाति के दूल्हा के मोहर बांधा जाता था। मोहर बांस की पतली-पतली खपंचों पर रंगीन सिल्वर फोइल, एक तरह से चमकने वाला पेपर और उसी के फूल बनाकर लगाये जाते थे। उसमें एक-दो नकली मोती की लड़ियां भी लटकाई जाती थीं। मुझे उसी तरह का मोहर बांधा गया था हालांकि वह मेरे जीवन के उस पहले और अंतिम महत्वपूर्ण दिन को यह सब आडंबर करना बिलकुल अच्छा नहीं लग रहा था। मैंने इसके बावजूद उन सभी रस्मों को घर के सभी सगे संबंधियों के दबाब के चलते बखूबी निभाया था। उस दिन मुझे सबकी खुशी के लिए सूली पर चढ़ जाना पड़ा था। मैंने अपनी शादी न करने के मन की, अपने आगे बढ़ने के अरमानों की बलि चढ़ा दी थी। मुझे उसी समाज और उन्हीं लोगों में जीना था। मेरी उम्र बहुत कम थी। एक बालक उस समय भागकर जाता भी तो कहां पर जा सकता था। जब भागकर मजदूर ही बनना है इसके बाद पूरे जीवन भर मजदूर बनकर रहना है तब घर पर मजदूर बनकर रहने में क्या बुराई है।

मैं उस दिन मोहर को बांधकर एक दूल्हे के रूप में सबके मनोरंजन का साधन बना हुआ था। मेरी मां और गांव की औरतों ने मुझे सबसे पहले अपने गांव के कुएं के सात फेरे दिलवाए थे। इसके बाद विवाह करने के लिए निकल पड़ा था। मेरे पीछे-पीछे बच्चों और बड़े लोगों की भीड़ शोरगुल करती चलती थी। इस बदले माहौल को देखकर कुत्ते बहुत जोर-जोर से भोंक रहे थे।

मुझे उस दिन कुत्तों के भोंकने पर लग रहा था? वह मुझसे भोंक-भोंक कर पूछ रहे हों? तुम तो पढ़-लिखकर बहुत कुछ करना चाहते थे। समाज के इन चंद लोगों ने तुम्हारे सब अरमानों का कत्ल कर दिया। तुम चुप रह गए। खैर कोई बात नहीं है। हमें अपनी बारात में भी नहीं ले जा रहे हो। बड़े अपस्वार्थी हो।

मैंने उनसे अपने मन ही मन में कहा! अब आप सब चुप भी हो जाओ। सब नाते रिश्तेदारों के सामने इतनी टांग नहीं खींचते हैं। तब मुझे लगा जैसे कुत्तों ने मुझसे कहा हो! हम कहां भोंक रहे हैं! हम तो तुम्हें विदा करने के लिए आए हैं। इस खुशी के मौके पर जो जानते थे, वह कुछ गा भर दिया है। तुम्हारे चार रिश्तेदार आये हैं। उनके सामने कुछ तो कहना पड़ता है न। नहीं तो आप कहोगे! इस खुशी के अवसर पर कुछ गाये भी नहीं। मैंने उस दिन उनकी हां में हां मिलाई और चलता बना था।

मैं अपनी शादी करने के लिए अपनी बरात के लोगों के साथ ट्रेक्टर में बैठकर गया था। मेरी शादी चांदपुर से हुई थी। वह भयंकर गर्मियों के दिन थे। उस दिन दोपहर में बहुत गर्मी पड़ रही थी। इसलिए नानऊ पर बरात बाग में आम के छायादार पेड़ के नीचे कुछ घंटों के लिए रोकी गई थी। नानऊ खांटी देहात में पड़ता है। एक मात्र यही कारण था वहां पर प्राकृतिक मिनरलों से भरपूर गर्मी की मेवा के रसीले तरबूज बहुत सस्ते मिल रहे थे। सब लोगों ने दोपहर ढले तक खूब तरबूज खाये थे। इसके बाद वहां से दोपहर ढले बरात चांदपुर के लिए चल पड़ी थी। चांदपुर में बरात लगभग चार बजे पहुंच गई थी। इसके बाद साधारण ढोल, मजीरा के बाजों के साथ नृत्य मंडली नाचते-कूदते हुए बरात आगे बढ़ रही थी। तभी गांव के रसूकदार ठाकुर ब्राह्मणों ने आकार बरात गांव में होकर चढ़ने से रो दी थी।

उस गांव में बरात चढ़ने को लेकर बहुत हंगामा हुआ। इस बात को लेकर लोग आपस में फौजदारी करने पर उतारू हो गए थे। उन दिनों सवर्णों द्वारा उत्तर प्रदेश के गांवों में, छोटी जातियों के लोगों की बरात न चढ़ने देने की प्रथा सी चल पड़ी थी। इसके चलते बरात चढ़ाने को लेकर सदैव अंदेशा बना रहता था। हमारी बरात में एक से एक छटे हुए, ताकतवर और छह फुटा जवान थे। उन्होंने अपनी धोती और पाजामा ऊपर कस लिए थे परंतु दुर्भाग्य से उस समय सभी लोगों के हाथ खाली थे। गांव और बरात के लोगों में फौजदारी होने पर निश्चित रूप से इधर-उधर दोनों पक्षों से दो-चार आदमी मारे जा सकते थे उस विपरीत परिस्थिति में घायलों की गिनती का कोई अंदाज लगाना मुश्किल हो जाता। इस संदर्भ में आल्हा की पंक्तियां दृष्टव्य हैं–

बातन बातन बतबड़ हो गई, और बातन बाड़ा राड़।
दूनों दल में हल्ला है गयौ, क्षत्रिनु खींचि लई तलवार।

जब बात हद से आगे बढ़ने लगी। तब बरात के कुछ बुजुर्ग लोगों ने बीच में पड़कर अनहोनी को टालने के उद्देश्य से बरात को गांव के दूसरे रास्ते से चढ़ाने का फैसला कर लिया था। गांव में होकर एक चमार के लड़के की बरात चढ़ जाती। तब शायद दलितों को न जाने स्वर्ग का राज्य और इन्द्र का राजसिंहासन ही मिल गया होता। उसे उस गांव के सवर्णों ने चमार के लड़के की बरात न चढ़ने देने से बचा लिया था। यह देश का दुर्भाग्य है हमारे देश के सवर्ण अपना मस्तिष्क कितने महत्वपूर्ण कार्य में लगाते हैं। यह हमारे स्वतंत्र, प्रजातांत्रिक और गौरवशाली देश के ऋषियों की तपस्या से उत्पन्न पढ़े-लिखे लोगों के सभ्य समाज की सभ्यता की नस्ल का एक छोटा सा नमूना आपके समक्ष प्रस्तुत किया है।

संध्याकालीन बेला में बरात को खीर, बूरा, पूड़ी और काशीफल की सब्जी की दावत दी गई थी। सब लोग रास्ते भर ट्रेक्टर में खड़े हो करके आए थे। उसके हिचकोलों से लोग बहुत थक चुके थे। खाना खाकर बरात के सब लोग बिना दबदोरे सो गए थे। उन दिनों उस गांव में मेरी बरात तीन दिन तक रही थी।

मेरी शादी उर्मिला जी के साथ तय की गई थी। उनके पिताजी के चार भाई थे और चारों भाई किसानी का काम किया करते थे। उनके खेतों में बड़े स्तर पर आलू की खेती की जाती थी। इसके अतिरिक्त उनके खेतों में बैगन, भिंडी, काशीफल और पेठे आदि की खेती भी की जाती थी। उनके पास अपनी बहुत अधिक जमीन नहीं थी परंतु वे लोग दूसरों के खेतों को लगान पर लेकर उसमें स्वयं खेती किया करते थे। मेरी पत्नी के पिता श्री हरलाल साधु प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। सुबह से शाम तक खेतों में काम करना अपना धर्म समझते थे। वह शाम को अपने ध्यान में लीन रहते थे। उनके लिए खेतों पर जब कोई खाना दे जाता था। तब उस खाने को खा लिया करते थे। इसके अतिरिक्त दुनियादारी से उन्हें कोई मतलब नहीं था।

जब मेरी शादी हुई तब गर्मी के दिन थे। सुबह से ही दिन में शरीर को झुलसा देने वाली गर्मी पड़ रही थी। बरात को उन्होंने अपने खेतों पर बने घेर पर रोका था। वहीं पर उनका खेतों में सिंचाई करने के लिए पम्पसेट इंजिन लगा हुआ था। खुले खेतों में रात कुछ अधिक ठंडी होती है। वहां पर बड़े मजे में बरात के आदमी सोये थे। उन्होंने वहां पर सब व्यवस्था कर रखी थी। उन दिनों उनके यहां पर खरबूजे, तरबूजे और ककड़ी की बाड़ी लगी हुई थी। दूसरे दिन पूरी बरात के बच्चों और बड़ों ने बाड़ी से तोड़कर खूब कच्चे पक्के फल खाये थे। उन्होंने अपने खेतों पर लगभग पांच सौ मुर्गियां पाल रखी थी, जो रात में पेड़ों पर बैठती थीं। पेडों के नीचे बालू डलवा रखी थी ताकि रात में मुर्गियों द्वारा अंडे दिये जाने की स्थिति में सुरक्षित रहे। बरात के लोग उन्हें रात में ही इकट्ठा करने पर लगे हुए थे। बच्चों ने सुबह होते-होते नाश्ते में उन अंडों को उबालकर खाना प्रारम्भ कर दिया था।

मेरी शादी श्रीमती उर्मिला देवी के साथ बचपन में ही कर दी गई थी। उस समय उन्हें अक्षर ज्ञान के साथ-साथ गृह कार्य सब कुछ आता था। उनको व्यावहारिक ज्ञान के अंतर्गत खाना बनाना, घर चलाना, घर को संभालना, बड़ों का आदर करना, धीमी आवाज में बात करना, समाज के रीति-रिवाज और अपने गांव-देहात की बोली में लजाते मुस्कराते हुए मीठी-मीठी बात करना सभी कुछ तो आता था। वह उन दिनों अपने रूप लावण्य से भरपूर अदभुत सुंदर युवती थी परंतु

मेरा मन इस सबके बावजूद किसी पढ़ी-लिखी सुसंस्कृत लड़की से शादी के लिए सदैव मचलता रहता था जो पढ़े-लिखे लोगों के बीच बातचीत और उनका आदर सत्कार अच्छी तरह से कर सके।

मुझे उस समय अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ने के कारण अपने आप पर कुछ गर्व सा महसूस होता और कुछ पढ़ने के कारण शेष घर और गांव के लोगों से अपने आपको कुछ अलग महसूस करता था। उस समय मुझे लगता मेरी पत्नी पढ़े-लिखे लोगों के बीच बोल-चाल और उठने-बैठने के काबिल नहीं है। इसलिए मेरे मन में कई बार आया अपने भाग्य को बदल कर अपनी दूसरी शादी कर लूं। मैंने उच्च शिक्षा के दौरान संतों का अध्ययन करते हुए जाना। यह जीवन क्या है? यह दुनिया क्या है? मुझे आज अपनी सोच पर बहुत ग्लानि होती है। उनके सानिध्य से आज हमारा भरा-पूरा परिवार है। इसके बाद मैंने अपने मन, मस्तिष्क, और दिल के द्वार पर दूसरी शादी करने के नाम तक न लेने का संकल्प ले लिया है।

मेरे शादी के पुरजोर विरोध के बाद भी घर के बड़ों के द्वारा मेरी शादी तय कर दी गई थी परंतु शादी तय होने के बाद में घर में तनाव का वातावरण पैदा हो गया था। मुझे घर के लोग अच्छे नहीं लगते थे और घर के लोगों को, मैं अच्छा नहीं लगता था। इस सबके बाद भी आज तक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। मुझमें और मेरे परिवार के लोगों में से कौन गलत? और कौन सही था? इन दोनों में भेद कर पाना कितना दुरूह और कष्टकर लगता है। यहां पर परिस्थिति के अनुसार दोनों गलत और दोनों सही हो सकते हैं। मैं उन्हें तब से लेकर आज तक भले ही गलत कहता रहा हूं और वह लोग तब से लेकर आज तक मुझे गलत कहते रहे हैं परंतु आज मैं अपने जीवन के तमाम द्वंदों के बावजूद अपने परिवार के लोगों को गलत अथवा सही कहने की स्थिति में समर्थ नहीं पाता हूं क्योंकि मेरा जीवन उनके अपने जीवन के हजार अभावों के बावजूद उन्हीं के लाड़, प्यार, दुलार, परवरिश का साक्षी और आज भी जीता-जागता सत्य है।

मेरी शादी होने से मेरा भला-बुरा जो भी हुआ, सो हुआ परंतु मेरे द्वारा मेरी शादी के विरोध करने से लोगों का मनोरंजन बहुत हुआ है। अपने लड़कपन के दिनों में मुझे बहुत समझ नहीं थी, लोगों की चिकनी-चुपड़ी बातों का अर्थ नहीं समझ सकता था। उन दिनों लोगों का तोते की तरह रटा-रटाया एक ही जुमला हुआ करता था। रतन सिंह ने बिना बात लड़के की शादी कर दी है? लड़का अभी पड़ रहा था? वह लोग जान बूझकर मेरे सामने मेरे पिताजी की बुराई किया करते थे और मेरे सामने

घुमा-फिराकर मेरी शादी का जिक्र ले आया करते थे। इससे मुझे उन दिनों बहुत गुस्सा आया करता था परंतु जो काम एक बार हो गया, उसकी बार-बार पुनरावृत्ति क्यों की जाती थी? यह प्रश्न मायने रखता है? परंतु वही लोग मेरे पीछे आपस में बातचीत के दौरान मेरी शादी के किस्से चटकारे के साथ सुना-सुनाकर मजे लिया करते थे।

मैंने अपने जीवन के दुःखों को सदा अकेले ही बर्दास्त किया है। उसमें आज तक कोई शामिल नहीं हुआ है। मैंने एक नहीं सैकड़ों रातें रो-रोकर गुजारी हैं और बहुत सी रातें एक मुट्ठी कच्चे चावल खाकर और पानी पीकर गुजारी हैं। किसी ने कभी मेरी पीठ पर आज तक हाथ नहीं रखा है। मुझे अत्यंत प्रसन्नता है मेरी शादी ने लोगों को इस दुनिया में हंसने का एक अवसर तो प्रदान किया है। मैं इस दुनिया में किसी के हंसने के काम तो आया हूं। आज सन् दो हजार बारह में भी लोग मेरे चमार होने पर हंसते हैं। तब मुझे अत्यंत प्रसन्नता होती है। असल बात हंसने की नहीं है। असल बात किसी का अपमान करके, उसे नीचा दिखने की होती है। इस दुनिया के लोग आज भी किसी शूद्र को प्रगति करते हुए नहीं देख सकते हैं। जब लोग मेरी सोच और निरंतर प्रगति में बराबरी नहीं कर सकते हैं तब वह मेरा अपमान करके अपने दिल की भड़ास निकालने का एक अवसर हाथ से नहीं जाने देते हैं परंतु वह भूल जाते हैं यह अपमान ही तो मुझे शक्ति प्रदान करता है। मुझे जुझारू बनाता है मुझे आगे बढ़ने का हौसला प्रदान करता है। अपने अपमान की ऋणात्मक शक्ति को धनात्मक शक्ति की ऊर्जा में बदलकर दुगुने वेग के साथ मेहनत करके आगे बढ़ता हूं। इसी से मुझे अपनी जीत और अपना लक्ष्य हासिल होता है।

इस बात का मेरी जाति के लोगों को भी ज्ञान नहीं था। यह छोटा सा लड़का आगे पढ़-लिख जाएगा। वह सब लोग उन दिनों मेरी बातों को कोरी बकवास समझा करते थे। यह आज समझा जा सकता है। मैं जब किसी प्रकार विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए पढ़-लिख कर एक मंजिल पर पहुंचने में कामयाब रहा हूं।

14

तेरह वर्ष का एक अबोध बालक और उसकी पत्नी की कल्पना कितनी हरस्यास्पद सी बात लगती है लेकिन यह बात उसी तरह सच है जिस तरह भोर में

सूरज का उगना और उसकी पहली किरण के प्रकाश का फैलना, खुले आकाश में पक्षियों का नील गगन में अपने उजले पंखों से मस्ती में झूलना, बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर मोरों का कैंकों कैंकों की ध्वनि निकालकर अपनी मस्ती में मदमस्त होकर मुकुट धारण किए हुए अपने रंग-बिरंगे पंख फैलाकर नृत्य करना, मोरनियों को नृत्य करके अपनी ओर आकर्षित करना, कोयल का कूकना, पपीहे का पीहू-पीहू की आवाज करके एक बंजारे की तरह विचरण करना, रात में चंद्रमा की धवल, निर्मल चांदनी का बिखरना, उस चांदनी में प्रेमियों को अपने प्रेमी की चाहत का आगाज होना आदि-आदि।

जब मेरी शादी हो ही गई तब मेरी पत्नी का भी होना भी उस ध्रुव तारे की तरह अटल और निश्चित है। हां! मेरी पत्नी श्रीमती उर्मिला देवी से इस दुनिया के सामने मेरी शादी हुई थी। उन दिनों मुझसे अधिक उन्हें व्यवहारिक ज्ञान था। परिवार के रीति-रिवाज, चाल-चलन, खान-पान, चौका-बर्तन, झाड़ू-बुहारी, मान-सम्मान आदि सभी की उन्हें बड़ी परख थी। हम दोनों पति-पत्नी के बीच में सबसे बड़ी मजे की बात यह रही थी। मैं उन्हें कई वर्ष तक नादान बालिका समझता रहा था और वह मुझे नासमझ और उद्दंड बालक ही समझती रहीं थीं।

मेरी शादी होने के कई वर्ष बाद तक हम दोनों पति-पत्नी एक दूसरे से बात नहीं करते थे। मुझे पढ़ने की धुन सवार थी और पत्नी घर के कामकाज में व्यस्त रहा करती थीं। मेरे पास अपनी पढ़ाई के लिए भी एक पैसा नहीं होता था। वे दिन मेरी बड़ी मजबूरी के दिन थे। मेरी पत्नी के चलते घर का कोई सदस्य मुझसे सीधे मुंह बात तक नहीं करता था। मुझे घर से खाने के सिवाय और कोई मदद नहीं मिला करती थी। इसी तरह हमारी शादी को चार वर्ष बीत गये थे। मैं बहुत मजबूर हो गया था। उन दिनों मेरे हाथ में एक नया पैसा न होना और आगे पढ़कर कुछ बनने का सपना पूरा करना बिखरता हुआ नजर आ रहा था। अब मुझे और कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था। दूसरी ओर मुझे अपनी पत्नी से शादी के कई वर्ष बाद तक बात न करके उनके ऊपर अपने द्वारा किए गये अत्याचार का भी दिन-रात एहसास रहा करता था।

मेरी हालत भांग खाए मनुष्य की तरह हो गई थी। उसका एक बड़ा कारण घर में कोई भी व्यक्ति मुझे घर का बड़ा बेटा होने के बाद भी मेरी चिंता नहीं करता था। मेरी हर कोई आलोचना और अवहेलना करता हुआ नजर आता था। इतने बड़े ग़म को अकेले कैसे बर्दास्त कर पाता। मैंने एक रात मजबूर होकर आजीवन

ब्रह्मचारीव्रत का पालन करने के लिए नागा साधु बनने का निर्णय ले लिया था। इस कारण अपने शरीर से उस पुरुष कहलाने वाली इंद्री का त्याग अपने हाथों कर देना चाहता था। इस प्रकार सांसारिक जीवन से हमेशा-हमेशा के लिए नाता टूट जाएगा। इस दशा में न रहेगा बांस और न बजेगी बांसुरी। ऐसा करने के लिए कई कोशिशों के बाद भी सफलता न मिल सकी थी। इस कार्य को सम्पन्न करते हुए मेरा दिल दहल गया था। किसी अंग को काट़ना-पीटना और किसी का वध करना, मेहनत-मजदूरी करने वाले अर्थात श्रम बेचने वालों के बेटे का काम नहीं हो सकता है। संत रविदास के वंशजों ने तो दो हाथ की बदौलत मेहनत मजदूरी करते हुए सादगी से अपना पेट पालना और सच्चाई और ईमानदारी के रास्ते पर चल कर अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए इस मयावी दुनिया से विदा हो जाना सीखा है।

इस प्रकार मैं एक दिन मजबूर होकर टूट गया था। मेरा गुरूर बिखर कर चूर-चूर हो गया था, मरता क्या न करता। इस तरह एक लंबे घने अंधकार के अंतराल के बाद सुनहरी, सुहानी सुबह आई। इस सुनहरी, सुहानी सुबह की खुशबूदार हवा से हमारा घर आंगन महक उठा था। इस तरह हम दोनों पति-पत्नी वर्षों बाद एक हो गये थे। इसके बाद सबसे पहले हमारे घर आंगन की बगिया में पुत्री रत्न के रूप में एक नन्ही सी परी आई थी। पिताजी ने उसका नाम बड़े प्यार से लक्ष्मी रखा था। पिताजी उसके आने से पहले कहा करते थे। हमारे घर में आने के लिए मुझसे एक लड़की पूछ रही है, मैंने उसे अपने घर आने के लिए हामीं भर दी है। लक्ष्मी बड़ी सुंदर और सुशील कन्या थी परंतु चंद साल हमारे घर रहने के बाद हमसे विदा होकर कहीं चली गई। अब हमारे पास बस उसकी चंद यादें ही शेष रह गई हैं। बेटी लक्ष्मी के जाने के बाद सबसे पहले हमारे घर में पहले पुत्र धीरेंद्र कुमार का आगमन हुआ। उनके दो वर्ष के बाद दूसरे पुत्र के रूप में धीरज कुमार घर में आये थे। इसके बाद एक-दो वर्षों के अंतराल पर हमारे घर के आंगन की बगिया में पुत्र जितेंद्र कुमार और पुत्र सुनील कुमार को मिलाकर कुल चार पुत्र रत्नों का आगमन हुआ। आज मुझे दुःख है मेरे घर एक बेटी नहीं है। आज के युग में मेरे विचार से भारत के प्रत्येक घर में एक बेटी का होना बहुत जरूरी है। इस तरह से हम इस दुनिया को उजड़ने से बचा सकेंगे। दूसरी बात पुत्री अपने माता-पिता से सच का प्यार करती है। वह उनके बीमार होने पर पूरे मनोयोग से उनकी तीमारदारी भी करती है उनके लिए रोती-बिलखती और तड़पती भी है। वह रोती भी है तो सच के आंसुओं से रोती है। उसके मन में दिखावा बिलकुल नहीं होता है।

भारत में आज जनसंख्या का दबाब बहुत बढ़ता जा रहा है परंतु फिर भी कोई भी आने वाली केंद्र सरकार इस जनसंख्या के भूत से टकराने का जोखिम नहीं उठाना चाहती है क्योंकि 1977 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार का इसी जनसंख्या वाले भूत से टकराने के बाद सूपड़ा साफ और हाजिरी माफ हो गई थी। आज भारत सरकार कुछ भी दुःख सह सकती है कुछ भी कर सकती है परंतु जनसंख्या वाले भूत से किसी भी कीमत पर टकराने की जुर्रत नहीं कर सकती है। इसका परिणाम आज तक भारतीय जनता भले भुगत रही है। आज तक देश में कुटीर उद्योग के प्रचार-प्रसार और बढ़ावा देने वाली योजनाएं भले ही फाइलों में धूल के बोझ तले दबी पड़ी हो परंतु चीन गणराज्य की तरह स्पष्ट रूप में आम जनता के उत्थान के लिए किसी के पास समय नहीं है। आज समाज में व्याप्त छुआ-छूत, ऊंच-नीच की अपमानजनक स्थिति के साथ-साथ सरकार की भेदभाव पूर्ण नीतियों के चलते समाज का पूर्ण विकास नहीं हो पा रहा है इसलिए समाज में गैर बराबरी के खिलाफ धावा बोलने के साथ-साथ सरकार पर भी हल्ला बोलना आवश्यक प्रतीत होता है।

15

मुझे कक्षा आठ पास करके कक्षा नौ में पढ़ने के लिए जाना था। उन दिनों कक्षा आठ बोर्ड की परीक्षा हुआ करती थी। जब कक्षा आठ का परीक्षा परिणाम निकला उसमें मुझे बहुत अच्छे नंबर प्राप्त हुए थे। तब मेरी इच्छा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के मिंटो सर्किल हाईस्कूल में प्रवेश लेने की हुई थी हालांकि उन दिनों उस स्कूल में मुझे पढ़ाना मेरे परिवार की पहुंच से बाहर की बात थी। मैं फिर भी किसी से साइकिल मांग कर अलीगढ़ फार्म लेने के लिए गया था। मिंटो सर्किल स्कूल में पहुंचने पर ज्ञात हुआ। वहां प्रवेश लेने के लिए फार्म कई महीने पहले ही भरे जा चुके हैं और मैं जुलाई में कक्षा आठ पास होने पर फार्म लेने के लिए गया था। मुझे स्कूल प्रशासन के लोगों ने बहुत स्पष्ट शब्दों में बताया था। अब आप किसी भी सूरत में अपना दाखिला मिंटो सर्किल हाईस्कूल में नहीं करवा सकेंगे।

मुझे अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी और उसके अंतर्गत चलने वाले मिंटो सर्किल स्कूल की जानकारी जवां मिडिल स्कूल में पढ़ते हुए हुई थी। उन दिनों हमारे माध्यमिक स्कूल के पास ही ए.एम.यू. मेडिकल कॉलेज का एक रिसर्च सेंटर खुला

था। उस अनुसंधान कम उपचार केंद्र में सभी मरीजों की जांच के बाद मुफ्त में दवा दी जाती थी। हम लोग भी वहां पर मुफ्त में दवा मिलने पर, दवा लेने के लिए चले जाया करते थे। इसी तरह खाने की छुट्टी में लगभग प्रतिदिन जाते थे। वहां के सुरक्षा गार्डों से धीरे-धीरे जान-पहचान सी हो गई थी। उस केंद्र के एक कर्मचारी ने मेरी कई नए छात्र-डॉक्टरों से जान-पहचान करवा दी थी। उन डॉक्टर लोगों ने मुझे अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी और उसके अंतर्गत चलने वाले मिंटो सर्किल हाईस्कूल की जानकारी दी थी। यह जानकारी मुझे कक्षा छह में पढ़ते हुए हुई। तब ही से मेरा मन मिंटो सर्किल हाईस्कूल में पढ़ने के लिए मचलने लगा था। इसके बाद मेरी इच्छा पढ़-लिखकर कुछ बनने की होने लगी थी। यह मुझे उन दिनों दिवास्वप्न से अधिक नहीं लग रहा था।

इसका मुख्य कारण एक तो मैं पढ़ने में बहुत होशियार नहीं था। दूसरे मेरी मुफलिसी भी आगे न पढ़ने में रुकावट का बड़ा कारण लग रही थी। इसके बाद मुझे गांव में एक रिश्ते के भाई साहब ने बताया था। वहां पर सब अमीर नवाबों के लड़के पढ़ने के लिए जाते हैं। यह सुनते ही मेरे होश फाख्ता हो गये थे।

मैंने अपने आप से कहा! उमेश तुम्हारी औकात वहां पढ़ने की नहीं है। तुम्हारे चाचा वहां का खर्च भी नहीं उठा पाएंगे। वहां अच्छे कपड़े पहने जाते हैं। यह तुम्हारे घुटन्ना, पजम्मा और प्रतिदिन नंगे पांव ठिठुरते हुए स्कूल आना। रास्ते में कई जगह ईख की पताई, धान के पुआल और डेंचा के झोर के जलावन से आग जलाकर उसकी ताप से अपने शरीर को गरम करना। यह सब वहां पर नहीं चलने वाला है। यहां तुम्हारे घर में खाने के लाले पड़े हैं और ख्वाब महलों के देख रहे हो।

कहां राजा भोज और कहां तुम गंगू तेली। यह कहावत उन दिनों बहुत चला करती थी। सभी बच्चे तेली की कहावत को रोज गा-गाकर सुनाते थे। कभी रास्ते में तेली मिल गया, तब बच्चे उसका जीना हराम कर देते थे। तेली, तेल काहे कौ, सरसों कौ, तेली मरि गयौ परसौ कौ। उन दिनों अधिकतर तेली, तेल बेचने वाले लोग हुआ करते थे। जो गांव-गांव जाकर कड़ुआ तेल सरसों के बदले या अनाज के बदले दिया करते थे। उस दौर में धन का बहुत अभाव रहा करता था। सब लोग बाजार हाट नहीं जा सकते थे इस कारण सभी लोग गांव में ही अनाज के बदले अथवा उधार ही खाने-पीने का सामान और बर्तन-भांडे बेचने वाले व्यापारियों से खरीद लिया करते थे। इस तरह के हालात मेरे घर के ही नहीं थे बल्कि गांव के लगभग सभी बच्चों के घरों की हालत एक जैसे ही थी।

जब मन के मुताबिक स्कूल में प्रवेश के रास्ते बंद होते नजर आने लगे तब हारकर, अपना मन मारकर ग्राम शिक्षा समिति इंटर कॉलेज में प्रवेश लिया। विद्यालय गांव से चार-पांच कोस दूर था। यह विद्यालय नहर के पास में उससे सटा हुआ था। विद्यालय के बाग में बुधवार और शनिवार को हाट, पैंठ लगा करती थी। यहां का माहौल जवां के मिडिल स्कूल से थोड़ा अलग तरह का था। यहां बारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई होती थी। जब मैंने कक्षा नौ में प्रवेश लिया था। तब कक्षा नौ के चार सेक्शन हुआ करते थे, प्रत्येक सेक्शन में पचास छात्रों का पंजीकरण हुआ था। मेरा सेक्शन सी सेक्शन था। इस कक्षा के कक्षा अध्यापक श्री मिश्रीलाल जी थे।

मास्टर मिश्रीलाल मिश्री की तरह मीठे बिलकुल भी नहीं थे। वह नीम चढ़े करेले की तरह ही नहीं बल्कि फरफेंदुआ की तरह एकदम कड़ुवे भी थे। फरफेंदुआ की बेल पर पचासों फल लगते हैं। उसके पके हुए फलों का रंग बड़ा मनमोहक और अपनी ओर आकर्षित करने वाला होते हैं उन फलों को कोई आदमी क्या जानवर भी कड़वे होने के कारण नहीं खा सकता है उस फल की एक विशेषता होती है। उसमें बड़े औषधीय गुण समाए हुए होते हैं। वह अपने अंदर भयंकर बीमारियों को ठीक करने की क्षमता रखता है। फरफेंदुआ की जड़ को पीसकर उसे मिश्री अथवा खांड के साथ मिलाकर दवाई ली जाती है परंतु वे मात्र कड़वे ही थे, शायद इसीलिए उनके माता-पिताजी ने उनका नाम मिश्रीलाल रख दिया था। मिश्री से उनका स्वभाव भले नहीं मिलता था। मास्टर मिश्रीलाल कड़वे स्वभाव के बड़े ईमानदार व्यक्ति थे। काश! भारत-भर के मास्टर उनके जैसे स्वभाव के समान ईमानदार हो जाएं तब भारत को दुनिया में सर्वश्रेष्ठ होने से कौन रोक सकेगा।

मास्टर मिश्रीलाल कृष्ण वर्णीय भादों की काली रात की तरह एकदम काले थे। श्रीकृष्ण का जन्म भादों की काली रात में हुआ था। चाणक्य के शरीर के रंग के बारे में जैसा वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। वह एकदम पके हुए जैतून के काले फल की तरह के भुन्न काले व्यक्ति थे। इस काले रंग के होने में उनका कोई कसूर नहीं था। ऐसा रंग उन्हें उनके कुम्हार की देन थी, जिसने उन्हें बनाया था परंतु मास्टर मिश्रीलाल बड़े कड़क स्वभाव के व्यक्ति थे। किसी से दबते नहीं थे। वे नियमित, समय से और नियमानुसार अपने सभी काम किया करते थे। गरीब, अमीर उनकी नजर में सब समान थे। उन्होंने कभी नकल करते हुए किसी को पकड़ा लिया। वह उन्होंने कभी नहीं छोड़ा, फिर वह चाहे प्रिंसिपल का बेटा ही क्यों न हो। उनके ऊपर किसी भी खलीफा की गीदड भभकियों का कभी कोई असर नहीं हुआ करता था।

उन्होंने एक बार जो भी कर दिया। बस कर दिया। उसे भगवान भी नहीं बदलवा सकता था।

मास्टर मिश्रीलाल मेरी जाति के बारे में भी खूब अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने फिर भी मुझे अपनी कक्षा का मॉनिटर बनाया था। उन दिनों एक दलित बच्चे के लिए कक्षा का मॉनिटर बनना बहुत बड़ा सम्मान था। इस सम्मान को पाकर मुझे कभी गर्व नहीं हुआ बल्कि अपनी जिम्मेदारी का सदैव दुगुना एहसास रहा करता था। एक गरीब बालक को जो कुछ मिल गया है वह उसे कभी खोना नहीं चाहता है क्योंकि उसे खो देने के बाद उसके पास अपनी गरीबी ही बचाती है जिसे वह कभी नहीं चाहता है।

मास्टर मिश्रीलाल अलीगढ़ के नजदीक के किसी गांव के रहने वाले थे। वे प्रतिदिन अपनी उन्हीं की तरह पुरानी साइकिल से बिना नागा के विद्यालय आया करते थे। मास्साब प्रतिदिन हल्की आसमानी नीले रंग की आधी बांहों की बुशर्ट और काले पेंट की यूनिफार्म को पहनकर आया करते थे। मैंने अपनी उम्र के बढ़ने के साथ-साथ प्रतिवर्ष, मौसमों के मिजाजों को बदलते हुए अनेक बार देखा था। वर्षा ऋतु में भयंकर बारिश और बाढ़ से नष्ट फसलें, तहस-नहस जीवन देखा, शरद ऋतु में भयंकर ओलों की बरसात की शीत लहर से जाड़े में अनेक स्त्री-पुरुषों और पशु-पक्षियों को ठिठुरते हुए देखा। ग्रीष्म ऋतु में तपती हुई जमीन और गर्मी से व्याकुल प्राणियों के जीवन को देखा। दुनिया मौसमों के साथ बदलती रही परंतु मैंने मिश्रीलाल मास्टर जी की काली पतलून और आधी बांह की बुशर्ट का रंग बदलते हुए कभी नहीं देखा। उनके पास न कभी छतरी, न कभी ऊनी स्वेटर अथवा ऊनी स्वेटर देखी। वे बड़े चरित्रवान और साहसी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे।

मैंने उस विद्यालय से दसवीं तक की पढ़ाई की थी। गांव से प्रतिदिन पैदल ही पढ़ने के लिए आया करता था। मेरे पास अच्छे कपड़े भी नहीं हुआ करते थे। स्वेटर की बात ही छोड़ दीजिये। जब सर्दी अधिक पड़ती थी। तब में ठंड से बचने के लिए अपनी नई कमीज के नीचे दूसरी फटी हुई कमीज पहन लिया करता था। उसको दिखने से बचाने के लिए उसे अपने पाजामे में नाड़े के साथ बांध लिया करता था। मेरे पास हमेशा एक मलेछिया की कमीज और एक पटा का पाजामा ही हुआ करता था। उसे ही पूरे सप्ताह भर पहना करता था। जब मेरे कपड़े गंदे हो जाते थे। तब उन्हें हर इतवार को रेह से धो लिया करता था। उस दिन, दिनभर धूप में बैठकर अथवा फटे-पुराने कपड़े पहन कर समय काट लिया करता था। मैं सोमवार को फिर

से उन्हीं कपड़ों को पहनकर पढ़ने जाया करता था। इस बात को मेरी कक्षा के सभी विद्यार्थी जानते थे। मास्टर मिश्रीलाल भी इस बात को बखूबी जानते थे।

मास्टर मिश्रीलाल से पूरे स्कूल के विद्यार्थी और शिक्षक कोई भी उनसे खुश नहीं रहता था। सब उन्हें टेढ़ी-टेढ़ी निगाह से देखा करते थे। उनके साथ अधिकतर लोग अछूत की तरह व्यवहार किया करते थे। वह कला के ईमानदार शिक्षक थे। एक कलाकार किसी का नौकर कैसे हो सकता है। वह तो खुले आसमान में स्वछंद विचरण करता है। कला और कलाकार को कौन बांध पाया है। वह नीले गगन में कलाबाजियां करता है। उस पर उसके मन का नियंत्रण होता है लेकिन आजकल और उस दौर में भी ईमानदारी की क्या कीमत थी। सब ओर झूठ का बोलवाला था परंतु अनेकों लाला आलोपीदीन बेईमानी और काले धंधे करने के बावजूद उस नमक के ईमानदार दारोगा को तलाशते फिरते हैं और हमेशा तलाशते फिरते रहेंगे! ईमानदारी की कीमत दुनिया में कभी कम न होगी। इस खट्टी-मीठी दुनिया के मेले कभी कम न होंगे। अफसोस कभी हम न होंगे परंतु आज का सच यह है कि सब बेइमानों के साथ मिलकर वे बेइमानी करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

16

जब मैंने कॉलेज में कक्षा नौ में प्रवेश लिया था। उस समय विद्यालय में मेरा एक भी मित्र नहीं हुआ करता था। मेरे गांव के ठाकुरों, गुसाईयों, और ब्राह्मणों के लड़के अवश्य थे। उन्हें मित्र, साथी, गांव के सवर्ण साथी और बिगड़े रईस कुछ भी समझा जा सकता है। मैं उनकी भाषा में, उनके लिए एक अछूत शूद्र चमार का लड़का ही था। उनके मनोरंजन का साधन था और अपमान करने का जरिया था। अपने मुहल्ले से अकेला नवीं कक्षा में पढ़ने वाला था। मेरे गांव से मेरा न कोई मित्र, न कोई अन्य साथी था। मेरी उनसे कभी नहीं बनती थी। इसका एक सबसे मुख्य कारण जाति के आधार पर उनका बड़ा बनना था।

जब मेरे गांव के सवर्ण संगी साथी किसी क्षेत्र में हारते हुए दिखते थे। तब वह सभी लड़के अपनी ऊंची जाति का सहारा ले लिया करते थे। इसका मतलब स्पष्ट था, मुझे हर हालत में हारना ही था। जब हारना ही है, तब उनसे क्यों डरना। वह हमें खाना, रोटी-कपड़ा कुछ भी तो नहीं देते हैं, हम अपनी मेहनत के बल पर जीते हैं। तब उनसे किस बात में छोटे हैं। मैंने अपने मन में तय कर लिया था,

वह मुझे चाहे खूब मारें परंतु मैं उनसे किसी हालत में झुकने वाला नहीं हूं। उनसे मेरी बहुत सी लड़ाईयां हुई। वह मुझमें सब मिलकर दो मारते, तब इसके प्रति उत्तर में उन सवर्ण लड़कों में एक अवश्य मार देता था। यह मेरा अपना सिद्धान्त था। मैंने किसी के सिद्धान्त की चोरी नहीं की थी। मैंने अपने अनुभव और अपनी परिस्थितियों के अनुसार इसका निर्माण किया था।

हमारी बस्ती में पढ़ने-लिखने का वातावरण बिलकुल नहीं था। सब तरफ गरीबी, बेकारी, बेबसी, और लाचारी ही दिखायी देती थी। लोग पूरे-पूरे दिन बरसात के दिनों में आल्हा सुनते रहते थे। हुक्का पीते रहते थे। जाड़ों के दिनों में शाम में अलाव पर देर रात तक बात-चीत करके व्यतीत करते थे। दिन में ताश, जुआ खेलने में व्यस्त रहते थे। हम लोगों के गांव में घर भी छोटे-छोटे हुआ करते हैं। घर में बस खाना खाने के लिए जाते थे। उसके बाद तुरंत बाहर आ जाते थे।

यह मुझे बहुत छोटी उम्र में ही मालूम हो गया था। आदमी की क्या औकात होती है अगर आदमी के अंदर का डर समाप्त हो जाए। तब उसके आगे कुछ बचता ही नहीं है। डर के आगे उसकी जीत होती है। मनुष्य वीर पुरुष पैदा होता है। वह संसार के मोह-जाल में फंसकर कायर बन जाता है। इस संसार में आकर यहां के दूषित वातावरण और पदार्थों से दूषित हो जाता है। मनुष्य सदैव जीतने के लिए पैदा होता है। वह हारने के लिए इस दुनिया में नहीं आया है। आदमी इस दुनिया में जो चाहे मुकाम हासिल कर सकता है लेकिन उसे जिस लक्ष्य को प्राप्त करना होता है। उसको प्राप्त करने की पहल उसे स्वयं करनी पड़ती है। उसे अपने लक्ष्य की ओर धीरे-धीरे कछुआ की मंद-मंद गति से बढ़ना जरूरी होता है।

इस दुनिया में जिस जाति और कौम ने मारना सीख लिया। वह कौम सदा के लिए अमर हो गई है। हम सब मार दिये जाएंगे। हमारा वंश नष्ट हो जाएगा। इस तरह की सोच की बुनियाद कच्ची और गलत तरीके से रखी होती है। मेरा दावा है, अब तक कोई माई का लाल न सभी को कभी कोई मार सका है और न कभी कोई मार सकेगा। इस दुनिया का इतिहास उठाकर देख लीजिये, आज तक दुनिया में कभी कोई कौम, जाति समूल नष्ट नहीं हुई है।

भारत में कभी महाभारत का युद्ध हुआ था। उसमें अठारह अक्षोहिणी सेना कौरवों की थी और सात अक्षोहिणी सेना पांडवों की थी। अठारह दिनों तक भयंकर युद्ध हुआ। उसमें सब मर खप गए। अंत में पांच पांडव बचे थे। वह भी हिमालय में गल गए थे। लेकिन आज भी दुनिया है। भारत में आज एक सौ चालीस करोड़

से भी अधिक जनसंख्या है। दूसरा उदाहरण इतिहास पुरुष ऋषि परशुराम ने अपने फरसे अथवा कुठार से इस धरती पर से अठारह बार क्षत्रियों का वध किया था। आज भी इस धरती पर क्षत्रिय लोग जीवित हैं। वह और उनकी कौम कहां नष्ट हुयी। हिटलर ने अपने कैंपों में बड़ी संख्या में ज्यूज का बध किया था। ज्यूज कौम आज भी जीवित है लेकिन हर कौम को बलिदान देना होता है तब ही कोई कौम सम्मान के साथ जीवित रह सकती है।

इस दुनिया के बहुत लोग कहते हैं डंडे की मार के आगे बड़े-बड़े भूत भी भाग जाते हैं। यह सच भी लगता है और झूठ भी। सच इसलिए जब पुलिस किसी अपराधी में मार लगाती है और थर्ड डिग्री का प्रयोग करती है। तब वह व्यक्ति तोते की तरह बोलने लगता है। उसने जो अपराध नहीं किये हैं। उनको भी अपना अपराध होना कबूल कर लेता है। और झूठ इसलिए कुछ लोग मरते मर जाते हैं परंतु अपना मुंह नहीं खोलते हैं। इस संबंध में मैंने एक जासूस की आत्मकथा पढ़ी है। उसमें यातना के जो तरीके उस जासूस के साथ प्रयोग किए गए थे। उस जासूस पर प्रयोग किये गये उन तरीकों को पुस्तक में पढ़कर ही कमजोर दिल वाले का दिल जोर-जोर से धड़कने लगेगा। संभव है उसे हार्ट अटैक भी हो जाय परंतु उस जाबांज जासूस सिपाही ने कभी अपनी जबान नहीं खोली थी।

किसी भी व्यक्ति को चार लोग मिलकर कभी भी मार सकते हैं परंतु किसी की पिटाई करने के लिए चार लोगों को पहले सलाह करनी होती है। उसमें कुछ तो समय लगता ही होगा। मुझे किसी पर हाथ उठाने के लिए किसी सलाह मशविरा की जरूरत नहीं होती थी। न किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता होती थी। मेरे विद्यालय में अपनी कक्षा के लड़कों से झगड़े बहुत हुए, सब झगड़े जाति पर आकर समाप्त हो जाते थे। जब लड़के हारते दिखते, तब वह अपनी सवर्ण जाति के सहारे सब मिलकर मुझे मारते थे। मुझे मारते हुए कहते जाते थे, मार सारे चमरुआ के को।

मैं अपने विरोधियों से कभी जीता नहीं था, लेकिन उनके दांत खट्टे जरूर कर देता था। जिसको भी मेरा हाथ एक बार लग जाता था। वह उठने के काबिल नहीं रहता था। वे सभी मेरी भी बहुत धुनाई करते थे। मुझे कभी मार लगने का गम नहीं रहता था लेकिन मेरे कपड़े फट जाते थे। यह मेरे लिए बड़े दुःख की बात होती थी। कपड़े फटने पर घर में पिटाई अलग होती थी। मुझे उन कपड़ों को सी-कर ही काम चलाना होता था। उन दिनों पहले कपड़े पूरी तरह फट जाने पर बड़ी मुश्किल से नए कपड़े बन पाते थे। यह बात उन सवर्ण बच्चों को समझ में नहीं आती थी। मुझे यह आज तक मालूम नहीं है, मैं उन दिनों बात-बात पर क्यों भिड़ने के लिए

तैयार रहता था। उन दिनों मुझ पर आल्हा सुनने का भी बड़ा असर हो गया था। आल्हा की एक लाइन यह थी। जो मुझे हमेशा प्रेरित करती रहती थी।

"बारह बरस तक कुत्ता जीवे, सोलह बरस तक जीवे सियार, बरस अठारह क्षत्री जीवे, आगे जीवन को है धिक्कार।"

मैं अपने को जाटव कहता था परंतु गांव के लोग हम लोगों को चमार ही कहते थे। हमें इस बात का क्षणमात्र भी रंज नहीं था परंतु हम बस्ती के लड़कों ने अपने उपनाम रख लिए थे। जैसे पुटटकना ठाकुर, और हड्डफोर ठाकुर आदि। अब आपको चमारों के पुटटकना ठाकुरों की बारीकियों के बारे में बता दिया जाए। इससे आपको स्थिति को समझने में आसानी होगी। यह लोग वे ठाकुर थे, जिनके पास कच्ची मिट्टी के पीढ़ी दर पीढ़ी घर ही नहीं मिट्टी और सिल्वर के ही बर्तन हुआ करते थे। इनके बाप-दादाओं ने पीढ़ी दर पीढ़ी पहले गांव के मरे हुए जानवरों को उठाने का काम किया था और उन्होंने उन मरे हुए जानवरों के मांस का सेवन भी किया था। उनके पास दो मोटे-मोटे बांस हुआ करते थे। अब बांस तो नहीं हैं लेकिन उनके सभी हथियार अभी भी घर में रखे हुए हैं। इन हथियारों में रांपी सुतारी और धार देने वाला पत्थर चांदनी हुआ करता था। गांव भर के मरे जानवर उठाने वाले हमारे दादा-परदादा ने जरूरत पड़ने पर इन्हीं बांसों से गांव के कुछ सवर्णों की धुनाई का काम भी किया था। वैसे रुई धुनने के लिए गांव में धुनना जाति के लोग थे। उनका काम कभी-कभी चमार अपने हाथ में ले लेते थे। इस तरह के वाकया गांव में एक-दो अवसर ही घटे थे। इस हवन में जिन-जिन घरों के लोगों ने आहुति दी थी। उन लोगों को ही चमार उर्फ पुटटकाना ठाकुरों के नाम से जाना जाता था।

हम अपनी बस्ती के कुछ चमारों को हड्डफोर ठाकुर कहा करते थे,जिन लोगों को बिना मीट के खाना अच्छा नहीं लगता था। उनके खाने में मीट और हड्डी जरूरी थी। एक प्रकार से सदियों से खाने में मांस दलितों का प्रिय भोजन रहा है। गरीबों के घर प्रतिदिन मांस के लिए पैसे जुटाना बहुत मुश्किल ही नहीं असंभव सा प्रतीत होता था। इसका एक विकल्प पोखर की मछलियों को पकड़कर निकाला जाता था। इसका दूसरा विकल्प सेंट्रल डेरी फार्म के कट्टी खाने से हड्डी और मांस सस्ते दामों में लेकर चलाया जाता था। चमारों के जिन घरों में मांस का नियमित अथवा माह में दो-चार बार प्रयोग होता था। उन घरों के लोगों को हड्डफोर ठाकुर कहा जाता था। यह नई दुनिया के दलित युवाओं द्वारा गढ़े गये नए प्रतिमान थे।

मुझे एक वाकया याद आ रहा है? मेरे पिताजी के मामाजी को हम सब बच्चे भी मामा ही कहकर बुलाया करते थे। वह बड़े खुद्दार किस्म के आदमी थे, इसलिए

किसी छोटी सी बात पर अपना गांव छोड़कर हमारे गांव में आकर बस गये थे। वह अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन बड़े से बड़ा हिसाब उंगलियों पर लगा दिया करते थे। गांव के पढ़े-लिखे लोग उनका मुंह ताकते रह जाते थे। वह उनसे कहा करते थे। क्या तुम स्कूल के पीछे पढ़ते हो? वह अकसर वास्तविक जिंदगी में घटी घटनाओं के किस्से सुनाया करते थे। यह मेरे जीवन काल की एक सच घटना है एक चमार को टीका-टीक दोपहरी में एक पंडित जी अपनी पत्रा लेकर आते हुए दिखाई दिये। उसने पंडित जी को पास आते ही कहा! पंडित जी पाय लागू। पंडित जी ने सुखी रहो का आशीर्वाद दिया।

उसने फिर कहा, पंडित जी आप गांव जा रहे हैं। एक बहुत जरूरी बात घर पर नाती से कहनी है। पंडित जी ने सीधे स्वभाव में कहा! कहो? भग्गा चमार ने उनसे कहा! आप इस कविता को अपने कागज पर लिख लो, नहीं तो रास्ते में भूल जाओगे। पंडित जी ने उस कविता को अपने कागज पर लिख लिया।

चमकनी, चांदनी और डोरिया मगायो है,
जाय रेकनी को पेंकना, पोखरिया पै पायौ है,
नाती ते कै दइयौ आज तू बाबा नै बुलायौ है।

पंडित जी ने उसकी कविता अपने कागज पर लिख तो लीं, परंतु इस कविता की पंक्तियों के गूढ़ अर्थ को समझ न सके। वह संकोच वश सोचकर चुप रह गये, कहीं गांव का चमार उन्हें निपट पोंगा पंडित ही न समझ बैठे।

पंडित जी ने चमारों के मुहल्ले से भग्गा चमार के नाती को किसी से बुलवाकर उसके बाबा के द्वारा भेजी गई कविता सुना दी। पंडित जी की कविता सुनते ही नाती ने कहा! मैं समझ गया। पंडित जी।

पंडित जी ने अपने मन में सोचा! मैं कितना मूर्ख हूं, निपट गंवार हूं, सच में पोंगा पंडित ही हूं, जो इस कविता के अर्थ को भी नहीं समझ सका। यह छोटा सा बालक कविता सुनते ही समझ गया।

संध्या वेला में पंडित जी संकोच त्यागकर भग्गा के घर आए। उन्होंने भग्गा से पूछा! भैया मुझे उस कविता का अर्थ समझ में नहीं आया और तुम्हारा नाती कविता सुनते ही समझ गया। उस कविता का भेद मुझे बता दे?

तब भग्गा ने कहा! पंडित जी, मुझे दिन में एक लहवारा दूर पोखर पर पड़ा मिला था। उसकी खबर मुझे हर हालत में घर पहुंचानी थी। मैं जानता था। आपसे सच बात गद्य में कह दूं, तब आप किसी भी हालत में मेरी खबर मेरे घर नहीं

पहुंचाएंगे। तब मैंने आपसे उसी बात को कविता में कहा था। आपने मेरी बात मानकर, वह कविता मेरे घर में नाती को सुना दी थी। मेरा नाती जानवर की खाल उतारने का सामान लेकर मेरे पास समय से पहुंच गया था। आपका बहुत-बहुत धेन्यवाद।

यह घटना हमें सीखा देती है। किसी भी समस्या का निदान मस्तिष्क का भरपूर प्रयोग करके किया जा सकता है और इस तरह अपनी किसी छोटी-मोटी समस्या से दो-दो हाथ किये जा सकते हैं। आज के युग में कभी भी, संवाद द्वारा किसी भी समस्या के निदान की संभावना बन सकती है लेकिन इसके लिए शक्ति का संतुलन होना आवश्यक होता है अर्थात इसके लिए बराबर का होना प्रथम आवश्यकता होती है लेकिन उसके लिए यह बिलकुल जरूरी नहीं है, कोई धन में बड़ा है, उसके लिए धन में ही बड़ा होना चाहिए बल्कि यह जरूरी है, कोई धन में बड़ा है, तो कोई संख्या बल की शक्ति में बड़ा है। हम अंधे व्यक्ति को सीधे सीधे काना कहकर संबोधित करेंगे, तब वह हमें कुछ भी नहीं बताएगा। इसी बात को उसके पास जाकर प्यार से पूछेंगे, भाई साहब आपकी आंख कैसे खराब हो गई थी। तब वह आपको अपने जीवन में घटी दुर्घटना के संबंध में विस्तृत रूप से घंटों बताता रहेगा।

अब अपने दोस्तों की बात कर ली जाए। इस नये विद्यालय में मेरे दो दोस्त बने थे। एक राजेश कुमार तोमर था। वह अपने को जाट कहता था। वह पतला-पतला छरहरा छह फुट से भी अधिक लंबा था। उसके पिताजी किसी जमाने में पुलिस में दारोगा हुआ करते थे। वह अब नहीं थे। उनकी किसी दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। उसकी परवरिश उसके चाचाजी ने की थी। उसके दो भाई और थे। एक भाई बैंक में तथा दूसरा पॉवर हाउस में नौकरी करता था।

मेरा दूसरा दोस्त देवेंद्र कुमार सैनी था। उसके पिता पॉवर हाउस में बड़े ठेकेदार थे। मैंने अपने जीवन में कभी किसी दोस्त से जाति नहीं पूछी है लेकिन किसी भी दोस्त से दोस्ती करने से पहले मैं अपने नवमित्र को अपनी जाति के बारे में अवश्य बता देता था। यही वह खास वजह है जिसके कारण किसी से दोस्ती होने के बाद आज तक उससे कभी भी दोस्ती टूटी नहीं है। मेरे पास कभी कोई साइकिल नहीं थी और न मेरे पास अच्छे कपड़े हुआ करते थे। फिर भी मेरे दो सवर्ण दोस्त बने गए थे। उस दौर में यह मेरे लिए अचरज और गौरव की बात थी। मैं सदैव सच्चाई के रास्ते पर चलता था। कभी किसी मित्र से झूठ नहीं बोलता था। मेरा एकमात्र

अर्जित धन और जीवन की संचित पूंजी मेरी ईमानदारी ही थी, जिसके बल पर मैं सदैव आगे ही बढ़ता रहा हूं।

मैं इन दोनों मित्रों के घर भी जाया करता था। उनके घर में मेरे साथ अच्छा व्यवहार भी किया जाता था। मुझे चाय ही नहीं बल्कि कभी-कभी खाना भी खिलाया जाता था। मुझे देवेन्द्र ने अपनी साइकिल गांव से आने-जाने के लिए दे दी थी ताकि मुझे ट्यूसन पढ़ने के लिए देर न हुआ करे। मैं प्रतिदिन गांव से आकार अपने मित्र देवेन्द्र कुमार सैनी को लेकर मास्टर जी के पास पढ़ने जाया करता था। ठंड के दिनों में मेरे हाथ ठंड से ठिठुर जाते थे। इसके लिए देवेन्द्र ने मुझे अपने पिताजी से लेकर दस्ताने भी दे दिये थे। मेरी उससे बड़ी गाढ़ी दोस्ती हो गयी थी। यह दोस्ती बहुत दिनों तक चलती रही। अब मेरे पास उनका कोई पता नहीं है आज वे कैसे और कहां हैं। यह मेरे मस्तिष्क में आज तक एक प्रश्न बना हुआ है?

मेरे दोनों साथी मुझे अपनी साइकिल पर बैठाकर स्कूल ले जाते थे। इस पर मेरे गांव के पंडित के लड़के ने देवेन्द्र कुमार सैनी और राजेश तोमर दोनों से कहा था। इस चमरा के लड़के को अपनी साइकिल पर बैठकर ले जाते हो। तुम उसे छूते भी रहते हो। यह ऊंची जाति के लड़कों के लिए शोभा नहीं देता है।

मेरे दोनों दोस्तों का पंडित जी के लड़के के लिए एक साथ एक ही जबाब था। तुमने उस चमरा के लड़के को तो देख लिया है परंतु उसका दिल नहीं देखा है। पंडित जी के लड़के ने फिर पलटकर पूछा था? दिल का क्या वह राजा है?

देवेन्द्र सैनी और राजेश तोमर! दोनों ने इस प्रश्न के उत्तर में एक साथ कहा था। उमेश कुमार के सामने राजा कुछ नहीं है उसके सामने राजा क्या हो सकता है। वह तो उससे भी बड़ा है।

इन शब्दों ने मुझे अंदर तक झकजोर कर रख दिया था। मुझे उनके इस उत्तर की स्वप्न में भी आशा नहीं थी। ऐसे अदभुत और निर्मल मन के मित्रों के लिए सहस्रों बार वारी जाता हूं। अहा क्या बात है। रसखान कवि ने कितने अन्तर्मन्न में डूबकर कृष्ण के प्रेम को अनुभव करके लिखा होगा। रसखान कवि तो कृष्ण जी के कंबल और लाठी के ऊपर सम्पूर्ण धरा के राज को न्योछावर (निछावर) करना चाहते थे।

या लकुटी और कांबरिया पर राजति हूं, पुरि कौ तजि डारो।

यह मेरे नहीं, मेरे बारे में मेरे दोस्तों के विचार थे। मैंने इन शब्दों को अपने जीवन में अनेकों बार याद करके जाति-धर्म, ऊंच-नीच, छूत-अछूत के सागर में डूबते-उभरते हुए अनेकों बार संबल बटोरा है। अपनी हिम्मत बांधी है।

17

यह बात उस दौर की है जब 1979 में शहीद आफताब को गोली लगी थी और एक होनहार छात्र असमय में ही शहीद हो गया था। उन दिनों अलीगढ़ में अकसर कर्फ्यू लगा रहता था। विश्वविद्यालय परिसर के हालत ठीक नहीं रहते थे। उस दौर के प्रो. ए.एम. खुसरो यूनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर हुआ करते थे। जब प्रो. खुसरो का कार्यकाल समाप्त हुआ। इसके बाद 1981 में सैयद हामिद साहब को यूनिवर्सिटी का वाइस-चान्सलर बनाकर लाया गया ताकि यूनिवर्सिटी के हालात सुधर जाएं। वह अकादमिशियन नहीं थे बल्कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के आई. ए.एस. अधिकारी थे। उनको अपने जमाने का बड़ा कड़क प्रशासक माना जाता था।

मैंने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में प्रवेश लेने का वर्षों पहले दिवास्वप्न देखा था। आज जब 1981 में उत्तर प्रदेश बोर्ड की हाईस्कूल की परीक्षा का परिणाम आया, तब मुझे अपना सपना साकार होता नजर आने लगा था। अपना भाग्य आजमाने के उद्देश्य से पी.यू.सी. में प्रवेश लेने हेतु प्रवेश फार्म भरने के लिए यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार कार्यालय में गया था। उस समय रजिस्ट्रार कार्यालय एस.एस. हॉल नोर्थ में हुआ करता था। जिसमें सर सैय्यद अहमद खां साहब ने कभी मोहम्डन एंग्लो इंडियन ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की थी। इसी हॉल में मेरे महबूब फिल्म की शूटिंग भी हुई थी। क्या भव्य और आकाश को छूते महरावों वाले दरवाजों की इमारत है। यह पूरी की पूरी लाल पत्थर से बनाई गई इमारत है। उस इमारत को देखते ही मेरी खुशी और आश्चर्य का कोई पारावार नहीं रहा था। मैंने सोचा काश! इस यूनिवर्सिटी में पढ़ने को मिल जाय, तब तो अपने भाग्य ही खुल जाएंगे।

उस समय यूनिवर्सिटी में प्रवेश फार्म की कीमत नहीं हुआ करती थी। यूनिवर्सिटी में प्रवेश के लिए पूरा का पूरा फार्म अंग्रेजी में छपा हुआ था। उसमें कुल छह पृष्ठ थे। उस फार्म के दो पृष्ठ हल्के हरे और एक पृष्ठ सफेद रंग का था। अंग्रेजी में छपे फार्म को देखकर मेरे चेहरे से हंसी पूरी तरह से गायब हो गई थी। मैं पूरी तरह से गहरी सोच में डूब गया था। यहां पर किसी तरह से प्रवेश हो भी जाता है। तब पढ़ाई कैसे पूरी कर सकूंगा। मुझे फार्म की कुछ लाइनें जैसे-नाम, पिता का नाम, पत्र व्यवहार का पता, स्थायी पता और विषय आदि के अतिरिक्त और बहुत कुछ समझ में नहीं आ पा रहा था।

इस विकट स्थिति को देखकर मुझे एक बार को तो घबराहट होने लगी थी क्योंकि मुझे हिन्दी के अतिरिक्त कुछ नहीं आता था, हालांकि कक्षा छह से दस तक मेरा एक विषय अंग्रेजी रहा था। वह अंग्रेजी भी मैंने हिन्दी की तरह पढ़ी थी जैसे उत्तर प्रदेश के स्कूलों में अंग्रेजी पढ़ाई जाती है। वहां से बहरहाल दो फार्म लेकर अपने घर लौट आया था। दो फार्म इसलिए एक फार्म आर्ट्स फैकल्टी के हिन्दी विषय तथा दूसरा साइन्स विज्ञान विषय में भरने के लिए लिया था। मैंने अपने गांव के लोगों से कुछ पूछ-पूछकर फार्म भरे थे। मुझे फार्म भरने के लिए उन्हें लेकर कई लोगों के पास जाना पड़ा था। गांव के कई लोग मेरी मजाक उड़ा रहे थे। उनके पास कोई काम नहीं होता है उन्हें तो बस कोई मुद्दा मिल जाय, उसी पर बहस करते और अपने तर्क प्रस्तुत करते हुए पूरा दिन गुजार देते हैं। वहां अच्छे लोग मारे-मारे फिरते हैं। इनका एडमीशन कैसे हो जाएगा। इन सब बातों को मैं किसी से कुछ कहे बिना सुनता रहता था। इस प्रकार उन दिनों मैंने लोगों के तमाम तर्कों और कुतर्कों के बीच आंख मींचकर यूनिवर्सिटी में प्रवेश लेने के लिए दो फार्म साइंस और आर्ट्स में भर दिये थे।

उन दिनों मेरे अंदर एक डर समाया हुआ था। वह अंदर ही अंदर मुझे खाये जा रहा था। वहां नवाबों के लड़के और लड़कियां पढ़ती हैं। उनके सामने कैसे अपने आपको टिका पाऊंगा। उनके पास एक से एक अच्छे कपड़े, उनका आलीशान रहन-सहन, खान-पान सब तो अलग होगा। इसके अतिरिक्त उनके नौकर-चाकर भी होंगे। वह राजे-रजवाड़ों के युवराज और होने वाले कल के राजा भोज और मैं निपट गंगू तेली। कहां तक निभा पाऊंगा। कल वहां क्या होगा? मुझे कुछ नहीं मालूम था? इस तरह बिना सिर पैर की बातों को सोच सोचकर दिन-रात सूखता जा रहा था। मेरे मन में एक दिन विचार बिजली की तरह कौंध सा गया क्यों आने वाले कल के लिए अपने आज को खोये जा रहा हूं?

मुझे उन दिनों मुस्लिम यूनिवर्सिटी में प्रवेश फार्म भरते ही लगने लगा था, अब वहां पर मेरा प्रवेश निश्चित रूप से हो जाएगा। अब इसके लिए मेरे पास अच्छे कपड़े होने आवश्यक हैं, अधिक न सही कम से कम एक पेंट और बुशर्ट होनी जरूरी है। यहां तो पाजामा और मलेछिया की कमीज और पुराने धुराने कपड़े पहनकर किसी तरह समय कट जाता था। खैर यह सब बातें सोचने तक ही सीमित रहीं। वास्तविकता कुछ और थी।

मैंने यूनिवर्सिटी के बारे में बहुत सी जानकारियां एकत्र करनी प्रारम्भ कर दी थीं। उन दिनों अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी की परीक्षाएं समय पर नहीं हो पाती थीं।

उसका सबसे मुख्य कारण अलीगढ़ में कर्फ्यू लगा रहता था। यूनिवर्सिटी में कक्षाएं समय पर नहीं चल पातीं थी, इसलिए छात्रों के लिए वर्ष में निर्धारित पाठ्यक्रम समय पर पूरा नहीं हो पाता था। इस प्रकार कक्षाओं में प्रवेश की प्रक्रिया भी देर से पूरी हो पाती थी। वहां के विद्यार्थियों को पढ़ने-लिखने में भी बड़ी स्वतन्त्रता थी। उसके बाद यूनिवर्सिटी में कब परीक्षाएं ली जाएं इस संबंध में भी वहां के विद्यार्थियों की दखलंदाजी रहती थी। इस दृष्टि से वहां पर खुला और प्रजातांत्रिक वातावरण था।

अब मेरे सामने सबसे बड़ी समस्या मुस्लिम यूनिवर्सिटी में प्रवेश प्रक्रिया का प्रारम्भ न होना था, दूसरे वहां पर पीयूसी में प्रवेश होने की निश्चितता नहीं थी। मेरा मन इस बात से भी विचलित था। उस यूनिवर्सिटी में अधिकतर अमीर, नवाबों के बच्चे ही पढ़ते हैं। लोगों ने मुझसे कहा था और मैंने सुना भी था। वहां पर गरीब गुरबा का कोई ठिकाना नहीं है। इस तरह की मन में अनेक शंकाएं और विचार उमड़ते-घुमड़ते रहते थे। क्या करूं? कुछ निर्णय नहीं ले पा रहा था।

दूसरे जी. एस. इंटर कॉलेज में ग्यारवीं कक्षा के लिए प्रवेश प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। एक-एक दिन करके समय निकलता जा रहा था। इस विद्यालय में अधिक विलंब होने पर प्रवेश मिलने में बाधा उत्पन्न हो सकती थी। मैं अपने इस द्वंद के कारण कोई निर्णय ले पाने में असमर्थता महसूस कर रहा था। मेरा मन विचलन और पाशोपेश की स्थिति में था। मुझे विलंब होने के कारण इस विद्यालय में भी प्रवेश न मिल सका और उधर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में भी प्रवेश न मिला। तब मैं उस धोबी की तरह घर का रहूंगा न घाट का। इस द्वंद्व से निकालने के लिए जी. एस. इंटर कॉलेज में प्रवेश लेने में ही मुझे अपनी भलाई लगी। मेरे लिए सब लोग और सब स्थान एक जैसे ही हैं क्योंकि मेरे साथ मेरी जाति के आधार पर अनेक भेदभाव किए जाते रहे हैं। प्रवेश लेने पर पढ़ने से मुझे कोई नहीं रोक सकता है। हां इतना तय है प्रवेश न मिलने पर मुझे मेहनत मजदूरी करने जाना ही होगा। मुझे घर पर बैठाकर कौन खिलाने वाला है। इस प्रकार उस इंटर कॉलेज में ग्यारहवीं कक्षा में प्रवेश लेने के बाद पढ़ने के लिए नियमित जाने लगा था।

जब मैंने हाईस्कूल की पास कर ली थी। तब से ही मैं छोटी-मोटी नौकरी के लिए रेलवे बोर्ड द्वारा विज्ञापित पदों के लिए फार्म भर दिया करता था। उस समय फार्म के साथ सभी प्रमाण-पत्रों को प्रमाणित करवा कर लगाना होता था। अपने प्रमाण-पत्रों को प्रमाणित करवाने के लिए पॉवर हाउस के इंजीनियरों, डॉक्टरों के घरों के चक्कर लगाने के साथ-साथ उनके घर मुझे घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। उसके बाद भी अनेक सवाल-जवाब और पूछताछ करने के बाद ही फार्म प्रमाणित किया

करते थे। मुझे जाति के नाम पर कई बार अपमानित भी किया गया था परंतु वाह री किस्मत उन दिनों में कर भी क्या सकता था?

पंडित लोगों ने ही नहीं मेरी जाति से ऊंची जाति के कई अन्य दूसरे अधिकारियों ने भी उस दिनों मुझे ऊंची आवाज में सुनाकर कहा था! लो अब इन चम...की नौकरी के फार्म भी हमें प्रमाणित करने होंगे। उसके बाद वहां रुकना उचित न जानकर उस दिन वहां से बिना फार्म प्रमाणित करवाए ही लौट आया था। तब मैंने अपने मन में सोचा था! क्या मैं भी कभी किसी के फार्म प्रमाणित करने लायक बन पाऊंगा? इस दर्द को पचास साल तक अपने सीने में छिपाए रहा हूं।

आज जब मेरे पास कोई अपना फार्म प्रमाणित करवाने के लिए आता है तब मुझे अपनी गुरबत के दिन याद आ जाते हैं इसलिए आज किसी भी विद्यार्थी से बिना कुछ पूछे प्रमाण-पत्रों को प्रमाणित कर देता हूं। आज पचास साल के बाद लिखकर इस दर्द को मैंने बेपर्दा कर दिया है। इससे किसी को कष्ट पहुंचे उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूं। दुनिया का कोई भी साहित्य किसी समाज, जाति के लोगों को अपमानित करने के लिए नहीं बल्कि उससे कुछ सीखकर गलतियां सुधारने और प्रेरणा लेने के लिए लिखा जाता है।

वह नवंबर का महीना था। मैं जब अन्य दिनों की तरह स्कूल से पढ़कर तीन बजे के करीब लौटा था। उस दिन जैसे ही घर अपना बस्ता रखा था, ठीक उसी समय मां ने बताया था! बेटा रमेश! यह लो डाकिया तेरी किसी रजिस्ट्री की बात कह रहा था।

मां ने मुझसे कहा! बेटा तू पहले खाना खा ले। बाद में अपनी इस चिट्ठी को पढ़ लेना।

उस दिन पता नहीं क्यों चिट्ठी देखने की बड़ी उत्सुकता थी। मैंने उसे पहले उलट-पलटकर कई बार देखा। उसे पढ़ने की मुझे बड़ी जल्दी थी। अब मेरा सपना साकार होता नजर आ रहा था, फिर भी कुछ कहा नहीं जा सकता था। हाथ-मुंह धोकर, खाने से पहले चिट्ठी को मन ही मन अच्छा होने की कामना करते हुए खोला। वह चिट्ठी अंग्रेजी में थी। उसे स्वयं एक बार पढ़ने का प्रयास किया, फिर दूसरी बार एक-एक शब्द का अर्थ समझते हुए पढ़ा। तब जाकर कुछ-कुछ समझ में आया। मेरा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पीयूसी में प्रवेश हेतु चयन हो गया है। मुझे फिर भी अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो पा रहा था। मैंने उस चिट्ठी को गांव के दूसरे अधिक पढ़े-लिखे लोगों से भी पढ़वाया। तब जाकर मुझे अपने पीयूसी में प्रवेश के लिए चयन होने पर विश्वास हुआ था।

मुझे उस चिट्ठी को लेकर पूरी रात नींद नहीं आई थी। अब क्या होगा? प्रवेश के लिए पैसों के प्रबंध की चिंता अलग सताये जा रही थी। यहां गांव के स्कूल में सब चल जाता है क्योंकि इस विद्यालय में मेरे जैसे बहुत से लड़के पढ़ते थे। इस परिवेश में किसी प्रकार कह-सुनकर दिन कट ही जाते थे। यहां गांव और वहां यूनिवर्सिटी के शहरी परिवेश में जमीन-आसमान का अंतर था। मेरी गरीबी मेरे कदम पीछे को खींच रही थी। मेरा भविष्य मुझे आगे बढ़ने को कह रहा था। इस द्वंद्व में पड़ा-पड़ा न जाने कब तक सोचता रहा, न जाने मुझे कब नींद आ गई थी। इसका मुझे पता ही नहीं चला था। सुबह भोर में मेरे बाबा भजन गा रहे थे। तब जाकर यकायक मेरी निद्रा खुली थी।

यूनिवर्सिटी में सब अमीरजादों के लड़के पढ़ते हैं। उनका अच्छा खाना, कपड़ा, रहन-सहन सब अलग होंगे। उनकी अमीरी का सामना कर पाना मेरे लिए एक बड़ी चुनौतीपूर्ण कार्य था। मेरी सबसे बड़ी चिंता यह थी कि अब मेरी नाव कैसे पार लगेगी। अथवा मध्य में ही डूब जाएगी। यह भविष्य ही निर्धारित कर पाएगा। मुझे उस रात मेरी हालत मुंशी प्रेमचंद की कहानी ईदगाह के मशहूर चरित्र हामिद से भी गई गुजरी लग रही थी। वहां उसके धर्म और जाति बिरादरी के बच्चे और लोग थे। हामिद उनके रीति-रिवाजों से पूरी तरह वाकिफ था परंतु यहां मेरे लिए धर्म, जाति, वर्ग, उनका पहनावा, रहन-सहन, खान-पान सब अलग थे। हम दोनों में एक गरीबी की समानता थी।

मुझे अपनी मंजिल बहुत दूर लग रही थी। क्योंकि वास्तविक जिंदगी का अभ्यास मैच अब शुरू होने वाला था। मैं कभी शहर के स्कूल में पढ़ा भी नहीं था और अब शहर की यूनिवर्सिटी में पढ़ने के लिए जा रहा था अर्थात मैंने कभी क्रिकेट खेली नहीं थी और अब क्रिकेट खेलने के लिए मैदान में उतर रहा था। वह भी एक मात्र अपनी हिम्मत, संकल्प और कुछ कर गुजरने की लालसा, दिल में लिए हुए था। अनेकों व्यवधान भरे अंधेरे अनजान रास्तों पर अपनी नई दुनिया की तलाश में सूरज की पहली किरण के सहारे कदम-कदम आगे बढ़ रहा था।

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में प्रवेश लेते समय मेरे साथ कोई नहीं गया था। मेरे साथ जाता भी कौन? मेरे लिए वहां कौन पढ़ा-लिखा आदमी वेला बैठा हुआ था। मैं उस दिन यूनिवर्सिटी परिसर में घुसते हुए ऊपर से अवश्य संयमित दिख रहा था परंतु अंदर से मुझे कंपकपी सी छूट रही थी। दूसरे मुझे बहुत घबराहट सी हो रही थी। मेरे इस डर का मुख्य कारण यूनिवर्सिटी के लड़कों द्वारा प्रवेश के लिए आए

नए लड़कों की रैगिंग करना था। यह अलग बात है उनका उद्देश्य भले ही रैगिंग करके लड़कों को निर्भीक बनाना होता था। मैं उस दिन किसी तरह पैदल ही पूछते-पूछते सर केनेडी हॉल में प्रवेश लेने वाले स्थान पर, ठीक नौ बजे पहुंच गया था। वहां पर पहले से ही बहुत से लोगों की भीड़ जमा थी। सब अच्छे-अच्छे और नए कपड़े पहने हुए, कोई कार से, कोई मोटर साइकिल से तो कोई रिक्शे से चला आ रहा था। एक-एक लड़के के साथ दो-दो, तीन-तीन आदमी आये हुए थे जो उन्हें फार्म भरने में मदद कर रहे थे।

उस दिन प्रवेश प्रक्रिया दस बजे प्रारम्भ हुई थी। मैंने पहले यूनिवर्सिटी द्वारा भेजा गया प्रवेश हेतु चयन पत्र दिखाकर एडमीशन कार्ड प्राप्त किए थे। इसके बाद उन कार्डों को भरा था। उसमें नाम, पिता का नाम, पत्र व्यवहार के पते आदि के अतिरिक और भी बहुत सी जानकारियां भरवाई गई थीं। उस कार्ड में सब जानकारी अंग्रेजी में लिखनी थी। उस दिन उन छह कार्डों को भरने में मुझे तकरीबन दो घंटे का समय लग गया था क्योंकि मैंने उन कार्डों में कुछ जानकारी स्वयं तथा कुछ लोगों से पूछ-पूछकर के भरी थीं। तब कहीं जाकर मेरे प्रमाण-पत्रों की जांच हो पाई थी। इसके बाद दूसरे दिन जाकर प्रवेश प्रक्रिया पूरी हो पाई थी। मैंने प्रवेश के सब कार्य स्वयं लड़कों के साथ इधर-उधर जाकर पूरे किये थे।

यूनिवर्सिटी के वातावरण ने मेरा मन मोह लिया था। मैं आर्ट्स फैकल्टी की इतनी बड़ी इमारत को देखकर अवाक् रह गया था। यूनिवर्सिटी का इतना बड़ा परिसर, इतनी बड़ी इमारतों में न कभी रहा और न कभी पढ़ा था। मेरा गांव शहर से मीलों दूर में छोटा सा कच्ची मिट्टी का घर, न उसमें बिजली, न उसमें और कोई अन्य आधुनिक सुविधा ही उपलब्ध थी। इस घर की सब बातों को नजरंदाज कर भी दिया जा सकता है परंतु हमारे पास जीवन की सबसे जरूरी चीज भरपूर खाना तक उपलब्ध नहीं था। उन दिनों घर में अनाज नहीं होता था। महीने में दो-तीन बार खरीदकर लाते थे। घर में दो-चार दिन बाद आटा खत्म होता ही नजर आता था। उन दिनों क्या गजब की भूख लगा करती थी। अब खाने की कोई कमी नहीं है परंतु अब एक बार सुबह खाना खाकर शाम तक हजम ही नहीं हो पाता है।

भूखे रहने का मुझे यूनिवर्सिटी के दिनों में बहुत अभ्यास हो गया था। जब यूनिवर्सिटी में पढ़ने के लिए जाया करता था। तब सुबह खाना खाकर शाम तक कुछ भी नहीं खाता था। अपनी कक्षाओं के बाद पूरे दिन यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय में पढ़ता रहता था। मुझे पढ़ने के साथ-साथ वहां पर रहना बहुत अच्छा लगता था।

कितने अच्छे घास के मैदान, खेलने के लिए बहुत बड़ा क्रिकेट मैदान, खुला वातावरण, तरण ताल, लॉन्ग टेनिस, बैडमिंटन, क्या-क्या? आधुनिक सुख-सुविधाएं वहां पर उपलब्ध नहीं थीं।

उन दिनों मेरे पास प्लास्टिक का फोल्डर खरीदने के लिए पैसे नहीं हुआ करते थे। अब मुझे पूरी तरह से ठीक-ठीक ध्यान नहीं है। मैंने एक बार पचास अथवा पिचहत्तर पैसे का एक फोल्डर खरीदा था। वह फोल्डर प्रयोग करते-करते पुराना हो गया था। वह कई जगह से कट-फट भी गया था और कई स्थानों पर चटक भी गया था। मैंने उस पर अपने हिन्दी विभाग के कार्यालय से लेकर पारदर्शी टेप लगा लिया था। वह मैंने सालों प्रयोग किया था। मेरे पास कोई अच्छा थैला नहीं था। इसलिए अपने हाथ में पुस्तकें और रफ कॉपी लेकर जाता था। उन दिनों मेरे हाथ बहुत पसीज जाया करते थे। मेरे हाथों में हर समय पसीना आता रहता था। इससे रजिस्टर का ऊपर का पीला कागज फट जाया करता था।

यूनिवर्सिटी में जिस बात ने सबसे अधिक मेरे अंतरमन को प्रभावित किया था। वह वहां पढ़ने वाले छात्रों की एक दूसरे के प्रति उनकी सम्मान भावना थी। मुझे अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में कई वर्षों तक पढ़ने का अवसर मिला था। इन वर्षों के दौरान कभी भी यूनिवर्सिटी में मुझे मेरी जाति के नाम पर अपमानित नहीं किया गया था। यह देखने में दुनिया भर के लिए कुछ भी न सही परंतु मेरे लिए बहुत बड़ी बात थी। दलित जाति के लोगों और सम्मान का एक तरह का वैर है। दलित लोगों को भारत में सवर्ण हिन्दू शायद सम्मान कभी न दे सकेंगे परंतु यह आज का सत्य है। दुनिया में भारत के मुसलमानों के दिलों में आज भी दलितों के लिए सम्मान भावना विद्यमान है।

मुझे अपने गुजरे दिन बहुत याद हैं जब मेरा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पी.यू.सी. में प्रवेश हो गया था। उन दिनों मुझे सुबह चार बजे उठना पड़ता था। सबसे पहले दैनिक नित्य क्रिया के उपरांत मुझे अपने मुहल्ले के एकमात्र कुएं पर अंधेरे और खुले में बाल्टी से पानी खींचकर स्नान करना होता था। गर्मी के दिनों में तो सब ठीक रहता था परंतु जाड़ों के दिन बड़े कष्टकारी होते थे। उन दिनों मेरे परिवार के लोगों ने मन में बैठा दिया था बिना स्नान किए हुए विद्या नहीं आ सकती है। बस इसी धुन में प्रतिदिन स्नान के बाद ही घर से पढ़ने के लिए निकलता था। कितना ठंडा बर्फ जैसा पानी होता था। शरीर पर एक लोटा पानी डालते ही ऐसा प्रतीत होता था जैसे शरीर के अंग गायब हो गए हैं। नहाने से मेरा पूरा शरीर एकदम

सुन्न हो जाया करता था। तब में खाना खाते समय चूल्हे के सामने बैठ जाया करता था। तब जाकर मेरा शरीर कुछ गरम हो पाता था। उन दिनों बरसात के दिनों में कपड़े सूख नहीं पाते थे। इस कारण मुझे कभी-कभी गीले कपड़े ही पहनकर जाना पड़ता था। घर में पुराना छाता था परंतु उसे लेकर यूनिवर्सिटी नहीं जा सकता था।

गरीबों के तो बस गर्मी के दिन होते हैं। बिना कपड़े और बिना चारपाई के कहीं भी सो सकते हैं। मैंने बड़ी मुसीबत भरे दिन देखे हैं। मेरे पास उन दिनों कपड़े भी बहुत कम हुआ करते थे। आज मुझे उन दिनों की बस याद आने भर से बदन में ठंड की कंपकपी की लहर सी दौड़ जाती है क्या गुरबत के दिन थे, मेरे पास एक जोड़े पेंट और शर्ट ही होते थे। दूसरी जोड़ी कपड़ों के नाम पर मुस्लिम यूनिवर्सिटी की ड्रेस के कारण एक काली शेरवानी और अलीगढ़ी सफेद पाजामा होता था। इस दोनों कपड़ों को तीन-तीन दिन पहना करता था।

घर से सुबह साढ़े पांच बजे पढ़ने के लिए निकला करता था। गांव से तीन किलोमीटर पैदल चलकर बस पकड़ता था। तब जाकर आठ बजे अलीगढ़ पहुंचता था। उन दिनों हमारी कक्षाएं सुबह ठीक आठ बजे प्रारम्भ होकर दोपहर एक बजे समाप्त होती थीं। उसके बाद मौलाना आजाद पुस्तकालय में शाम पांच बजे तक पढ़ता था। इसके बाद शाम की बस पकड़कर अपने गांव अंधेरे में पहुंच पाता था।

जब भी सुबह घर में खाना नहीं बना। उस दिन शाम को ही खाना खाता था। मेरे पास दोपहर में खाना खाने के लिए पैसे ही नहीं होते थे। बड़ी मुश्किल से बस के किराये के पैसों का जुगाड़ हो पाता था। मुस्लिम यूनिवर्सिटी विद्यार्थियों से उन दिनों बस कंडक्टर नाम मात्र का किराया लिया करता था। मुझे सही से याद है मैं किराये के कभी पचास, कभी पिचहत्तर और कभी एक रुपया दिया करता था।

पी. यू. सी. में पढ़ने के दौरान मेरी कक्षा का एक लड़का मुहम्मद लारी भी साथ में पढ़ता था, उसके पिता बिहार सरकार में हथकरघा मिनिस्टर हुआ करते थे। उससे किसी बात को लेकर मेरा झगड़ा हो गया था। उस समय हम लोग भूगोल विभाग में चेन एण्ड टैप सर्वे कर उसकी ड्राइंग बना रहे थे। उस लड़के ने उपकरण लेने की खींचातान में अपना हाथ मेरी ठोढ़ी में मार दिया था। इससे मेरी जीभ कट गई थी। मुंह से बहुत सा खून निकलने लगा था। इस बात को लेकर हम दोनों में हाथा-पाई होने लगी। उस दिन हम दोनों ने काली शेरवानी और टोपी पहनी हुई थीं। तब मेरे मित्र और सहपाठी मलिक एजाज अहमद ने बीच बचाव करते हुए कहा! शेरवानी पहनकर यूनिवर्सिटी में कभी नहीं लड़ा करते हैं। उमेश आप किसी बात

की चिंता मत करो। हम लोग कक्षा के बाद उसे जरूर पीटेंगे। कक्षा समाप्त होने के बाद सभी लड़कों ने मिलकर उस एम.लारी की बहुत पिटाई की थी। उस मार से उसके घुटने छिल गये थे और उनसे खून झलकने लगा था। तब सबने हिसाब बराबर करते हुए उसे छोड़ दिया था। मुस्लिम यूनिवर्सिटी में सभी लड़के मुसलमान थे। वह लोग चाहते तो बीच-बचाव करके मामला निपटा कर छोड़ सकते थे जैसा हिन्दू बाहुल्य क्षेत्रों में हिन्दू लड़के किसी दलित लड़के को मारने-पीटने के बाद करते हैं। लेकिन उन्होंने उस दिन ऐसा नहीं किया था।

मैंने अपनी इन आंखों से अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में कभी हिन्दू-मुस्लिम और छूत-अछूत का भेदभाव वहां पर नहीं देखा है। सभी लड़के मुझे उमेश भाई अस्सलाम वालेकुम करते थे। उसी तरह मैं भी उन्हें वालेकुम अस्सलाम कहकर जबाव देता था। दलितों के पढ़ने के लिए अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से अधिक मुफीद जगह शायद दुनिया में और कहीं नहीं है जहां कम से कम जाति के नाम पर प्रतिदिन अपमानित तो नहीं किया जाता है। यूनिवर्सिटी में पढ़ने के दौरान मेरे पास पैसे नहीं हुआ करते थे। तब अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए मुझे मजबूरन ट्यूशन करने पड़ते थे। उस समय मैंने अपनी पढ़ाई पूरी करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। मुझे प्रत्येक स्थिति में आगे बढ़ना था। इस प्रकार अनेक मुसीबतों का सामना करते हुए आगे बढ़ता गया था।

18

मलिक एजाज अहमद मुस्लिम यूनिवर्सिटी के प्रथम दिनों में बने बहुत से दोस्तों में से एक थे। वह डुमरियागंज के किसी पुराने नवाब खानदान से ताल्लुक रखते थे। वह उन दिनों सर सैयद हॉल नार्थ के कक्ष सं 118 में अपने भाई श्री शहाबुद्दीन मलिक के साथ में रहा करते थे। शाहबुद्दीन मलिक साहब उन दिनों एस. एस. नार्थ हाल में सीनियर हॉल हुआ करते थे। उनके साथ मालिक अबू सईद भी रहा करते थे। यह लोग कभी-कभी चर्चा के दौरान अपने परिवार के बारे में बताया करते थे। इन लोगों के पास बहुत सी जमीनें थीं लेकिन यह लोग कोई भी काम स्वयं अपने हाथों से नहीं किया करते थे। सईद भाई कहते थे मैंने कभी हल नहीं चलाया है। मेरे हल चलाने पर कहीं बैल ने पेशाब कर दिया तब नमाज के कपड़े नापाक हो जाएंगे। इस स्थिति में नमाज कैसे पढ़ पाऊंगा। मैंने इन लोगों को अपने

कक्ष में अकसर भीगे हुए चने का सुबह का नाश्ता करते हुए देखा था। कभी-कभी मठरी पर मक्खन लगाकर उस पर चीनी के दाने डालकर खाते थे। जब कभी इनके पास मासिक खर्च का मनीऑर्डर आ जाया करता था। तब यह लोग शमशाद मार्केट में ब्रेड पकोड़े अथवा आलू के पराठे का नाश्ता भी किया करते थे। यह लोग उन दिनों चाय अधिक पिया करते थे। मुस्लिम यूनिवर्सिटी के छात्र उन दिनों चाय का अधिक सेवन किया करते थे।

यह लोग सुबह अपने बिस्तर से सोकर नहीं उठ पाते थे। मैं तब तक अपने गांव से यूनिवर्सिटी में पहुंच जाया करता था। यह लोग सोने के बहुत बड़े मास्टर हुआ करते थे। मलिक एजाज अहमद शमशाद मार्केट में नसीब होटल में उमराव जान अदा और निकाह फिल्म के गाने सुनते हुए सिगरेट के छल्ले बनाकर उड़ाया करते थे। मलिक एजाज ने मुझे यूनिवर्सिटी में पढ़ाई के दौरान कई बार सिगरेट पिलाई थी परंतु मुझे सिगरेट कभी अच्छी नहीं लगी थी और न कभी सिगरेट पीने का आदी हुआ। उन दिनों मुझे एजाज की एक बात ने बहुत प्रभावित किया था। उसने तथा उसके बड़े भाइयों ने मेरे साथ जाति के आधार पर कभी भेद-भाव नहीं किया था।

मुझे वर्षों इन लोगों के व्यवहार में इनके साथ मिलते-जुलते और उठते-बैठते हुए कभी भी जाति के आधार पर भेद-भाव पूर्ण व्यवहार का एहसास तक नहीं हुआ था। हम जाति के नाम पर अपमान, उठते-बैठते, सोते-जागते, घूमते-फिरते एक तरह से मृत्युदंड के समान ही प्रतीत होता है जिसे मुझ जैसे दलित जीवन में हिन्दू लोगों के साथ प्रतिदिन प्रतिक्षण भोगते-भोगते अनेकों बार जीवन में मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं।

प्रेम प्रकाश दहेली वाले मेरे अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के विशेष मित्रों में से हैं। वह हमारे गांव के पास दहेली के रहने वाले थे। दूसरे वह यूनिवर्सिटी के सर सुलेमान हॉल में रहकर अपनी पढ़ाई किया करते थे। वह पतले-दुबले होने के साथ-साथ लंबे सींकिया पहलवान थे। वह अपने सिर पर बड़ी-बड़ी जुल्फें रखा करते थे। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। वह अकसर अपनी नाक से फिन्न-फिन्न की मधुर-कर्कस ध्वनि के सुर का राग अलापते रहते थे। इतना ही नहीं उन्हें भूत-प्रेत से भी बहुत डर लगा रहता था। उनके कानों में सोते समय निरंतर तरह-तरह की आवाजें आती रहती थीं। वे अपने कमरे में रात को भूतों को भगाने के लिए लोहमान गंधक जलाया करते थे। प्रेम साहब मेरे साथ कहीं भी जाने के लिए हरदम तैयार रहते थे परंतु वे कहीं भी जाने के लिए तैयार होने में कम से कम एक घंटे का समय

लगाया करते थे। वह अपनी जुल्फों को संभालने में ही कम से कम बीस मिनट का समय लगाते थे। मुझे अपना बहुमूल्य समय बर्बाद करने उनकी इन सब दिखावटी बातों से कभी-कभी बड़ी खीझ हुआ करती थी।

वह अपने सीधे स्वभाव के लिए छात्रावास में मशहूर थे। वैसे दिल के बहुत सीधे साधे अच्छे व्यक्ति थे। हशरत मोहानी छात्रावास के लड़के उन्हें अल्ला मियां की गाय कहा करते थे। मेरी उनसे बहुत से सामाजिक विषयों पर बातें हुआ करती थीं। हम दोनों जवान थे इसलिए समाज को बदलने के बड़े-बड़े मनसूबे बनाया करते थे। एक दिन दोपहर में चावल की तहरी बनाने के लिए भगोना हीटर पर रखने के साथ बिजली चली गई। तब हम दोनों छत पर खुले में लगभग दो घंटे तक बातें करते रहे। हमें पता ही नहीं चला बिजली कब आ गई। जब हम लोग लौटकर कमरे में आये तब देखा भगोने के अंदर कोई तरल चमकने वाला पदार्थ झलक रहा है। उस भगोने को जैसे ही प्रेम प्रकाश ने उठाया उसमें एक लंबी चोंच सी निकल कर बड़ा छेड़ बन गया था। उसके बाद हम लोग होटल में खाना खाने के लिए गये थे। हमें दूसरा भगोना लाने में महीनों लग गए थे। भगोना खरीदकर लाते कहां से जेब में पैसे ही नहीं थे।

श्री प्रेम प्रकाश जी से मेरा लंबा साथ रहा था। उनके छात्रावास में मैंने भी अपना छात्रावास आबंटित करवा लिया था। मुझे केन्द्रीय छात्रावास में कमरा मिला था लेकिन वहां रहने के लिए कभी नहीं गया था। उनमें से एक सबसे बड़ा कारण मेरे पास अच्छी रजाई-गद्दे का न होना कहा जा सकता है। जाड़े के दिनों में कड़ाके की ठंड से बचने के लिए रजाई की सबसे बड़ी आवश्यकता होती है। गर्मी के दिनों में हम लोग छत पर सफेद चादर लेकर सो जाते थे परंतु जाड़े काटना दुष्कर होता था इसलिए हम दोनों एक ही रजाई में सोते थे। इस तरह सोने से ठंड भी कम लगती थी। यूनिवर्सिटी के हॉस्टल में कई लड़के नाम के लिए प्रवेश ले लेते थे परंतु वे लोग सालोंसाल छात्रावास में रहने के लिए नहीं आते थे। उनकी चारपाइयों का प्रयोग करने में भी मुझे कोई शिकायत नहीं होती थी। मैंने इसी तरह अपने कई बरस गुजारे थे। हमारे पास जब कभी कोई मित्र अथवा रिश्तेदार आ जाता था, तब हम दोनों में से एक बिजली का हीटर जलाकर रातभर पढ़ता रहता था। सुबह उठ जाने पर रातभर पढ़ने वाला साथी रजाई में सो जाता था। इस गरीब मास्टर ने इस तरह कितनी ही रातें गुजारी हैं। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पूरी पढ़ाई के दौरान मेरे पास अपने रजाई-गद्दे कभी नहीं रहे थे।

दूसरा बड़ा कारण मेरे पास पैसे कम हुआ करते थे। हम दोनों मित्र मिलकर कहने के लिए दाल, चावल बना लिया करते थे लेकिन वास्तविकता में हम दोनों अकसर चावल, आलू की पीली तहरी अथवा खिचड़ी से अपना पेट भरा करते थे। इतना ही नहीं हम दोनों एक ही प्लेट में चम्मच से लाइन खींचकर खिचड़ी आधी-आधी बांट कर खाया करते थे। हम दोनों एक दूसरे की बंटी हुई खिचड़ी में से खाने के लिए हाथ मारने की सदैव कोशिश में रहा करते थे। जब हममें से कोई किसी की खिचड़ी अधिक खा लेता था, तब हम दोनों बहुत हंसते थे। प्रत्येक शनिवार को मुझे अपने गांव में जाना होता था। गांव से सोमवार को सुबह लौटते समय घर से पराठे अथवा रोटियां ले आता था। वह रोटियां दो दिन चल जाया करती थी। मेरे जीवन-यापन का यही क्रम था।

हम दोनों फुर्सत के दिनों में अलीगढ़ शहर में घूमने अथवा किसी से मिलने के लिए साथ में ही जाया करते थे। उस दिन वापस छात्रावास लौटने में देर हो जाने से हमारा मन खाना खाकर लौटने का होता था परंतु बहुत से लोग हमें चाय पिलाकर टरका देते थे। इसके बाद प्रेम प्रकाश जी उन्हें बुरा सा मुंह बनाकर कुछ बुरा-भला कहा करते थे क्योंकि वैधानिक रूप से उन्हीं के रिश्तेदार होने के नाते उन्हीं के विशेषाधिकार का मामला बनता था।

इश्तियाक अहमद भी मेरे मित्रों में से एक हैं। वह हशरत मोहानी छात्रावास में रहते थे। वे अपने अब्बा जान से इसलिए खफा थे क्योंकि उनके अब्बू उनकी शादी उनकी फूफी की लड़की से करना चाहते थे। इन साहब ने उस लड़की से शादी करने से इंकार कर दिया था। उनके अब्बू ने आव देखा न ताव जनाब के लिए खाने के पैसे भेजना बंद कर दिये थे। तब वह ट्यूशन करने लगे थे। वे हमारे साथ में खाना खाते रहते थे। हम दोनों किसी तरह से अपने दिन काट रहे थे, बीच-बीच में इश्तियाक साहब टपक पड़ते थे। दो लोगों के खाने में तीन लोग खाते हैं तब तीनों ही भूखे रह जाते थे। हम लोग अपने खाली पेट को पानी पीकर भर लिया करते थे। ऐसा करने से एक फायदा अवश्य हो जाता था। रात में हमें गहरी नींद नहीं आती थी। इस कारण हमारी कुछ पढ़ाई हो जाया करती थी।

मेरे पास काले डायल वाली बड़ी सुंदर एच. एम. टी. पायलिट घड़ी हुआ करती थी। वह घड़ी मैंने इश्तियाक साहब को उनके रेलवे में साक्षात्कार देने के लिए दे दी थी। वह उसे कहीं गिरवी रखकर अपना साक्षात्कार देने के लिए गये थे। एक बार तो उन्होंने उसे छुड़ा लिया था। दूसरी बार में उन्होंने उस घड़ी को कहीं बेच दिया

था। उन्होंने मुझे उस घड़ी के बारे में कुछ बताया भी नहीं था। वह आज रेलवे में गोरखपुर में चीफ एकाउंटेंट के रूप में एक बड़े अधिकारी हैं परंतु उन्होंने आज तक मेरी घड़ी नहीं लौटाई है। अब उनका बेटा भी अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगा है। आज उनके पास अल्लाह का दिया हुआ सब कुछ है परंतु आज तक मेरे हाथ में एच. एम. टी. पायलिट काले डायल वाली घड़ी नहीं बंध पाई है।

यह बात 1989 की है, जब मेरे साथ एम. ए. हिन्दी करने के लिए हिन्दी विभाग में देवेंद्र पाल सिंह ने प्रवेश लिया था। मुझे वे दिन याद हैं जब देवेंद्र इतिहास विभाग से हिन्दी में आया था। उन दिनों वह सिविल सर्विस की तैयारी कर रहा था। वह जूडो-कराटे का माहिर खिलाड़ी ही नहीं था बल्कि एन.सी. सी. में अंडर ऑफिसर भी रह चुका था। मैं प्रारम्भ में उसे उसकी लंबाई-चौड़ाई को देखते हुए निपट जाट समझा करता था। इस कारण उससे बहुत दिनों तक कुछ हद तक औपचारिक ही रहा था। मुझे एक दिन बातों ही बातों में सताये हुए समाज से होने की बात पता चली, तब उससे मेरी आत्मीयता कुछ बढ़ गई थी।

उन दिनों उसके ग्रुप में अलग-अलग विभागों में कई जातियों के दोस्तों से बड़ी घनिष्ठता थी। उसके परिवार में उसके भाई-बहन सब पढ़े-लिखे और अलीगढ़ की अच्छी कॉलोनी में रहा करते थे। देवेन्द्र ने यू. जी. सी. नेट की परीक्षा पास कर यूनिवर्सिटी में पढ़ते हुए एम. फिल करने के बाद लोक सेवा आयोग की परीक्षा के माध्यम से वर्तमान में जिला मनोरंजन 'कर' अधिकारी, दिनेश केंद्रीय पुलिस बल में डी.आई.जी, महेश एल.आई सी.में एडमिनिस्ट्रेसन। रजनीश बांगला डिग्री कॉलेज में प्रोफेसर और रणजीत दिल्ली में मल्टीनेशनल कंपनी में हैं।

मेरे एम. ए. हिन्दी करने के दौरान मेरे साथ कक्षा में कई लड़के ऐसे थे जिनमें कुछ न कुछ खूबियां थीं। उनमें देवेंद्र के अलावा धर्मेन्द्र सेंगर, परवेज रफी, आरिफ, इरफान आसिम और ज्ञास नासिर भाई, इब्राहिम चौधरी आदि थे। सभी लोग एक दूसरे को पार्टी कहकर बुलाते थे। लड़कियों में सीवा, रीमा, फरहा, दीवा नकवी आदि थीं। हमारी कक्षा में खूब चहल-पहल रहा करती थी। सब एक दूसरे को सहयोग किया करते थे। वहां हिन्दू धर्म के छात्रों की तरह ऊंच-नीच छूआ-छूत नहीं थी। वहां बहुतायत में मुस्लिम होते हुए हम लोगों में कोई भेद-भाव नहीं था।

क्या दिन थे? सबके सब एक दूसरे के लिए मर मिटने के लिए तैयार रहा करते थे। जब अलीगढ़ में अयोध्या मसले को लेकर स्थिति बहुत तनावपूर्ण हुई। जब तनाव के कारण शहर में कर्फ्यू लगा रहता था। तब भी शहर के आसपास के

इलाकों के लड़के यूनिवर्सिटी में पढ़ने के लिए आते थे। सभी लड़के शहर में तनाव रहते हुए भी कोई न कोई रास्ता निकालकर यूनिवर्सिटी में पढ़ने के लिए आ जाया करते थे। कक्षा में सब मस्त रहा करते थे। मुझे याद है हम लोग सांप्रदायिक दंगों के संबंध में विभिन्न पक्षों से वार्तालाप किया करते थे। वार्तालाप के दौरान कभी-कभी बहुत गरमा-गरमी सी होने लगती थी परंतु आखिर में एक कप चाय पर सब मामला सुलझ जाया करता था। रफी खान और नासिर कहते थे, यहां यूनिवर्सिटी में पार्टी तुम्हें कुछ नहीं होगा परंतु शहर में संभलकर जाना। ऐसा था हमारा छात्र जीवन। सेमिनार हॉल में खूब पार्टी हुआ करतीं थीं। शर्बत, किस्से, गजल और अपनी कला के प्रदर्शन के दौर चलते। भाई क्या दिन थे, खूब मस्ती-धमाल के चलते मुफलिसी होते हुए भी नहीं दिखती थी। एक बार प्रो. के.पी. सिंह साहब उन दिनों विभाग के चेयरमैन हुआ करते थे, उन्होंने एक दिन क्लास में लड़कों से कहा था—सेमिनार हाल की सब खबर मुझे मिलती रहतीं हैं अब थोड़ा कंट्रोल जरूरी है।

एम. ए. हिंदी करने के दौरान दो घटनाएं मेरी छात्र राजनीति से जुड़ी हुई हैं जो एकता की अभूतपूर्व मिसाल रहीं थीं। पहली घटना एम. ए. कक्षा की सेमिनार समिति का चुनाव था जिसमें सभी पदों पर कुछ ही मिनटों में आम सहमति से चुनाव कर लिया गया था। जिसमें मुझे क्लास का कक्षा प्रतिनिधि, सी. आर बनाया गया था। इस घटना का हस्ताक्षर आज भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था मेरे पास उपलब्ध है।

दूसरी बात अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में छात्र यूनियन का चुनाव होना था। मेरी क्लास के लड़कों ने मुझे छात्र यूनियन में प्रेसिडेंट का चुनाव लड़ने के लिए कहा। हमारी पूरी कक्षा के विद्यार्थियों ने मुझे चुनाव लड़ाने के लिए जी-जान से कोशिश की थी। इस चुनाव में मेरा प्रथम प्रस्तावक विद्यार्थी खालिद अहमद और दूसरा विद्यार्थी प्रस्तावक सुरेश चन्द्र जी थे। यूनियन हॉल में जब मेरा नाम पुकारा गया था। सुरेश चन्द्र ने छात्रों से भरे हुए खचाखच हॉल में खड़े होकर मेरे नाम का समर्थन किया था। इस पर वहां उपस्थित छात्रों ने सुरेश चन्द्र की कांदु-कांदु कहकर बड़ी हूटिंग की थी। खालिद अहमद मेरे दूसरे प्रस्तावक वहां उपस्थित थे परंतु स्थिति की नाजुकता को भांपकर लड़कों की भीड़ के प्रेम को देखकर चुप रह गए थे। आज डॉ. सुरेश चन्द्र यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। यूनियन हॉल में अंतिम बैठक होती है जहां पर सिर्फ और सिर्फ सपोर्टर्स ही जाते हैं उसके बाद में प्रचार का दौर चलता है। सभी लड़कों ने मेरे प्रचार के लिए कार्ड छपवाकर दिये थे। मुझे बड़ी मदद मिली थी, नहीं तो उन दिनों एक गरीब का बेटा कैसे चुनाव लड़ सकता था।

देवेंद्र सिंह ने चुनाव के दौरान कहा था। उमेश भाई आप पहले दलित छात्र हो जो इस चुनाव को लड़ने का हौसला कर रहे हो। इस चुनाव को जीतना और हारना अलग बात है लेकिन आपके द्वारा यह चुनाव लड़ना ही आने वाले कल के लिए हमारे समाज की एक ऐतिहासिक घटना होगी। मेरे प्रेसिडेंट के चुनाव प्रचार के दौरान देवेंद्र अपना स्कूटर लेकर साथ में रहते थे। मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पच्चीस हजार छात्र थे। बारह हॉल थे। प्रत्येक हॉल में छह से आठ हॉस्टल हुआ करते थे। उन दिनों एक हॉल में एक से लेकर दो हजार छात्र हुआ करते थे। पूरी की पूरी रात वोट मांगते बीत जाया करती थी। मैं नींद की अवस्था में भी वोट मांगने और सलाम करने के लिए हाथ उठाता रहता। इस यूनिवर्सिटी का छात्र यूनियन का चुनाव एम.एल. के चुनाव से किसी मायने में कम नहीं होता है। इस चुनाव के दौरान तनाव और थकान के कारण मेरा स्वास्थ्य कुछ गड़बड़ाया था। तब देवेन्द्र सिंह के साथ कई दूसरे छात्र मिलकर मुझे मेडीकल कॉलेज लेकर गए थे। वहां पर मेरा कई दिन तक इलाज चलता रहा था। मेरी हालत बड़ी मुश्किल से ठीक हो पाई थी।

इस छात्र यूनियन के चुनाव में मुझे सफलता नहीं मिल पाई थी लेकिन मेरे जीवन का एक अनोखा अनुभव रहा था। अलीगढ़ में छात्र यूनियन के प्रेसिडेंट की स्पीच बहुत अद्‌भुत हुआ करती है। मेरी नजर में चुनाव एक नशा की तरह होता है। एक बार चढ़ने पर जीवनभर उसका खुमार रहता है।

मुस्लिम यूनिवर्सिटी में चुनाव सम्पन्न होने के बाद प्रेसिडेंट स्पीच की एक परंपरा है। इस परंपरा के अनुसार चुनाव के बाद चुने गए सदस्यों का स्वागत होता है। इतना ही नहीं चुनाव में जीते हुए प्रेसिडेंट और प्रेसिडेंट के चुनाव की दौड़ में पिछड़ गए प्रत्याशियों की स्पीच होती है। जब मैंने सर कैनेडी हॉल में दूधिया सफेद रंग की शेरवानी पहनकर स्पीच दी। वह मेरा अनुभव एकदम निराला था। कैनेडी हॉल में छात्रों से खचाखच भरी भीड़ चिल्ला रही थी। वहां पर हजारों विद्यार्थी मुझे टोपी पहनने के लिए कह रहे थे। मैंने पहले टोपी पहनी। उसके बाद लड़कों ने मुझे कुछ बोलने दिया था। क्या माहौल होता है? वहां रुक पाना कितना कठिन था। फिर भी मैंने अपनी पूरी बात कही थी। उस दिन मैंने अपने उद्‌बोधन में कहा! यह यूनिवर्सिटी दुनिया की एक अनोखी यूनिवर्सिटी है जिसमें हिन्दू छात्रों के साथ मुस्लिम छात्र बड़े अदब के साथ पेश आते हैं। इस देश में सभी धर्मों के लोग मिलकर रहे। यह दुआ करता हूं। मैं छात्रों के हित के लिए यूनिवर्सिटी के इंतजामिया से टकराने के लिए सदैव तत्पर रहूंगा। मैं एक दलित छात्र हूं फिर भी यहां पर आज

तक मेरे साथ कोई भेदभाव और अछूत जाति के नाम पर अपमान नहीं किया गया है। जबकि मुझे अपने गांव से लेकर इस यूनिवर्सिटी में आने से पूर्व तक कदम-कदम पर बहुत अपमान का सामना सहन करना पड़ा है। हमारी आने वाली पीढ़ियां इसी तरह सदियों तक मिलजुल कर भारत की सामाजिक संस्कृति का वहन करती रहे। मेरी यही कामना और आखिरी लालसा है। इस बात पर लड़कों ने बड़ी जोरदार तालियों के साथ मेरा सम्मान किया था। उस दिन की अनोखी याद, आज भी मेरे मस्तिष्क में कभी-कभी ताजा हो जाया करती है। देवेन्द्र ने मेरे उन फोटोग्राफों को देखकर कहा था। उमेश भाई आपकी हिम्मत की दाद देता हूं। आपने उस दिन मंच पर जाकर अपनी पूरी बात कही थी। यह एक ऐतिहासिक क्षण था। जब एक दलित छात्र को मुस्लिम यूनिवर्सिटी ने वह मंच दिया जो संभवतः उस समय किसी और हिन्दू यूनिवर्सिटी में मिलना संभव नहीं था। आज एम. ए. के मेरे सभी मित्र अच्छी तरह से हैं। परवेज रफी और रीमा खानम एक हो गए हैं। इब्राहिम अपनी फैक्टरी चला रहे हैं। आसिम पैट्रोल पंप और ट्रैक्टर एजेंसी चला रहे हैं। सीमा अमरोहा में लेक्चरर हो गई हैं। इरफान अहमद अलीगढ़ में शिक्षक और इरफान कोलकाता में पुस्तकालयाध्यक्ष हो गए हैं।

19

हमारे मुहल्ले में बिजली न लगने के पीछे गांव के उन्हीं लोगों की कारस्तानी थी, जो गांव के सवर्ण और दबंग लोग थे। एक जमाना था जब उनके सामने कोई बोल नहीं पाता था। उन्होंने जो कह दिया, जो कर दिया, वही कानून और वही अंतिम फैसला हुआ करता था परंतु आज वह बात नहीं रही है। अब जमाना बदल गया है। हम लाख अपने को जाटव और वाल्मीकि कहते रहे। उनकी नजर में आज भी हम चमार और भंगी ही हैं। उनके कहने के मुताबिक और फैसले के अनुसार पूरे गांव में बिजली लगाई गई थी लेकिन जाटवों और वाल्मीकियों (भंगियों) के मुहल्ले में बिजली नहीं लगाई गई थी। वे लोग आज भी जब आपस में बात करते हुए, हमारे लोगों को चमार और भंगियों के नाम के सम्बोधन से संबोधित करते हैं तब बड़े गौरवान्वित महसूस करते हैं। मेरी दृष्टि में यह उनकी लघुता ही प्रतीत होती है।

वह लोग हमारे बारे में सोचते रहे होंगे। इनके पास रहने को घर नहीं, फिर बिजली का क्या करेंगे। हमारी बस्ती के लोगों के पास उस जमाने में मिट्टी के बर्तन,

मिट्टी के घर और फूंस की मढ़ैया ही होती थीं। यह उस जमाने का सच था जब हमारी बस्ती वालों के घरों में खाने के लाले पड़े रहते थे। हमारी बस्ती के अधिकतर लोगों के पास जमीन नहीं थी। किसी व्यक्ति के पास जमीन थी, तो उसमें पानी भरने से कुछ पैदा नहीं हो पाता था। उसमें कुछ बुवाई की भी तो वह बरसात में रौ आने से अर्थात पानी की बाढ़ आने से फसल नष्ट हो जाया करती थी।

गांव में ठाकुरों, ब्राह्मणों, गुसाईयों, खत्री, बढ़ई और नाइयों के अतिरिक्त गड़रिया, कुम्हार, दर्जी, कोयरी, खटीक, कढ़ेरे, धोबी, मुसलमान लुहार, फकीर, नट, वाल्मीकि और जाटवों की बस्ती थी। गांव के लगभग सभी काम गांव में ही सम्पन्न हो जाया करते थे। यह एक तरह से भरा-पूरा गांव था। गांव की पिचानब्बे प्रतिशत जमीन तीन घरों के लोगों के पास थी। ठाकुर मुंशी सिंह बाद में उनके पुत्र श्री महाराज सिंह, राव साहब, और राधाकृष्ण बोहरे आदि गांव के मौजूदा घराने माने जाते थे। पचास और सौ बीघा के जोता तो कई थे।

देश आजाद होने के बाद में गांव में बिजली लगाई गई थी। इसका एक कारण समेरा झाल पर पानी से बिजली बनाई जाती थी, तो दूसरा कारण गांव के पास हाइड्रो थर्मल पॉवर बिजली का कारखाना लगाया गया था। जहां तक मैं समझता हूं आज अलीगढ़ के सभी गांवों में बिजली लगी हुई है। हमारे मुहल्ले में बिजली नहीं थी। गांव में ठाकुरों की जमींदारी थी। स्वर्गीय मुंशी सिंह जी पांच सौ बीघे के जोता और जमींदार थे। अर्थात उनके पास पांच सौ बीघा जमीन थी। गांव के सभी लोग उनके यहां काम में लगे रहते थे। देश आजाद होने के बाद में भी वही लोग गांव के प्रधान रहे।

अब सबसे विकट समस्या मुहल्ले में उजाले की थी। शादी-विवाह के अवसरों पर हंडा और बैंगनी जर्मनी हंडा मिट्टी के तेल से जलाया जाता था। हमारे घरों में दीवट, दीया जलाया जाता था। उसी से रात को हम सब बच्चे पढ़ाई भी करते थे। कम उजाले में पुस्तक के अक्षर ठीक से दिखाई भी नहीं देते थे। सुबह उठने पर आंखों में काजल लगा हुआ दिखाई देता था। नाक के सुराखों में कालिख लगी होती थी। इस कालिख का कोई उपाय नहीं था। यह अंधेरा हमारे घरों का ही नहीं था बल्कि यह हमारे जीवन का अंधेरा था। इसे दूर करने का कोई उपाय नजर नहीं आता था। हमारी बस्ती के सब लोग गांव में पले बढ़े लोग थे। किसी की किसी अधिकारी से कोई जान-पहचान नहीं थी।

मैंने हाईस्कूल पास करके अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में प्री यूनिवर्सिटी कोर्स में प्रवेश लिया था। इसलिए अलीगढ़ में मेरा आना-जाना बढ़ गया था। सौभाग्य से

हमारे रजिस्ट्रार ऑफिस के पास में ही लाल डिग्गी बिजली का दफ्तर था। वहां पर विद्युत विभाग के अधिकारियों से अपने गांव में बिजली लगवाने के संबंध में मिलने लगा। इस संबंध में बिजली विभाग के बड़े अधिकारी एसडीओ से कई बार मिला। बिजली विभाग के अधिकारी महोदय ने हमारी बस्ती में बिजली लगाने की मेरी बात स्वीकार कर ली थी। इसके लिए मैंने एक प्रार्थना पत्र पर लोगों के हस्ताक्षर करवाकर उसके कार्यालय में जमा किया था। उस अधिकारी ने मुझसे इसके लिए कुछ खर्च देने के लिए कहा था। मैंने यह बात अपनी बस्ती के लोगों के सामने रखी। सभी ने प्रत्येक घर से चंदा करके रुपये इकट्ठा करने का वायदा किया था। तब जाकर बिजली लगाने के लिए एसडीओ ने आदेश पत्र पर अपने हस्ताक्षर किये थे।

बिजली लगाने के लिए अर्थ का तार और बिजली का तार सारसौल पर से दिया गया था। उसे गोदाम से निकलवाने ले लिए मुझे एसडीओ से हस्ताक्षर करवाकर आदेश स्वयं लेकर जाना पड़ा था। उस दिन मेरे पास एक भी पैसा पास नहीं था। इसके लिए मैंने भाई श्री ओमप्रकाश जी से मदद ली थी। एक तार का लच्छा मैंने अपनी साइकिल पर बांधा था और दूसरा तार का लच्छा भाई साहब ने अपनी साइकिल पर बांधा था। तब जाकर बिजली के तार किसी तरह सारसौल से गांव में पहुंच पाये थे। हम इस काम में पूरे दिन भूखे-प्यासे लगे रहे थे।

बिजली विभाग वाले कर्मचारी छोटी-मोटी नहीं बल्कि बड़ी-बड़ी ऊंची चीज होते हैं। वे लोगों से बार-बार बहुत चक्कर लगवाते हैं। एक बार वे किसी आम आदमी से रूठ जाए। तब बिना बड़ी भेंट लिए मानते नहीं हैं। भारत के तैतीस करोड़ देवता भी इसी तरह की नस्ल के होते हैं। मजाल है आपका कोई काम पंडित जी की तरह बिना दक्षिणा लिए कर दें। वह आपसे पैसे लेकर भी अपने मनमाने ढंग से ही काम करते हैं। गांव में आने पर उनकी चाय-पानी का इंतजाम अलग से करना होता है। बिजली वाले अधिकतर चाय गरम नहीं ठंडी चाय पीते हैं। उन्हें साहब साहब अलग से घंटों कहना पड़ता है। वह लोग दलितों से तो सिर्फ बात-बात के पैसे लेते हैं।

अब बिजली के खंभे जवां ब्लॉक से उठाकर लाने थे। वह श्री बहोरीलाल चाचा अपनी बुग्गी से उठाकर लाये। सभी मुहल्ले वालों ने उन खंभों को बुग्गी से उतरवाने और उन्हें उठवाकर गड्ढा खोदकर लगवाने में मदद की। उन पर बिजली के तार खींच दिये गए। बिजली की लाइन नहीं जोड़ी गयी। असल में हमारे मुहल्ले के ही एक आदमी ने वाल्मीकि भाइयों के कान फूंक दिये थे। अब उसमें एक और चक्कर पड़

गया था। बिजली हरिजन बस्ती के लिए स्वीकृत हुई थी। हमारे गांव के वाल्मीकि भाइयों को नहीं मालूम था, चमार भी सरकारी खाते में हरिजनों की श्रेणी में आते हैं। अब हमारे वाल्मीकि भाई हरिजन होने के नाम पर बिजली के खंभे अपने यहां खींचे लिए जा रहे थे। हमारे गांव के लोग इतने बड़े जादूगर हैं उन्होंने हमारे अपने वाल्मीकि भाइयों के साथ लड़ने के हालात उत्पन्न करवा दिये थे।

मैं बड़ी मुश्किल में फंसता जा रहा था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था। क्या करूं? यह मेरे धैर्य की कड़ी परीक्षा और बड़ी मुश्किल की घड़ी थी। इस संबंध में नीति कहती है समाज के कार्य के लिए कभी भी सबसे आगे आ करके बातें करना ठीक नहीं होता है। क्योंकि काम के बन जाने पर समाज का कार्य होता है और कार्य बिगड़ जाने पर सभी लोग उसे गाली देते हैं।

सबसे आगै होय के कबहु न करिये बात।
सुधारे काज समाज फल बिगरे गारी खात ॥

उस दिन एक बार को मैं हारता हुआ नजर आ रहा था परंतु फिर भी अपने मस्तिष्क का प्रयोग करते हुए, गांव की यथास्थिति से एसडीओ को अवगत करवाया। मैंने उसे अपनी ओर से बताया गांव में फौजदारी होने की स्थिति सी बन रही है। गांव में फौजदारी होती है तब आप भी किसी तरह से नहीं बच सकते हैं। किसी तरह कह सुनकर अपने वाल्मीकि भाइयों के लिए भी एसडीओ से मुफ्त में एक बिजली का खंभा मंजूर करवाया। तब जाकर कहीं इस बिजली की समस्या को सुलझाया जा सका था। उस दिन हमारा और वाल्मीकि भाइयों का मुहल्ला बिजली की रोशनी से जगमगा गया था। मुझे उस समय बेइंतहा खुशी का अनुभव हुआ था।

ले किताबें निकल पड़े हैं, अब लोग मेरे गांव के।
यह अंधेरा जीत लेंगे, अब लोग मेरे गांव के ॥

20

मेरे गांव की दलित बस्ती में भी एक बड़ा सा कुआं है। उसके बारे में मुहल्ले के लोग कहते हैं यह कुआं उन्होंने इसी तरह बना हुआ देखा है। इतना ही नहीं वह सभी लोग बड़े गर्व के साथ बताते हैं उनके बाप-दादाओं ने भी कुआं ऐसा ही देखा था। किसी को उसके बनाने वाले का कोई अता-पता नहीं है परंतु यह बात एकदम

बीस आने सच है हमारे मुहल्ले में एक बहुत बड़ा और बहुत पुराना चौपेरा कुआं है। वह ककईया की पतली-पतली ईंटों से बना हुआ है। उस कुएं का पानी जाड़ों में गरम और गर्मियों में बहुत शीतल रहता है। उन दिनों इसी कुएं से सभी घरों में पीने के पानी की आपूर्ति की जाती थी लेकिन पहले उस कुएं का चबूतरा ऊंचा न बनाने के कारण जमीन के बराबर में एकदम समतल था।

उन दिनों कुएं के किनारे-किनारे चारों ओर गोलाई में एक मोटी मेंड़ सी बना दी जाती थी। इस कारण उस कुएं में रात में यदा-कदा सुअर, कुत्ता अथवा बिल्ली आदि गिर जाया करते थे। कुएं में किसी जानवर के गिर जाने से पीने का पानी गंदा हो जाया करता था। इससे प्रथमतः मुहल्ले वालों के सामने पीने के पानी का विकट संकट उत्पन्न हो जाया करता था। गांव के दूसरे कुओं से एक-दो आदमियों को पानी दिया जा सकता था। मेरी बस्ती में दो सौ लोगों की पूरी बरात को कोई कैसे पानी पिला सकता है। तब पानी पीने के दो रास्ते बचते थे। एक किसी से पानी मांगकर लाया जाय अथवा दूसरे उसी गंदे पानी को उबालकर और कपड़े से छानकर पिया जाए। किसी तरह उसी गंदे पानी को पी-पी करके मेरी बस्ती के लोग बड़े हुए हैं। वैसे कुएं में जानवर गिरने की स्थिति में अधिकांशतः उस पानी को सभी लोग खींचकर फेंक दिया करते थे परंतु फिर भी उस कुएं में थोड़ा-बहुत गंदा पानी रह ही जाता था। अब चाहे कोई ब्राह्मण, क्षत्री अथवा राजपूत ही क्यों न बनें। सभी ने कुत्ते, बिल्ली से गंदा हुआ पानी ही पिया है।

जब रात को कोई जानवर कुएं में गिरता था। पहले तो उसका किसी को पता ही नहीं चलता था। इस बात का पता चने के बाद उस कुआं का पानी कैसे पिया जा सकता है। इसकी तत्काल व्यवस्था के लिए हमारी बस्ती के लोग पानी मांगने के लिए ठाकुरों के कुएं पर जाया करते थे। वहां सवर्णों से घंटों मिन्नतें किया करते थे। किसी के दया-धर्म में आने पर लोग हमारे लोगों को बड़े ऊपर से भीख के रूप में कुछ पानी डाल दिया करते थे।

उन दिनों ठाकुरों के कुएं पर बहुत से सवर्ण संस्कारित लोग पानी मांगने वाली औरत को मां...की गाली देने में आपनी शान समझा करते थे परंतु वह नासमझ क्या जाने, इस तरह से गाली देने पर उनका स्वयं का व्यवहार अस्पृस्यों से भी बदतर लगता था।

भारत में आज ठाकुरों के कुओं का ही नहीं लगभग सभी कुओं का अस्तित्व समाप्त हो गया है अथवा बहुत नजदीक भविष्य में समाप्त होने जा रहा है। अब

कुओं की जगह हाथ के नल, सरकारी नल अथवा सभी शहरों में सरकारी पानी की पाइप लाइन के द्वारा सभी को पानी उपलब्ध करवाया जाता है। यह पाइप लाइनें सभी रास्तों की तरह एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। इस तरह दुनिया के सबसे बड़े प्रजातांत्रिक देश में पानी, पीने के लिए बराबर का व्यवहार सरकार द्वारा बहुत पहले शुरू कर दिया गया है। अब सभी, सभी का छुआ पानी पीते हैं उसी से नहाते हैं। उसी से पूजा का लोटा चढ़ाते हैं। उसी से ठाकुर जी को नहलाते हैं। उसी पानी से व्रत खोलते हैं।

हमारी जाति के लोग स्वतन्त्रता मिलने के बाद उन्नीस सौ पैंसठ-सड़सठ में भी ठाकुरों के कुएं पर से पानी नहीं भर सकते थे। मैंने उनसे पानी मांगते हुए स्वयं देखा था। मुझे नहीं लगता है आज भी मेरे गांव के लोग सन् दो हजार बारह में भी ठाकुरों के कुएं से कोई दलित पानी नहीं भर सकता है। भले उस कुएं से कोई पानी नहीं पीता हो। यह समाज की एक व्यवस्था है उसे एक साथ भंग नहीं किया जा सकता है। मेरे विचार से यह व्यवस्था धीरे-धीरे स्वयं ही समाप्त हो जाएगी।

हमारे दलित लोग विदेश चले गए हैं वहां पर जाति व्यवस्था नहीं है। वहां उनके साथ छुआछूत का व्यवहार नहीं किया जाता है। सबके पास धन है सब सबके बराबर हैं। वहां पर लोग अपने नाम के आगे रवि वेद सर नेम लगाने लगे हैं। मेरा विश्वास है जब भारत के लोग पढ़-लिख जाएंगे, सभी के पास काम होगा। सभी के पास धन होगा, तब सब सबके साथ बराबर का व्यवहार करने लगेंगे हालांकि चौदहवीं सदी की अपेक्षा आज भारत में जाति प्रथा के बंधन कुछ शिथिल अवश्य हुए हैं। सवर्ण दलितों के साथ उठने-बैठने भी लगे हैं। कुछ प्रगतिवादी अच्छी मानसिकता के सवर्ण लोग दलितों के साथ खाने-पीने भी लगे हैं परंतु आज भी नहीं कहा जा सकता है जाति प्रथा भारत से समाप्त हो गई है अथवा नजदीक भविष्य में बहुत शीघ्र समाप्त होने जा रही है। मेरा दावा है जाति प्रथा भारत से आने वाले पचास साल में आवश्य एक दिन खत्म हो जाएंगी।

यह घोषणा हवा मैं नहीं कर रहा हूं। उसका कारण है आज भारत सरकार के पास अतिरिक्त धन है तभी तो वह प्रत्येक भारतीय बेरोजगार को 100 दिन का काम दे रही है। यह काम दस-पंद्रह साल में 365 दिन का हो जाएगा। आज काम करने के बाद जो मेहनताना मिलता है उन्हें वही कल खाने और अपना जीवन-यापन करने के लिए बिना काम के मिला करेगा। भारत में उसकी प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। आपकी जन्म कुंडली सब कुछ कम्प्यूटर पर पलक झपकते मालूम हो जाया करेगी।

आपके काम और आमदनी का लेखा-जोखा उसमें दर्ज हुआ करेगा। भारत के प्रत्येक नागरिक का आधार कार्ड पर दिया गया नंबर कल को सामाजिक सुरक्षा के अधिकार का नंबर बनने की संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता है।

21

मेरे बाबा सदैव सुबह-सुबह उठ जाया करते थे। उनको किसी घड़ी की आवश्यकता नहीं हुआ करती थी। ब्रह्म मुहूर्त में अलख सुबह उठकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते और भजन गाया करते थे। मेरे बाबा जाड़ों के दिनों में सुबह ही अलाव में आग लगा दिया करते थे। जैसे ही अलाव सुलगकर दहकने लगता तब लोग प्रतिदिन दैनिक नित्य क्रिया से निवृत्त होकर अलाव पर आकर बैठते जाते थे। इसके बाद वहीं पर समाज और घर परिवार की विभिन्न समस्याओं पर गोष्ठी प्रारम्भ हो जाया करती थी।

बाबा का स्वभाव एक संत की तरह था। वे अपने ध्यान में मग्न रहते थे। उन्हें किसी की लड़ाई और झगड़े से कोई मतलब नहीं था। उनके पास जो भी आ जाता, उससे बड़े प्यार से बातें करते और उस व्यक्ति की हरसंभव मदद किया करते थे। मुहल्ले में उनके पास बैठने-उठने वालों की कोई कमी नहीं थी। उनके पास रूखा-सूखा जैसा भी खाना आ जाता था। उसे निर्गुण ईश्वर का नाम लेकर बड़े प्यार के साथ खा लिया करते थे। मुझे पता नहीं है मेरे बाबाजी के दांत कब उखड़ गए थे। मैंने जबसे होश संभाला तब से उन्हें बिना दांतों के खाना खाते हुए देखा था। मेरे बाबा बिना दांतों के थे परंतु दांत वाले लोगों से पहले खाना खा लिया करते थे। उनको बड़ी लंबी उम्र मिली थी। वह एक सौ पांच साल जीवित रहे थे। उनके बाद हमारे परिवार में किसी को इतनी लंबी उम्र नहीं मिली है। अब पता नहीं क्या बात है सब लोग सत्तर और अस्सी के बीच इस दुनिया को छोड़कर चले जाते हैं।

मेरे गांव के सुरता लोग अलाव पर पैरों के बल उकड़ू बैठकर घंटों घर परिवार, खेत-खलिहान, राजनीति, लड़ाई-झगड़े, चोरी-डकैती, सगाई, शादी-विवाह, प्यार-मुहब्बत, भूत-प्रेत, टोना-टोटके, और न जाने दुनिया भर की क्या क्या बातें करते रहते थे। मैंने कभी किसी को उनकी बातों से झुंझलाते हुए नहीं देखा था। वहां उपस्थित सभी लोग उनकी बातों को बड़ी लगन के साथ बिना कोई आवाज किये मन लगाकर सुनते रहते थे। भले ही घर से कई बार खाने का बुलावा क्यों न आ जाय, खाने को टालकर

घंटों अलाव की बातों में मन रमाये रहते थे। उस अलाव पर बैठकर जब जो विषय चल पड़े। उसी विषय पर संध्याकालीन संगोष्ठी होने लगती थी।

वहां उपस्थित लोग उसी विषय पर अपने-अपने अनुभव पूरे तर्कों के साथ प्रस्तुत किया करते थे। किसी ने कहा भूत के उल्टे पांव होते हैं। इसी विषय पर अपने तथा उनके बुजुर्गों द्वारा सुनाये गये अनुभवों को तर्कों के साथ सिलसिलेवार ढंग से बहुत बारीकी के साथ सुनाया करते थे। भूत-प्रेतों की इतनी बातें होती थी। उन सभी बातों को लिपिबद्ध किया जाय, तब कई पुस्तकें संपादित की जा सकती हैं। हमारे मुहल्ले का वातावरण उन दिनों पूरी तरह से भूतमय हो गया था। भूतों की ऐसी-ऐसी बातें सुनाई जाती थी। उनको और उनके तर्कों को उस समय खारिज करना बहुत मुश्किल काम होता था।

हमारे मुहल्ले भर के लोगों में उन दिनों अंधविश्वास कूट-कूट कर भरा हुआ था। किसी को पेट में दर्द हो जाय, बुखार आ जाय, कान में दर्द हो जाय, दाढ़ में दर्द हो जाय, किसी को दस्त लग जाएं, सब भूत ही किया करते थे। भूतों को उन दिनों कोई काम नहीं रहता था इसलिए जमाने भर के सारे भूत जाटवों और वाल्मीकियों को परेशान करने में लगे रहते थे। इन सब भूतों से भगतों और सयानों की बड़ी दोस्ती थी। इसके लिए सबसे पहले भगत, स्याने को तमाकू दिखाया जाता था। उस भगत के लिए सबसे पहले घर में दस नंबर की एक बीड़ी की पुड़िया और एक माचिस तैयार रखी जाती थी। वह घर में घंटों बीड़ी फूंकते रहते थे। तराजू हिलाते रहते थे। उनकी बड़ी गंभीर मुखमुद्रा हुआ करती थी। वह भगत अंत में घर के मुखिया अथवा उस घर की बड़ी और वरिष्ठ औरत के कान में खुसुर-फुसुर करते हुए कुछ कहता था। उसमें कहीं किसी की जात करना, बकरा, मुर्गा की भेंट देने के साथ कोई टोना-टोटका भी बताता था। वह औरत अपने बच्चे के लिए भगत के कहे अनुसार टोना-टोटका भी किया करती थी। उस भगत की टंट-घंट से कभी-कभी मरीज को फायदा भी हो जाया करता था। हमारे मुहल्ले के लोगों की सुख और शांति के लिए वर्ष में चार-छह बार भूतों को खुश करने के लिए पहले बकरों को उनके नाम से छोड़ा जाता था फिर उन बकरों की दावत उड़ाई जाती थी। दूसरे दिन सभी को प्रसाद बांटा जाता था। मेरी दृष्टि में सयानों के प्रयासों से वर्ष में दो-चार बार बस्ती में शांति पाठ का आयोजन हो जाया करता था।

उसके बाद दूसरे परिवार के लोगों को जी-भरकर गालियां दी जाती थीं जिस घर में वर्षों पहले कभी किसी के जवान आदमी अथवा औरत की मौत हो गई होती

थी। मेरा एक भाई चन्द्रशेखर बड़ा सुंदर था। वह छह सात वर्ष की उम्र में जुलाब लगने से चल बसा था। उसे पैसों की कमी के कारण समय पर उचित इलाज न मिल सका था। वह इस मायावी दुनिया और हमसे नाता तोड़कर वर्षों पहले इस संसार से विदा हो गया था। भगतों के कहे अनुसार वह अकेला बालक मुहल्ले के दूसरे भूतों के साथ मिलकर हमारे मुहल्ले के बालकों और युवा स्त्री-पुरुषों को बहुत परेशान किया करता था। उसके लिए हमें महीने में दो-चार बार गालियां खानी पड़ती थी।

हमारे मुहल्ले भर के लोग कहते थे, वह हमारा भूत भाई है परंतु वह मेरी और मां की बात बिलकुल नहीं सुनता था इसलिए मेरी मां भी अपने भूत बेटे को कभी-कभी बुरा-भला कह दिया करती थी। हमारे घर के सभी लोग दूसरों की गाली खा-खाकर बहुत परेशान हो गए थे। मैंने अपने भूत भाई से मुहल्ले भर के लोगों के सामने जोर-जोर से बहुत बार अनुरोध किया था। भूत भाई घर में अनाज का दाना नहीं है। अपने घर के लोगों के लिए कहीं से कुछ नहीं तो बाजरे का इंतजाम कर दोगें तो हम सब लोगों के लिए जाड़े के दिनों में तंगी के दिन कट जाएंगे परंतु उसने अपने बड़े भाई की बात आज तक नहीं सुनी। यह सब बातें इसलिए लिख रहा हूं ताकि उस अंधविश्वासी समाज के ज्ञान के बारे में आपको और इस दुनिया के लोगों को पता चल सके। मैं जिस समाज के मध्य से में निकालकर आया हूं। मेरे इन तर्कों को उन दिनों कोई नहीं सुनता था। उन दिनों मेरे समाज और मेरे घर के लोगों को पूरी तरह अंधविश्वासों ने जकड़ रखा था।

मैं एक बार बहुत बीमार हो गया था। मेरे बचने की कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी। सयानों को दिखाया। उनके कहे अनुसार मेरी मां ने टोने-टोटके, झाड-फूंक करवाई, जोति बजबाई, थाली बजवाई परंतु कोई फायदा नहीं हो रहा था। मेरी मां एक दिन मुझे सोमवार अथवा मंगलवार को भोर में अल सुबह अंधेरे में एक बबूल के पेड़ से गले मिलवाने और उसकी पूजा करने के लिए ले गई थी। उस समय मेरी उम्र लगभग दस वर्ष की रही होगी। उसके बाद यकायक में ठीक हो गया था।

मैं जब कक्षा सातवीं में पढ़ रहा था। उस समय मेरे बहनोई साहब के पिताजी ने मेरे लिए बाइल का एक कढ़ा हुआ सफेद कुर्ता-पाजामा भिजवाया था। मैंने उसे पहन लिया था। वह मुझे बहुत अच्छा भी लगता था। उस कुर्ता पाजामा को पहनकर जब स्कूल गया था। तब बड़ी जाति के लड़के कहने लगे चमरु तेरे इतने ठाठ। अरे उमेश च...का कहीं से मांगकर कर लाया होगा। मैंने भी उन्हें बाभन का कहा था।

मैंने भी उन्हें मिट्टी के गोले मारे थे परंतु दस लड़कों के आगे एक भूड़ के टीले पर बसे पीर की क्या चल सकती थी। मेरे इन कपड़ों को नाली की गीली मिट्टी के गोले मार-मारकर सब सवर्णों के लड़कों ने गंदे कर दिया था।

इसके बाद पता नहीं क्या हुआ, मुझे दो महीने के अंदर किसी भयंकर बीमारी ने जकड़ लिया। उस समय लगभग दो माह बीमार रहा था। तब जाकर कहीं ठीक हो पाया था। मैं उस समय अपनी चारपाई पर पड़ा-पड़ा अपने दिन गिनता रहता था। तब मुझे महसूस होता था, अब मेरा ठीक होना दूर की बात है। मुझे बीमारी में देखने के लिए बहुत से लोग आया करते थे, जिनमें मुख्यत औरतें अधिक हुआ करती थीं। वे घंटों मेरी मां से बतलाती रहती थीं। मेरे ठीक होने के नित नये फार्मूले सुझाये जाते थे, कोई कहती तुम्हारे लड़के से भूत चिपक गया है, कोई कहती कोई बड़ी चुड़ैल चिपक गई है, कोई कहती नजर लग गई है, और न जाने प्रतिदिन क्या-क्या बातें हुआ करती थीं। इन बातों को बार-बार, सुनते-सुनते तंग हो जाता था। तब मुझे गहरी नींद आ जाया करती थी।

उन्हीं दिनों मुझे रामलीला और रावण देखने का बड़ा शौक था। गांव में रामलीला दो-चार बार देखी थी लेकिन पॉवर हाउस पर रामलीला बहुत अच्छी होती थी। सभी मुहल्ले भर के लड़के शाम को खाना खाने के बाद से तैयार होकर घूमते थे। बच्चा पार्टी की सदैव कोशिश रहती थी। उनके साथ एक बड़ा आदमी रामलीला देखने के लिए जाये। इससे दो फायदे होते थे। एक अकसर बैठने के पीछे किसी न किसी से झगड़ा हो जाया करता था। उस समय बीच-बचाव में बड़े आदमी से मदद मिल जाया करती थी।

दूसरे रामलीला देखकर रात बारह बजे लौटते समय रास्ते में बम्बा से आगे बूचा वारे पर मरघट पड़ता था। यह भी कहा जाता है भूत रात बारह बजे के बाद जागते हैं। वहां पर सब लड़कों को बहुत डर लगता था। मैं भले ही दिन के उजाले में भूतों को गालियां भी दे देता था परंतु उन दिनों अंदर से डर मुझे भी लगता था। मेरी छोटी उम्र और घर-बाहर सब जगह भूत प्रेतों की बातें मानसिकता पर बहुत असर डालती हैं। हम सब लोग बूचा वारा मरघट आते ही बहुत चौकन्ने हो जाया करते थे। वहां पर पीपल के पत्तों की हल्की सी सरसराहट से सभी लड़कों की कंपकपी छूट जाया करती थी। गांव के खुले वातावरण में ठंड कुछ पहले आ जाया करती है। उस मरघट से गुजरते हुए ठंड के दिनों में सब लड़कों को पसीने आ जाया करते थे। इसलिए सभी लड़के वहां से झुंड बनाकर आया-जाया करते थे।

पॉवर हाउस में कार्यकारी अभियंता श्री आर.के. वर्मा जी के भाई का लड़का राज कुमार वर्मा मेरे साथ पढ़ता था। उनको बहुत बड़ी कोठी मिली हुई थी। उस कोठी में मुझे उस लड़के के साथ कई बार जाने का अवसर मिला था। उनके बड़े ठाठ थे। एक बार की बात है। उस लड़के ने मुझे अधिकारी क्लब में फिल्म देखने का निमंत्रण पास दिया तथा उसने मुझसे फिल्म देखने के लिए कुछ पहले आने के लिए अनुरोध किया था। मैं उस दिन अपने मामाजी के लड़के श्री राजबहादुर दिनकर के साथ फिल्म देखने गया। उन दिनों अधिकारी क्लब में फिल्म देखना मेरे लिए गर्व की बात थी। उस रात हमने गद्देदार कुर्सियों पर बड़े सम्मान के साथ फिल्म देखी थी। जब रात को एक बजे फिल्म समाप्त हुई तब हम दोनों भाई अपनी साइकिल लेकर बड़े आनंद के साथ घर लौट रहे थे। राजबहादुर साहब साइकिल बड़ी तेजी से चला रहे थे। बंबे से उतरकर नीचे की ओर ठीक बूचा वारे पर साइकिल समेत हम दोनों भाई उलट कर गिर गए थे।

मेरे सीने में साइकिल का हैंडिल लग गया था। राजबहादुर के सिर में गंभीर चोट आई थी। हम दोनों बेहोश होने की स्थिति में इसे भूत-प्रेतों की करामात समझ रहे थे परंतु होश आने के बाद उस घुप्प अंधेरे में अपने हाथों से टटोलकर देखने पर पता चला। वह पानी के बहाव की धार से बनी गहरी खंदक थी, जिसमें हमारी साइकिल का अगला पहिया फंस गया था। हम दोनों के गंभीर चोटों के अतिरिक्त हाथ-पैर भी बहुत छिल गए थे। इस अप्रत्याशित दुर्घटना से हम दोनों लगभग पंद्रह दिन में मुश्किल से उबर पाये थे।

मेरे मुहल्ले में मेरे रिश्ते के श्री रामजीलाल मामाजी आकर बस गए थे। वह बहुत खुद्दार और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति हैं। अपनी साफ और दो-टूक बातों को कहने के चक्कर में बिना अपराध के कई महीने जेल की हवा खा चुके हैं। खैर वह किसी तरह बच गए और उन्हें सजा नहीं हुई। उनकी पत्नी जो श्री श्योदान सिंह की रिश्ते में खास मामी लगती हैं। अपने खास भांजे के घर पर दीपावली के पहले जगह की कमी और एकांत के कारण "हिस्से" एक प्रकार का मीठा पकवान सेककर लाई थीं। उन्हीं दिनों रामजीलाल के खास भांजे श्योदान सिंह का एक साल का बेटा किसी बीमारी के कारण चल बसा था। इस घटना को मुहल्ले के कुछ लोगों ने नमक-मिर्च लगाकर ऐसा तूल दिया। उनकी तरफ के मुहल्ले के लोग कहने लगे थे। रामजीलाल की पत्नी ने श्योदान सिंह के घर में टोटका कर दिया था, इसलिए उसका बेटा मर गया है। इस बात को लेकर मुहल्ले में महीनों तक बहुत हलचल के चलते पक्ष और विपक्ष में गाली-गलौज होती रहीं थीं।

हमारे मुहल्ले में कुछ सयाने कल भी थे और आज भी हैं कुछ इस समाज की झूठी सेवा करते-करते अथवा अपने समाज को बहकते-बहकाते परलोक सिधार गए हैं जिनमें से पहली पीढ़ी के सयानों में श्री परशादी लाल, श्री घूरे लाल जी थे। उनके शिष्यों में बासदेवजी आजकल भगतई कर रहे हैं। जबसे हमने अपना होश संभाला है तब से और आज भी आवश्यकता के अनुसार छोटे और बड़े भूत के हिसाब से प्रोफेसर सयानों को दूर-दूर के गांवों से बुलाया जाता रहा है।

इन सयानों में एक बात बहुत अच्छी है। यह लोग दूसरे गांव के साधारण से सयाने को भी बड़ा सयाना कहकर बुलाते हैं और उसकी खूब खातिरदारी करवाते हैं। उसके साथ-साथ भूत भागने के प्रत्येक प्रतिनिधि मंडल में गांव का सयाना भी शामिल रहता है। उसकी भी वही खातिरदारी होती है जो बाहर गांव से आये सयाने की होती है। असल बात सयाने के बहकाने की नहीं है परंतु उस सयाने को बुलाने वाले और उसकी बात सच मानने वाले लोग, जब तक इस समाज में रहेंगे तब तक इस समाज में सयानों और अंधविश्वासों का अस्तित्व रहेगा और समाज कोटि-कंटकों, कुरास्तों और कुरीतियों भरे अंतहीन मार्गों पर चलता रहेगा।

हमारी बस्ती में फूंस की झोपड़ियों के अतिरिक्त कुछ कच्चे मकान भी बने हुए थे परंतु हमारे आने-जाने का मिट्टी का कच्चा रास्ता था। उसकी कच्ची पानी की नाली जिसकी सड़ी हुई कीचड़ में मेंढक गस्त लगाते उसी में कीड़े बिजबिजाया करते और मच्छर उसमें अपने अंडे सेते रहते थे। कीचड़ सड़-सड़कर उसमें से बहुत बुरी दुर्गंध उठा करती थी। हमारे उस कुएं के पास वर्ष के सभी महीनों में लगातार पानी भरे रहने के कारण उसकी कीचड़ गर्मियों में ही सूख पाती थी। बरसात के दिनों में पूरे रास्ते कीचड़ से भरे होने के कारण हमारा बुरा हाल हुआ करता था। हम सब बच्चे उस कीचड़ में से पैरों में जूते-चप्पल न होने के कारण नंगे पांव ही जाया करते थे। उन दिनों दुकान पर से सामान लाने के बाद अपने पैरों को पानी से धो लिया करते थे। चौक में घुटनों-घुटनों तक कीचड़ हुआ करती थी। वहां दुकान पर जाना और वहां से सामान बीड़ी-माचिस, खाने-पीने की वस्तुएं लाना किसी युद्धभूमि में से लौटकर आने के समान हुआ करता था।

उन दिनों सभी जाति के लोगों के घर द्वार और जानवरों के बांधने की जगह महीनों वर्षा होने के कारण गीली हो जाया करती थीं। बरसात के दिनों में सब रास्ते बंद हो जाया करते थे। सभी जानवर महीनों कीचड़ में बंधे रहने के कारण उनको खुर पका की बीमारी हो जाया करती थी। इसके बाद गांव भर में जानवर मरने लगते थे। इससे गांव के सभी लोग घबरा से जाते थे। उस बीमारी को गांव से दूर भगाने

के लिए उपाय के तौर पर गांव में रांझा गवाया जाता था और सोमवार की रात को खप्पर निकाला जाता था। उस दिन टोटका के तौर पर किसी के घर में चूल्हा नहीं जलाया जाता था। सभी घरों में गोबर के कंडे-उपलों को जलाकर उसकी आग में बाटी सेकते थे। उसी आग पर बिना छोंके दाल भी बनाई जाती थी। उन दिनों उसमें बड़ा जायका आया करता था।

इसके बाद उसी रात को पथवारी पर पूजा अर्चना के बाद ग्यारह बजे के बाद खप्पर निकालते हुए लोगों का हुजूम सभी जाति के लोगों के घरों और मुहल्लों में हो-हल्ला करते हुए जाते और उस घर के द्वार पर रखी हांडी, गागर को लाठी मार करके जोर से फोड़ते थे। पूरे गांव में घूमने के बाद में उस खप्पर को दूसरे गांव की सीमा में रात के दो से चार बजे के बीच चुपचाप गाड़ आते थे। उसके दूसरे दिन सभी जानवरों के नीम के लहरों से पानी के छींटे लगाए जाते थे। ऐसा करने से लोगों के विश्वास के अनुसार गांव से जानवरों का रोग दूर भाग जाया करता था।

इस काम को गांव के सभी लोग पढ़े-लिखे और अनपढ़ लोग मिलकर चन्दा इकट्ठा करके किया करते थे। इस समय गांव में मुझे जाति के नाम पर छुआ-छूत नाममात्र को दिखाई देती थी। उसका कारण खप्पर निकालने वाले लोग घरों के द्वार तथा जानवरों के बंधने वाले स्थान तक ही जाया करते थे। दूसरा सबसे बड़ा कारण इस बीमारी के किसी भी जाति के लोगों में रह जाने से उसका प्रकोप पूरे गांव में होने का भय बना रहता था। इसलिए लोग इस समय जाति-पांति को अलग रखकर गांव की भलाई के लिए एकजुट होकर काम किया करते थे।

मेरे समाज में अशिक्षा के साथ-साथ धन की कमी भी है। वह लोग अपने अपनों को असाध्य बीमारी से छुटकारा दिलवाने के लिए सस्ते से सस्ते साधन ढूंढा करते हैं। भूत-प्रेत, टोने-टोटके, और नजर लगना आदि से बचाने के लिए सयानों के पास न जाएं। डॉक्टरों से इलाज करवाएं। यह बात कहने के लिए ठीक लगती है। मैं भी इस बात के लिए सौ आने अपना समर्थन करता हूं।

ऐसा करने से समाज से अंधविश्वास भी दूर हो जाएगा परंतु क्या आज भी गरीब लोग अपने जिले के सरकारी अस्पताल में मुफ्त में इलाज करवा सकते हैं? क्या दिल्ली के सर गंगाराम अस्पताल में, अपोलो अस्पताल में एवं एम्स में इलाज करवा सकते हैं? इस प्रश्न का एक ही उत्तर "शायद नहीं" के अतिरिक्त और कोई हो नहीं सकता है। सरकार ने आज तक कोई ऐसी मुहिम नहीं चलाई है जिसमें इन अंधविश्वासों को दूर करने के लिए संकल्प किया गया हो। मैं अपने समाज को क्या

दोष दूं। योरप हमसे कितना पीछे था। आज कितना आगे हो गया है। वहां सब कुछ बदल गया है। भारत देश के कर्ता-धर्ता लोग आज भी नहीं बदले हैं और न ही बदलेंगे। सरकार फाइल में कानून बनाकर शहतूश की चादर ओढ़कर गहरी नींद में एक सदी तक सोती रहेगी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है। इसी तरह के हालत बरकरार रहे और गरीबी-अमीरी का फासला लगातार बढ़ता रहा तब जरूर उसके बाद भारत में एक बड़ी क्रांति होगी जिसे कोई सरकारी ताकत रोकने में कामयाब नहीं हो सकेगी।

22

मैंने गांव के बाहर सबसे पहले अपने बचपन में रावण का मेला देखा था। बृज के नन्द गांव की तरह हमारा गांव था। मेरे निवास स्थान से बड़ा शहर अलीगढ़ लगभग पंद्रह किलोमीटर की दूरी पर स्थित था। गांव में सब जरूरतें पूरी हो जाया करती थीं। गांव के लोग कुछ सामान फेरीवालों से ले लिया करते थे। मेरी शिक्षा-दीक्षा गांव के प्राइमरी स्कूल में ही हुई थी। उस समय शहर किस चिड़िया का नाम है मैं यह नहीं जानता था।

उस दिन मुझे रावण देखने जाने के लिए घर में कितनी मिन्नतें करनी पड़ी थी। मुझे घर से कोई मेला देखने देने के लिए नहीं जाने दे रहा था। मेरी उम्र बहुत कम थी। उस दिन सबसे बड़ी समस्या किसी के साथ मेला देखने के लिए भेजने की थी। मेरे कपड़े भी धुले हुए नहीं थे। उस स्थिति में कपड़े धुल भी कैसे सकते थे। पहनने वाले एकमात्र कपड़े ही मेरे पास थे। मैंने कहा! मैं तो रावण का मेला देखने जा रहा हूं किसी को कपड़े दिखाने के लिए थोड़े ही जा रहा हूं।

रावण के मेले से मेरे लिए जलेबी मंगाने के लिए सब कह रहे थे। तुम अभी बच्चे हो इतनी दूर चलते-चलते थक जाओगे। देखा जाय तो बात भी सौ आना सही थी। उस समय बैलगाड़ी, इक्के, तांगे, रभ्भा, फिरक आदि यात्रा के साधन ही अधिक हुआ करते थे। वैसे तो साइकिल भी होती थी लेकिन गांव में दो-चार लोगों पर ही साइकिल थीं। यह सभी पैसे वालों के चोंचले समझे जाते थे। हमारी बस्ती के लोग सभी काम पैदल ही किया करते थे। पैदल ही पैठ से तेल, मिर्च, हल्दी और नोन बहुत हुआ कभी-कभी कोई सब्जी आलू आदि ले आया करते थे। पैदल जाने से हाथ-पैरों की कसरत भी हो जाया करती थी और पैसे भी बच जाया करते थे।

मेरे मुहल्ले के कई लड़के साथ में रावण का मेला देखने के लिए गये थे। सबके कपड़े कई दिन के पहने हुए और मैले-कुचैले थे। किसी के पास पाजामा-कुर्ता तो किसी के पास घुटन्ना ही था। हंसते-खेलते, उछलते-कूदते बड़ी उमंग में चले जा रहे थे। बीच में डेले से डेला मारकर निशाना लगाने का अभ्यास करते हुए चले जा रहे थे। मन में न अभावों का गम, न भूख की चिंता थी। मन तो रावण के मेले में रमा हुआ था। कभी किसी पेड़ की छाया मिलने पर सुस्ता भी लेते थे, फिर दम भरकर चल पड़ते थे।

रास्ते में रेलवे लाइन पड़ी थी। उसकी पटरी पर भी नंगे पैर चलने का घंटों अभ्यास किया था। इसके बाद तब जाकर रावण के मेले में पहुंचे थे। वहां पहुंचकर सबसे पहले प्याऊ पर मुंह-हाथ और पैर धोये थे। उसके बाद पानी पी करके रावण का मेला देखने का मन बनाया था। हम सभी बच्चे एक दूसरे साथी को खेल खिलौनों की ओर इशारा करके बतलाते थे। मेरे एक-दो साथियों ने रंगीन चश्मे खरीदे थे। चश्मा पतले पटठे का गोल बनाकर उस पर रंगीन लाल हरे रंग का आर-पार दिखने वाला चिल्ला लगाया गया था। उस चिल्ला से सब कुछ लाल में लाल और हरे रंग में हरा दिखई देता था। इसके अतिरिक्त सभी ने मेला घूम-घूमकर के ही देखा था।

रावण के मेले में कितना विशाल हुजूम था। मैं पहली बार इतनी भीड़ एक साथ देख रहा था। उस भीड़ में सबके चेहरे खुशी से चमके हुए थे। मुझे उन्हें देखकर उस दिन बड़ा आनंद मिला था। एक तरफ बच्चों के झूले झुलाने वालों की लाइन थी। एक लाइन में गरम-गरम आलू के बड़े तले जा रहे थे। एक लाइन में गरम-गरम जलेबियां सिक रही थी। कहीं पर चाट-पड़ाके (गोल गप्पे, गुपचुप, पानी पूरी, पुचका पूरी) तो कहीं पर आलू की टिक्की बिक रहीं थीं। जलजीरा वाला गा-गाकर के जलजीरा बेच रहा था। कहीं फिरकनी गोल-गोल घूमती हुई बिक रही थी। कहीं पर बुढिया के बाल की मिठाई बिक रही थी। भाई क्या-क्या बताऊं सब नये-नये रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए थे। उस मेले में कहीं बच्चों के लिए पीपनी (बांसुरी) बिक रही थी। गुब्बारे वाले गैस के उड़ने वाले गुब्बारे बेच रहे थे परंतु यह सब अधिक पैसे वालों के लिए थे। मैंने पूरा मेला घूम-घूमकर देखा था। मुझे सब अच्छा लग रहा था परंतु मैं उस दिन कुछ ले न सका था।

मुझे बचपन से मीठा बहुत पसंद है। घर में मिठाई बहुत कम आती थीं लेकिन गुड़ का भेला जरूर आ जाया करता था क्योंकि खाना खाने के बाद उसे थोड़ा सा खाने के बाद हरहारत दूर हो जाया करती थी। मैं घर में रखे हुए गुड़ में से चुपके

से एक गुड़ की डली कमीज की जेब में रखकर बाहर निकल जाया करता था। उसके बाद मुहल्ले में घूमते हुए उस गुड़ को खा लिया करता था। उन दिनों सूखी रोटी के अतिरिक्त और खाने को क्या मिला करता था।

इस मेले में मेरे लिए बस जलेबी बनी थी। मेरे पास उतने ही पैसे थे। सो मैंने एक पाव जलेबी खरीद करके वहीं जमीन पर पैरों के बल उकडू बैठकर बड़े मन से खायीं थी। आहा! उन जलेबियों का क्या स्वाद था। जलेबी खाते हुए जीभ जलने के साथ-साथ उनसे रस टपक-टपक कर गिर रहा था। बीच-बीच में मक्खियां भी जलेबी में हाथ मार रही थी। मैं उन्हें उड़ाने की भरसक कोशिश करता रहा था परंतु वह कहां मानने वाली थीं। मैंने जब जलेबी पूरी खा ली थीं, उसके बाद उस कागज पर लगी चसनी को भी जीभ से चाट लिया था, जिस कागज पर जलेबियां रखी गई थीं। उसके बाद मैंने भरपेट पानी पिया था। शाम को जब रावण में आग लग गई थी, मेले से उसके बाद अपने साथी लड़कों के साथ चल पड़ा था। उस दिन देर शाम अंधेरा घिरने तक थका-मांदा अपने घर लौट कर आया था। उस दिन हमारे गांव से कई बैगाड़ियां भी मेलें में गई हुई थीं परंतु हम आछूतों के बच्चों को किसी ने अपनी बैलगाड़ी में नहीं बैठाया था।

23

मेरे घर के जिन लोगों से मेरा खून का रिश्ता था, खून का रिश्ता है, और उनसे खून का रिश्ता रहेगा। मेरे घर, परिवार का एक भी सदस्य मुझे आज तक नहीं समझ पाया है अथवा भविष्य में मुझे समझ पाएगा इसकी बिलकुल उम्मीद नजर नहीं आती है। बचपन से लेकर आज तक, पहले शिक्षा के लिए, उसके बाद हिंदी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए, शहर-शहर घूमता-फिरता रहने वाला एक बंजारा ही तो हूं। मैं गैरों के लिए गैर था, उन्होंने मुझे गैर समझा फिर भी कोई बड़ी बात नहीं है जब अपने भी गैरों की तरह बर्ताव करने लगें तब दिल में एक चुभन सी होती है।

मैं एक अकेला बंजारा, अपनी किस्मत का मारा।
शहर-शहर घूमता फिरता, मैं एक अकेला बंजारा ॥

अब मुझे अपने जीवन के इस मोड़ पर संत कबीर साहब की बात सच सी लगती है।

झूठी माया, झूठी काया, झूठा यह सब सनसारा।
झूठे रिश्ते, झूठे नाते, झूठा सकल पसारा ॥

आज जब मेरे जीवन का बहुत सा समय व्यतीत हो चुका का है तब इस बात को समझ पाने में कामयाब हो पाया हूं जिस बात को सदियों पूर्व निर्गुण संत कवि समझ और कह चुके हैं।

मैं झूठ बोलने से सदैव परहेज करता हूं और न कभी किसी के धन को अपना समझता हूं। किसी भी तरह का गलत काम करना मेरे लिए पाप है। सुबह और संध्या के समय खाना मिल जाने पर बड़े सुख और शांति का अनुभव करता हूं। इस मायने में आप मुझे संतोषी जीव कह सकते हैं। सरकारी पैसा छूने से भी मुझे बहुत डर लगता है। जीत कर भी कभी जीत नहीं सका बल्कि हमेशा हारने वाला इकटंगा पहलवान हूं। उस सेना का सेनानायक हूं जिसने हमेशा लड़ना सीखा है परंतु कभी जीत का मुंह नहीं देखा है। आज मैं सब कुछ जीतकर हारने वाला ब्रह्मराक्षस प्रेत, हारा हुआ सेनानायक हूं। मुझसे सबने फायदा उठाया है। सभी ने खाना-खाकर मुझसे हाथ पोछे हैं ऐसा गमछा, तौलिया हूं। मुझे सबने खूब बजाया है ऐसा प्यारा झुनझुना हूं। मैं एक सर्कस का विदूषक हूं जिसकी व्यंगपूर्ण सच्ची बातें सुनकर सब खिलखिलाकर हंसी का ठहाका तो लगते हैं परंतु उसकी बातों को समझते नहीं हैं। सभी लोग नासमझी में उन बातों को हवा में उढ़ा देते हैं। मैंने अब तक अपने जीवन में कोई अपराध नहीं किया है। मुझे तो बिना किसी जुर्म के अपराधी बनाया गया है। उसी तरह जिस तरह भारत में प्रतिवर्ष आंकड़े बढ़ाने के लिए लाखों दलित और छोटी जातियों के लोग अपराधी बना दिये जाते हैं।

इस संबंध में मुझे अपने गांव की एक घटना स्मरण हो रही है। यह बात उन दिनों की है जब साथा चीनी मिल नया बनाया गया था। उसमें सीताराम पुत्र श्री खचेरु मल के लड़के पैन मैन की नौकरी पर लग गये थे। उनकी उम्र उस समय उन्नीस बरस की रही होगी। उन्होंने हम सब गांव के बच्चों को बताया था। मिल में कैसे गन्ने के रस से चीनी बनाई जाती है। चीनी मिल में कैसे सब काम स्वचालित मशीनों से किया जाता है। एक तरफ से गन्ना डालते हैं और दूसरी ओर से चीनी निकलती है। इसके अतिरिक्त हमारे मुहल्ले के लोग उन दिनों बड़ी अच्छी तरह से खा-पी रहे थे। इसका एक बड़ा कारण जर्मनी पॉवर हाउस की जली हुई कोयले की राख थी। मुहल्ले के लोग उसे छानने का काम किया करते थे। उसमें उनकी बड़ी कमाई हो जाया करती थी। उसका एक कारण उस जले हुए कोयले से ईंटों को पकाने

का काम किया जाता था। उस कोयले से ईंटों को पकाने की छोटी-छोटी भट्टियां लगाई जाती थीं इसलिए उन दिनों उस जली हुई राख की पूरे इलाके में बहुत बड़ी मांग थी। हमारे मुहल्ले के जाटव अच्छा कैसे खा-पी रहे हैं। इससे भी गांव के उच्च जातियों के लोगों को कुछ जलन होती थी।

उन दिनों थाने के दारोगा से किसी ठाकुर साहब की कहासुनी हो गई थी। उसने उस दरोगा को लाइन हाजिर करवाने के उद्देश्य से हमारे गांव के बराबर में पेड़ काटकर जाम लगवा दिया था। ठाकुर साहब ने उसमें एक बस को भी लुटवा दिया था। बस लूटने की इस घटना की जांच के चलते उस पूरे इलाके में पकड़ा-धकड़ी चल रही थी। इस घटना के होने से गांव से ठाकुरों को मौका मिल गया था। उन्होंने इस केस में कोरिया, कढेरे, तेली, तमोली, फकीर, फुल्ला, दर्जी, धीमर और जाटव आदि कई जातियों के लोगों के पच्चीस-तीस लड़कों के नाम लिखवा दिए थे। उसमें से दस-ग्यारह लड़के और कुछ उम्रदराज जाटवों के नाम इस केस में लिखवा दिए गए थे। उस समय देवीसिंह अशोक एस.पी. अलीगढ़ देहात का कार्य भी देख रहे थे। उनसे बड़ी भाग-दौड़ और खातिर खुशामद के बाद इस केस को खत्म करवाया गया था। इसके बाद गांव के कुछ जाटवों के मस्तिष्क पर इस झूठी घटना का बड़ा भयंकर भय सवार हो गया था। इसके बाद बस्ती के कई परिवार गांव छोड़कर सदा-सदा के लिए दिल्ली में बस गये थे। उन्हें जो परती ऊसर जमीन आबंटन में मिली थी, उसको भी उन्होंने औने-पौने दामों में बेच दिया था।

बचपन से लेकर आज तक घर के लोग मुझे कभी नहीं समझ सके हैं परंतु मेरा दुर्भाग्य है मेरे अपने भी मुझे आज तक समझ पाने में नाकामयाब रहे हैं। मेरी मां जिसने मुझे भेड़िये के मुंह का निवाला बनने से बचाया था। वह सदैव परिवार का संतुलन बनाने में दिन-रात दुबली होती रही है मेरे पिताजी, मेरे रिश्तेदार, मेरे मित्र, मेरे गांव के लोगों का झुकाव परिवार की तरफ अधिक और मेरी तरफ कम रहा है। मुझे लगता है सभी लोग मुझे झुकाने पर तुल रहे हैं सभी अपनों ने इस गरीब को छोड़कर अन्य सभी का साथ दिया था। इन सभी में से मेरे पक्ष में भले ही आज तक कोई नहीं बोला है, भले मेरे भाग्य ने मुझे प्रतिपल झुकाने में कोई कोर कसर बाकी नहीं रखी है और भले यह नाचीज मुदर्रिश किसी को आज तक अपना न बना सका हो परंतु मुझे अपने पढ़े-लिखे होने पर इस दृष्टि से गर्व है मैं कम से कम उस भीड़ का हिस्सा नहीं हूं जिसका इस दुनिया में संख्या बल के अतिरिक्त कोई वजूद ही नहीं है।

मैंने अपने जीवन में बहुत से अपराध किए हैं। उन अपराधों में से कुछ इस प्रकार हैं। घर के सदस्यों को घर साफ-सुथरा रखने के लिए कहने वाला भी मैं हूं। जब घर में मेरी कोई नहीं सुनता है तब घर के लोगों के लिए मजबूरन बुरा-भला कहने वाला बाप मैं ही हूं। अपने बच्चों से पढ़-लिखकर सच्चरित्र व्यक्ति बनने के लिए कहने वाला बाप भी मैं ही हूं। बच्चों की बात मानकर उनके मन मुताबिक कक्षा में प्रवेश पर सब कुछ बेचकर खर्च करने वाला अभागा बाप भी मैं हूं। जब भी मुझे बाजार जाने अवसर मिलता वहां से लौटते समय खाने की वस्तुएं लाने वाला अभागा बाप भी मैं ही हूं।

आज मैं भूखा-प्यासा रहकर अपनी मेहनत के बल पर बड़ी मुश्किल से उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाया हूं। क्या-क्या लिखूं? मैंने कैसे-कैसे दिन देखे हैं। आज उन्हें लिखना बहुत आसान समझता हूं परंतु अब उन्हें याद करना बहुत मुश्किल लगता है। उन दिनों को फिर से याद करने पर बहुत कष्ट होता है। मुझे बहुत रोना आता है। घंटों रोता रहता हूं। जब दिल हल्का होता है तब फिर लिखने लगता हूं। उन दिनों जब तक मेरे पास चावल रहते थे। तब तक उन्हें पकाकर ही खाता था। जब चावल खत्म होने वाले होते थे। तब कच्चे चावल खाने के लिए प्रयोग किया करता था। एक मुट्ठी कच्चे चावल खाकर रात बिताना कितना कष्टकर होता है लेकिन मुझे कच्चे चावल को खाने से एक फायदा होता था वह शीघ्रता और आसानी से पच नहीं पाते थे। दूसरे मुझे अपने काम चलाने लायक उससे शक्ति भी मिल जाया करती थी। इस दुनिया में उस रात की बेबसी का क्या कोई मोल दे पाएगा? मेरी इस मजबूरी को पढ़कर आज कौन इसे समझेगा। आज कौन मुझे तमगे देगा। तमगे देकर क्या होगा। क्या तमगे पाकर मेरा बीता हुआ कल फिर से लौटा पाएगा। मुझे आज तमगों की बिलकुल आवश्यकता नहीं है।

24

महात्मा श्रीकृष्ण, महात्मा श्रीराम, महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा महावीर स्वामी, महात्मा रामानन्द, महात्मा कबीर, महात्मा रविदास, महात्मा गुरु नानक देव और न जाने कितने महात्माओं, ऋषियों, समाज सुधारकों की जन्मभूमि, कर्मभूमि, तपोभूमि और पुण्यभूमि रही भारतभूमि कितनी पावन और पवित्र है। इसकी सभ्यता, संस्कृति

और साहित्य को आज भी दुनिया में बहुत प्राचीन माना जाता है। चीन में भारत के संबंध में एक धारणा बहुत प्रचलित है चीन देश के लोगों की मान्यता है। सदाचारी सत्यवादी, जीवन यापन करने वालों को भारत की पुण्य भूमि में जन्म मिलता है। क्या बात है इस देश की हर बात निराली है।

"जहां डाल-डाल पर सोने की चिड़ियां करती है बसेरा,
वो भारत देश है मेरा, वो भारत देश है मेरा"

भारत जैसे प्राचीन, समृद्धशाली देश में जबकि दुनिया मंगल ग्रह पर दूसरी दुनिया बसाने की तैयारी कर रही है। यहां इस देश में आज भी किसी छोटी जाति के व्यक्ति का उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद, जाति के श्राप से बच पाना, बहुत संभव कार्य नहीं कहा जा सकता है। हम जहां-जहां जाते हैं हमारे साथ-साथ हमारी जाति हमसे पहले वहां पहुंच जाती है।

मुहम्मद रफी द्वारा गाये गये गाने की तरह—

"तुम जहां-जहां रहोगे, मेरा साया साथ-साथ होगा।
तुम जहां जहां रहोगे..."

हम समझते हैं हमारी जाति के बारे में किसी व्यक्ति को मालूम नहीं होता है इसलिए हममें से अधिकांश दलित जीवन भर अपना दोहरा जीवन जीते रहते हैं। मुझे लगता है हम अपना दोहरा जीवन जीकर अपने और अपने समाज के साथ डॉ. अंबेडकर, जोतिबा फुले और महात्मा गांधीजी की भाषा में भयंकर पाप कर बैठते हैं।

हमारे अंदर एक भय सदैव बना रहता है कहीं किसी को मेरी जाति के बारे में पता न चल जाए। इस तरह हम डर-डर कर जीवन जीने के अभ्यस्त हो जाते हैं ऐसा करने से हमारा मन सदैव विचलित सा रहता है। इस फानी मायावी दुनिया में दिखावा करते-करते हम न घर के रहते हैं न घाट के। हम इस प्रकार से बिना उद्देश्य अपना पूरा जीवन भूरे लाल मुंह के खजुला बंदर की तरह खुजलाते-खुजलाते, दांत निपोरते और पलक-झपकाते-झपकाते बिता देते हैं। मैंने अपने जीवन के कार्यकाल में, अपने दलित जातियों के शिक्षित व्यक्तियों की कमोवेश यही स्थिति देखी है। इस मायने में मुझे हमारे अशिक्षित भाई-बंधु लोग हमसे कहीं बेहतर स्थिति में नजर आते हैं जिन्हें अपने द्वारा अर्जित किये गये अनुभव से समाज की पेचीदीगियों का पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान होता है। वह कम से कम अपना सारा जीवन छिपकर रात में विचरण करने वाले जीवों की तरह तो नहीं बिताते हैं। वह सदैव अपने बाप को बाप कहते हैं।

मुझे अपने इस जीवन में देश के कई शहरों में रहने का अवसर मिला है जैसे अलीगढ़, दिल्ली, गोवा, वर्धा आदि-आदि। अपने इस प्रवास और कार्यकाल के दौरान इन स्थानों में जब-जब, जहां-जहां रहा, खुलकर अपनी जाति का होकर ही रहा हूं। मुझे जाति छिपाकर रहने में बड़ी घुटन-सी महसूस होती है लेकिन मेरा दुर्भाग्य है मेरे किसी भी दलित साथी ने मुझे अपनी जाति के बारे में मुझसे पहले कभी खुलकर नहीं बताया है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है भारत में जितनी दलित जातियां रहती हैं उनके लोगों की इतनी बड़ी संख्या है उसका मुकाबला दुनिया का कोई तंत्र नहीं कर सकता है। वह एक बार मात्र पैदल जिधर से भी निकल जाएंगे उधर मैदान साफ होत नजर आएगा। उस टीडी दल (टिड्डा दल) की तरह जो जिधर से और जिस खेत से निकल जाती हैं वहां उस खेत में सूपड़ा साफ और हाजिरी माफ कर देती है परंतु अभी तक उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है। उनमें आज भी एकता नहीं है। उनमें आज भी बिखराव है।

भारत के दलित लोग ईसाइयों के धर्मग्रंथ बाइबल की बेबल की मीनार की कहानी के अंत की तरह आज तक इधर-उधर भटक रहे हैं। यह कहानी इस तरह से है। ईसाई धर्मालंबियों के विश्वास और मतानुसार जब आदम और ईव ने स्वर्ग का फल शैतान की बातों में आकर फल खा लिया था। तब ईश्वर ने उन्हें अपने स्वर्ग से पदच्युत कर दिया था। वह इसी जमीन पर आकर रहने लगे थे। आज जिस जमीन पर सवर्ण और दलित जातियों के लोग रहते हैं। कालांतर में आदम और ईव का परिवार भारत की दलित जातियों और मुसलमानों की तरह बढ़ता जा रहा था। उनकी एक बोली थी। एक उनका खाना-पीना था। सब जन एक जगह रहते थे। उनका एक लक्ष्य था।

तब उन सबने मिलकर सोचा क्यों न स्वर्ग के आने जाने के लिए एक मीनार बनाई जाए। वह लोग रोज खाते-पीते हुए मीनार बनाने के काम में धाय-पाय से लग गये। जब मीनार बहुत बड़ी होने लगी, तब ईश्वर से सोचा! यह बेबल की मीनार किसी तरह पूरी बन गई, तब यह लोग स्वर्ग में आ जाएंगे और इससे स्वर्ग का महत्व कम हो जाएगा। तब ईश्वर ने अपनी शक्ति के बल पर आदम के बेटों को अलग-अलग भाषा देकर तितर-बितर कर दिया था। अब वे लोग आपस में एक दूसरे की बात नहीं समझते थे। वह इस प्रकार कुछ दिनों में अपने लक्ष्य से भटक गए और बेबल की मीनार का काम बीच में ही रुक गया। कालांतर में बेबल की मीनार टूट-फूट गई। आज ठीक इस बेबल की मीनार की तरह दलित जातियों के

लोग अपने लक्ष्य से भटक कर बिखरे हुए हैं यही वह मुख्य कारण है जिस कारण से दलित लोग आज गरीब, मजलूम और असहाय जीवन यापन कर रहे हैं।

दूसरा उदाहरण हमारे घरों के आस-पास चक्कर लगाने वाली बिल्ली का ले सकते हैं, बिल्ली की प्रजाति दुनिया भर में पाई जाती है। आप किसी भी देश की बिल्ली के स्वभावगत लक्षणों की परख करके देख सकते हैं। वह दूध पीते समय अपनी आंख बंद कर लेती है परंतु वह अपनी आंख बंद करके समझती है उसे इस घर में कोई देख नहीं रहा है लेकिन दोस्तो वह सदैव अपने कान खुले रखती है। उसके सुनने की क्षमता इनसान से कई गुना अधिक होती है। वह सदैव अपने आप पर विश्वास करती है। इस दुनिया में कोई अकेला गाई का लाल ऐसा नहीं जन्मा है जो बिल्ली को घर के अंदर बंद करके, डंडे से मार कर दिखा सके। ऐसा करना शायद असंभव प्रतीत होता है।

मेरे इस वक्तव्य के संबंध में तीसरा उदाहरण आस्ट्रेलिया में पाये जाने वाले शुतुरमुर्ग पहलवान का ले सकते हैं। शुतुरमुर्ग आस्ट्रेलिया में पाया जाने वाला एक बेहद ताकतवर पक्षी होता है इसका शरीर बहुत बड़ा और सिर बहुत छोटा होता है। इसके पंख भी होते हैं। यह पक्षी अपने पंखों के बल पर बहुत कम उड़ पाता है। यह उड़ने के बदले तेज दौड़ने के दौरान अपने पंखों का प्रयोग अपना संतुलन बनाने में अधिक करता है। यह अपनी दो टांगों के बल पर रेत में बहुत तेजी के साथ दौड़ता है इसकी दौड़ का दुनिया में कोई मुकाबला नहीं कर सकता है लेकिन इसकी विशेषता होती है जब शुतुरमुर्ग पहलवान शिकारी से बचने के लिए रेत में भागते-भागते थक जाता है तब वह रेत में अपना सिर छिपा लेता है, ऐसा करने से शुतुरमुर्ग अपने मन में विश्वास कर लेता है वह शिकारी की नजरों से छिप गया है अब उसे कोई नहीं देख रहा है। उसी स्थिति के दौरान शिकारी पीछे से आकार धोखे से उस पर छिपकर हमला कर देता है। इस दुनिया के छदम वेषों के घात-प्रतिघातों से कोई कहां तक बच पाएगा। दलितों ने झूठ बोलना और घात-प्रतिघात करना अभी नहीं सीखा है इसलिए यह समाज पिछड़ रहा है। हमको इतिहास को पढ़कर सीख लेने की बहुत आवश्यकता है। हमें आगे बढ़ना है तब आज के युग में सत्यवादी हरिश्चंद्र की सोच और उस युग में बने रहने के विचार पर पुनर्विचार करना पड़ेगा।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है। दुनिया की किसी मिलिट्री को भी इतने कठोर परिश्रम के प्रशिक्षण और अभ्यास से नहीं गुजरना पड़ता होगा जैसे भारत की दलित जातियों के लोग कठिन से कठिन परिस्थिति में भूख-प्यास और नारकीय जीवन जीने

के धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाते हैं। दलित लोग परिश्रमी, ईमानदारी, जवाबदारी, लगन, हौसला, आदि-आदि में भारत की किसी भी जाति के लोगों के मुकाबले उनसे सदैव आगे थे, आगे हैं और आगे ही रहेगे।

भारत सरकार इन दलित जातियों में विषेश रूप से चमार, जाटव, महार, भंगी, वाल्मीकि, आदि के लोगों का प्रयोग मिलिट्री में करना प्रारम्भ कर दे तो दुनिया की कोई भी ताकत भारत को शिकस्त नहीं दे सकती है। भारत में इन जातियों के लोग बहुत ईमानदार, मेहनती और विश्वसनीय होते हैं इस बात को भारत सरकार या तो जानती नहीं है अथवा सब कुछ जानते हुए अनजान बनने की कोशिश कर रही है ताकि इस लोगों और इन जातियों को उनके हक और अधिकारों से सदैव पीछे रखा जाता रहे।

भारत सरकार इस देश की सब निम्न जातियों के लोगों के लिए और कुछ नहीं बल्कि सिर्फ और सिर्फ कोई भी काम मुहैया करवा दे। तब इन जातियों के सब लोग उसके बदले में भारत की तकदीर बदल सकते हैं लेकिन दुर्भाग्य इस देश के कर्णधार आज तक दिल्ली से कोलकाता और कोलकाता से मुंबई, मुंबई से चैन्नई, रूस, चीन, जापान, लंदन, अमरीका, कनाडा, ईरान और सबसे अधिक पाकिस्तान और बंगलादेश को देखती रही हैं।

आम आदमी और आम आदमी की भूख और प्यास उसे दिखाई नहीं देती है। उसे सब गलत कामों में अकलियतों और गरीब छोटी दलित जातियों के लोगों की कारस्तानी नजर आती है। अमीर आदमी उसे बेदाग नजर आते हैं जबकि सभी दाग अमीर आदमियों ने अपने फायदे के लिए लगाए होते हैं। गरीब आदमी तो रिक्शा चलाकर, दाने भूंजकर, साइकिल का पंचर लगाकर, गंदगी साफ कर अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पालना चाहता है। जब कमरतोड़ मेहनत से उसका पेट ही नहीं भर पाता है, तब वह गलत काम क्या खाक करेगा। गरीब आदमी किसी तरह से मेहनत करके जीना चाहता है लेकिन उसे उसकी मेहनत के बल पर जीने भी नहीं दिया जाता है। उसी प्रकार शुतुरमुर्ग पहलवान पक्षियों में बेहद ताकतवर पक्षी है जो फल-फूल, घास-पत्ती खाकर जीना चाहता है लेकिन उसका शिकार धोखे से ही किया जाता है। उसी धोखे से आज दलित जातियों के लोग गैर उच्च लोगों द्वारा धोखे से ही छले जा रहे हैं परंतु उन्हें अर्थ साधनों पर काबिज होने के लिए शारीरिक श्रम के साथ-साथ व्यापार में हाथ आजमाने होंगे। तब धन उनके पास चलकर स्वयं चलकर आ जाएगा। मेरे विचार से दलितों को अपने नए समाज के नव-निर्माण के

लिए आने वाले कल में सत्य का सीमित मात्र में उपयोग के साथ घात-प्रतिघातों के वार को अपनी बुद्धि से तराशते हुए आगे बढ़ने के हुनर सीखने पर बल देना होगा।

25

उस समय मेरी उम्र बहुत अधिक नहीं थी परंतु देश के राजनेताओं को देखकर राजनीति की ओर मेरी रुच बढ़ने लगी थी। यह बात उन दिनों की है जब हमारे गांव में प्रधान का चुनाव होने वाला था। इस चुनाव में प्रधान पद के चुनाव के लिए गांव में छह प्रत्याशी खड़े हुए थे, उनमें एक ब्राह्मण, एक जाटव, एक गड़रिया, एक गुसाई, एक खटीक और एक ठाकुर को मिलाकर कुल छह लोग खड़े हुए थे। इस चुनाव को लेकर गांव में सरगर्मियां बढ़ने लगीं थी। जबसे देश आजाद हुआ था तब से लेकर आज तक का इतिहास रहा था। गांव की प्रधानी ठाकुरों के पास ही रही थी। प्रधान का चुनाव सभी जीतना चाहते थे। इतने बड़े पद के लिए किसी के पास ईमानदारी और इंसानियत होना भी जरूरी होती है सभी लोग ढोल पीट-पीट कर कह रहे थे। इस गांव में उनसे बड़ा खलीफा और फरिश्ता कोई नहीं है। इस बार गांव वाले किसी इंसान को प्रधान बनाना चाहते थे। जब तक चुनाव नहीं हुआ तब तक गांव में अलीगढ़ की प्रदर्शिनी का सा माहौल था। उस चुनाव में बड़ी गहमा-गहमी और गरमा-गरमी रही थी। उन दिनों गांव में लोग एक दूसरे को रात में भी सोने नहीं देते थे और न कोई किसी को दिन में काम धंधा ही करने देता था। गांव में कोई भी किसी से चुनान के बाबत बात करने से डरता था क्योंकि उन दिनों गांव में जासूसों की बाढ़ सी आ गई थी।

गांव में सब लोग राजनीति के चक्कर में घनचक्कर बने घूम रहे थे। इस चुनाव में कोई कहता फिरता था—यह मेरी प्रतिष्ठा का सवाल है और कोई कहता मेरी मान मर्यादा का सवाल है, किसी की इज्जत रख दो, किसी की लाज रखने का चुनाव बन गया था। एक-दो प्रत्याशी तो जो कभी टोपी नहीं पहनते थे लेकिन हाथ में टोपी लेकर घूमते फिर रहे थे। उनके सामने जो भी मिल जाता उसी के पैरों में टोपी रख देते थे, कोई-कोई प्रत्याशी बोतल के दम पर चुनाव जीतने का दम भरता था। उन दिनों सच में देखा जाय तो गांव में शराब की नदियां तो नहीं बही होंगी

हां लेकिन नालियां जरूर बह गई थीं। कोई प्रत्याशी जिसकी देह में जान नहीं थी और ऐंठा-ऐंठा घूमता था। वह अपनी लाठी को तेल पिला कर मोटा कर रहा था। लाठी के बल पर वोट लेंगे। लो भाई लो, कर लो बात, लाठी से तो भूत भी भागते हैं तब हम मामूली इंसानों की क्या बिसात थी जो वोट बक्से में नहीं डालते।

इस चुनाव में प्रधान का पद बड़ा होता है उसके लिए लोग लड़ें और मरें यह तो ठीक भी जान पड़ता है परंतु चुनाव में सबसे बड़ी मजे की बात यह थी कि उस चुनाव में पंचायत के सदस्य पद का भी बड़ा कड़ा मुकाबला हुआ था। इस चुनाव में प्रत्येक वार्ड से एक सदस्य का चुना जाना तय था। उसके लिए भी प्रत्येक वार्ड में कड़ी स्पर्धा हुई थी। एक सदस्य पद के लिए हर एक वार्ड से पांच, छह और सात प्रत्याशी तक खड़े हो गए थे। इस बात को दूसरे शब्दों में कहें, तब गहरी राजनीति और साजिश के चलते जबरन सदस्य पद के लिए प्रत्याशी खड़े कर दिये गये थे।

इस चुनाव में, मैं भी पंचायत सदस्य का चुनाव लड़ने के लिए खड़ा हो गया था। मेरे वार्ड में से भी चार प्रत्याशी पंचायत सदस्य का चुनाव लड़ने के लिए खड़े हो गए थे। इस प्रकार मेरे लिए भी बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई थी। पंचायत सदस्य के चुनाव के लिए खड़े होकर चुनाव हार जाने का भी भय बना हुआ था। उससे भी अधिक हारने के बाद लज्जाजनक स्थिति उत्पन्न होने वाली थी। इस सबसे बचने का एक ही उपाय शेष बचा था कि गांव में डेरा डालकर चुनाव लड़ा जाए। यह सब तो अपनी जगह ठीक था लेकिन मेरे लिए चुनाव ही सब कुछ नहीं था। मुझे मुस्लिम यूनिवर्सिटी में अपनी कक्षाएं भी करनी होती थी। परीक्षा की तैयारी के साथ सेशनल परीक्षा भी देनी थी। इतना ही नहीं अपनी परीक्षा देकर उसमें पास भी होना बहुत आवश्यक था। मुझे इस बात का बाद में एहसास हुआ कि चुनाव लड़ना कहीं हद तक ठीक है लेकिन चुनाव लड़ना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए मुनासिब नहीं है।

इस चुनाव में मेरे लिए सबसे बड़ी मुश्किल आधे वोटर ठाकुर, ब्राह्मण और आधे वोटर जाटवों अर्थात चमारों का होना था। इस सबसे विचित्र बात दो जाटव, एक ठाकुर, एक ब्राह्मण को मिलाकर चार प्रत्याशी खड़े कर दिये गये थे। इस स्थिति में जीतना भी मुश्किल लग रहा था। इसके लिए दिनभर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में अपनी कक्षाओं को करना और रात में अपना पंचायत सदस्य का चुनाव प्रचार करना। इस तरह से मुझे लगभग पंद्रह दिन तक बड़ी मेहनत करनी पड़ी थी। उन दिनों मेरा खाना-पीना छूट गया था।

मेरे पिताजी कहते थे तुम क्यों चिन्ता कर रहे हो, तुम्हें हराने वाला कोई भी नहीं है। तब मैं उनसे कहता था मुझे जीतने से अधिक पंचायत सदस्यों से सबसे अधिक वोटों से जीतना अच्छा लगेगा। मैंने अपना ध्यान भीड़ जुटाने से ज्यादा वोटरों के गणित पर अधिक लगाया था। पिछले पांच साल में हुई घटनाओं के आधार पर एक-एक वोटर से मिलकर पहले उसे समझाया और उसके बाद उससे कहा था। अब आपकी मर्जी है, आप जिसे चाहें वोट दे सकते हैं। मैंने यह भी ध्यान रखा कि किस वोटर की किससे बनती है। किस व्यक्ति को किससे बदला लेना है।

वोट डालने वाले दिन सब प्रत्याशियों की पर्ची प्रत्येक वार्ड में वोटरों के घर पर भिजवाई गई थीं। इस उम्मीद में उन्हें वोट शायद मिल ही जाएंगे। वोट डालने वालों के लिए साग-पूड़ी और हलुआ, रायता बनाने के लिए सुबह चार बजे से ही हलवाई लग गए थे। शाम तक प्रत्याशी वोटरों को गाड़ियों से भर-भर कर और पैदल ढूंढ-ढूंढकर लाते रहे थे, उस चुनाव में किसी को कंधों पर डालकर, किसी को कमर पर डालकर, तो किसी को चारपाई पर डालकर, शाम अंधेरा होने तक वोटरों की ढुलाई चलने के साथ-साथ वोट भी पड़ते रहे थे। प्रत्याशियों का भाग्य बक्सों में बंद हो जाने के बाद भी लोग नहीं सो पाये थे। बक्सों के पास भी कई दिन तक लोगों ने अपना डेरा डाल रखा था। वोटों की गिनती वाले दिन चुनाव के परिणाम की घोषणा हुई थीं। तब जाकर लोग अपने घर पर बैठे थे। लोग उस रात सोये नहीं थे, जो प्रत्याशी हार गए थे, वे रातभर वोटरों को मजा चखने के तुगलकी फरमान जारी करते रहे थे।

इस तरह जब चुनाव का परिणाम आया था तब मुझे पूरे गांव के पंचायत के सदस्यों से अधिक वोट मिले थे। पंचायत सदस्य का चुनाव जीतने के बाद अब उप-प्रधान का चुनाव होना था। इसके लिए भी गांव में बहुत सरगर्मियां चलती रहीं थीं। बारह पंचायत सदस्य थे और तेरहवां वोट प्रधान का था। इस चुनाव को सम्पन्न करवाने के लिए ब्लॉक से सेक्रेटरी, चपरासी और दो पुलिस के सिपाही आए थे। हम लोगों ने इस चुनाव को शांति से सम्पन्न करवाने के लिए सलाह की थी ताकि दूसरी विरोधी पार्टी को इसमें विघ्न डालने का अवसर न मिल सके। अपने एक मित्र के साथ मैं उस दिन उप-प्रधान का चुनान लड़ने के लिए प्राइमरी स्कूल पर जा रहा था। उस दिन गांव के ठाकुर साहब ने अपने साथ आठ-दस लोगों को लेकर मुझे रास्ते में रोक लिया। उन्होंने मुझसे पूछा! उमेश कहां जा रहे हो?

मैंने उनसे कहा! उप-प्रधान का चुनाव लड़ने के लिए जा रहा हूं।

उन्होंने मुझसे कहा-अच्छा!

चुनाव लड़ने के लिए जा रहे हो। वोट तो हमारे पास भी हैं। हमसे वोट नहीं मांगोगे।

मैंने उनसे कहा! ठीक है बड़ी खुशी की बात है, आप मुझे वोट देना चाहते हैं, आप मुझे अपनी खुशी से वोट दे दीजिये।

उन्होंने मुझसे पूछा! हमसे वोट नहीं मांगोगे?

मैंने कहा! नहीं? परंतु आप फिर भी वोट देने के इच्छुक हैं तब आपका स्वागत है।

उन्होंने फिर से कहा! तुम तो बड़े हरिश्चंद्र हो? किसी से वोट नहीं मांगते हो।

जी हां! मैं इस समय हरिश्चंद्र से कम नहीं हूं। इसके बाद बात खत्म हो गई।

यह चुनाव उस दिन सुबह दस बजे प्रारम्भ हुआ था। उसी समय विरोधी पार्टी के एक प्रत्याशी ने भी अपना उप-प्रधान के चुनाव के लिए पर्चा भर दिया था। उस दिन सुबह से लेकर शाम पांच बजे तक चुनाव चलता रहा था। हम सभी लोग पूरे दिन अपने हाथ पर हाथ धरे हुए दूसरी पार्टी के सदस्यों का वोट डालने के लिए इंतजार करते रहे थे परंतु उप-प्रधान के लिए विरोधी पार्टी का कोई सदस्य वोट डालने के लिए नहीं आया। तब हम लोगों ने चार बजकर तीस मिनट पर अपने सभी वोट डाल दिये थे परंतु अपने पक्ष का एक वोट आखिरी बुरे वक्त के लिए बचाकर रख लिया था। इसके बाद विपक्ष से वोट न डालने के पीछे किसी बड़ी साजिश की शंका हो गई थी। हम लोगों ने इस विरोधी पक्ष की इस बड़ी साजिश का खात्मा बड़े अदब, समझदारी और प्यार से किया था। हम लोगों ने अपने एक सदस्य का एक वोट विरोधी पार्टी को डाल दिया था। उसके बाद ठीक पांच बजकर पांच मिनट पर चुनाव सम्पन्न होने की सेक्रेटरी द्वारा घोषणा की गई थी। उसके बाद मत पत्रों की गणना के बाद में सेक्रेटरी के द्वारा चुनाव परिणाम की घोषणा ठीक छह बजे की गई थी।

इस चुनाव में मुझे उप-प्रधान पद पर चुन लिया गया था। सभी ने मुझे चुनाव में विजयी होने की मुबारकबाद दी थी। मुझे चुनाव जीतने की बहुत बड़ी खुशी भी थी क्योंकि देश आजाद होने के बाद में गांव में यह पहली बार किसी दलित का उप-प्रधान के पद पर चुना जाना था। यह मेरे और मेरे परिवार के लिए छोटी सी खुशी भी प्रजातन्त्र की देन थी परंतु उस दिन उप-प्रधान के चुनाव में सूझ-बूझ और मस्तिष्क से काम नहीं लिया गया होता तो वह चुनाव रद्द भी हो सकता था। एक क्षण में चुनाव की खुशी गम में बदल सकती थी मगर हमने एक वोट विरोधी पार्टी

के पक्ष में डालकर उनके चुनाव रद्द करवाने के मंसूबे पर पानी फेर दिया था। उस पंचायत ने अनेक मुश्किलों के बावजूद पूरे पांच साल बड़ी शान से पूरे किये थे। इस तरह मैंने बड़े सुचारु ढंग से पूरे पांच साल तक प्रधान श्री केशरी सिंह के साथ उप-प्रधान का कार्य किया था।

26

जब मेरा प्रवेश अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में हुआ तब मैंने तर्कशास्त्र, भूगोल, अंग्रेजी और उर्दू के साथ हिंदी को भी एक विषय के रूप में पढ़ने के लिए चुना था। उन दिनों मुझे हिंदी ही आती थी और मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ाई अंग्रेजी माध्यम से होती थी। इस कारण उन दिनों लगभग प्रतिदिन हिंदी पढ़ने के लिए हिंदी विभाग में जाना होता था। इस तरह मेरी हिंदी विभाग के शिक्षकों से धीरे-धीरे जान-पहचान बढ़ने लगी थी।

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से एम.ए. हिंदी में करने तक मुझे हिंदी विभाग के लगभग सभी शिक्षकों ने पढ़ाया था। आज सभी प्रोफेसर हैं। उनमें प्रो. नजीर मुहम्मद, प्रो. रवींद्र भ्रमर, प्रो. कुंवरपाल सिंह, प्रो. के.एम.एम. मिश्रा, प्रो. बुद्धसेन निहार, प्रो. सैयद जफर रजा अली जैदी उर्फ शैलेश जैदी, प्रो. एस.के. शांडिल्य, प्रो. आरिफ नजीर, प्रो. अब्दुल अलीम, प्रो. भरतसिंह, और उर्दू विभाग के प्रो. शहरयार साहब, समाजशास्त्र विभाग की प्रो. शादबानों अहमद अंग्रेजी विभाग के रजा साहब, भूगोल विभाग की प्रो. विजयलक्ष्मी सिंह और कुरैशी साहब ने भी मुझे पढ़ाया है।

मेरे साथ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में शिक्षकों और छात्रों का व्यवहार बहुत मधुर रहा है। दलित छात्रों के लिए सम्मान से पढ़ने के लिए अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी से अच्छी जगह शायद पूरे हिंदुस्तान में और कहीं नहीं है। वहां पर सभी छात्र और शिक्षक दलित छात्रों के साथ खान-पान, उठना-बैठना, बोल-चाल, आदर-व्यवहार में कोई भेदभाव नहीं करते हैं। वहां पर सभी हिन्दू-मुस्लिम छात्र एक दूसरे से नाम लेकर सलाम करते हैं।

इस देश में जितना अपमान उच्च जातियों के सवर्ण लोगों ने दलितों का किया गया है उसका ब्यौरा सिलसिलेवार ढंग से लिखा जाए। तब इस "अपमान वेद" को लिखने के लिए सभी समुद्रों की स्याही बनाई जाय और पूरी जमीन को कागज बना

कर उस पर लिखा जाए। दलितों के जख्म और अपमान इतने अनन्य अंतहीन और गहरे हैं कि उसके लिए सभी समुद्रों की स्याही और इस पूरी पृथ्वी का कागज भी छोटा पड़ जाएगा।

प्रो. के.पी. सिंह जी जैसे शिक्षकों और इनसानों की वजह से दलितों के अपमानों के नासूरों और उन गहरे घावों पर कुछ मरहम अवश्य लग जाता है।

मुझे प्रो. के.पी. सिंह को अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में अपना गुरु मानने में कोई गुरेज नहीं है वह इसलिए कि उनमें मानवता थी। वे हिन्दू-मुस्लिमों के लिए नहीं बल्कि इस देश के समाज और मानवता के लिए कार्य करते थे। उनके गुणों ने मुझे बहुत प्रभावित किया था। मुस्लिम यूनिवर्सिटी में, मैं सर्वप्रथम उन्हीं के संपर्क आया था। आज भले वह हमारे साथ इस दुनिया में नहीं हैं उनकी चंद यादें, उनके सुझाव अभी भी हमारा कदम-कदम पर मार्गदर्शन करते रहते हैं वे सही मायने में एक सच्चे कम्युनिस्ट थे। मैंने अपने जीवन काल में उनके व्यवहार में कभी सर्दी, गर्मी, एवं बरसात में से किसी भी मौसम के मौसमी बदलाव का असर नहीं देखा था। वे हमेशा अपनी शर्तों पर जी कर देश और समाज की सेवा किया करते थे।

प्रो. के.पी. सिंह ने कभी अपनी कक्षा बिना पढ़ाए हुए छोड़ दी हो, ऐसा दिन मेरे जीवन में कभी नहीं आया। सभी लड़के दूसरी कक्षाओं में चाहे जो करते रहे हो लेकिन उनकी कक्षा में सब बहुत शांत रहते थे। उनके साथ सभी लड़के बड़ी शालीनता ने पेश आते थे। वे वक्त के बड़े पाबन्द और उसूलों के बड़े पक्के थे। उनके शरीर की त्वचा का रंग कृष्ण रंग का सांवला सलोना अवश्य था लेकिन उनका मन चंद्रमा की धवल चांदनी की तरह निर्मल, उज्ज्वल और पवित्र था। वे जाति के ठाकुर थे लेकिन जाति की गरमी की खुजली ने उन्हें कभी छुआ तक नहीं था।

प्रो. कुंवरपाल सिंह अकसर एक घटना सुनाया करते थे। यह मुगलकाल की घटना है। एक जाट अपना धर्म बदलकर हिन्दू से मुसलमान बन गया। उन दिनों एक मौलवी साहब नमाज पढ़ना सिखाने के साथ-साथ दीन धर्म की बातें भी बताया करते थे। मौलवी साहब कुछ नये मुसलमानों को लेकर दूसरी मस्जिद में लोगों से मिलवाने के लिए जा रहे थे। रास्ते में एक हनुमान जी का मंदिर पड़ा। जाट मुसलमान कुछ पीछे चल रहा था। उसने सबसे पहले आगे-पीछे देखा, कोई देख तो नहीं रहा है। उसके बाद उसने पीछे से थोड़ा झुककर और हाथ जोड़कर हनुमान जी को प्रणाम कर लिया। मौलवी साहब उसकी आदत को बखूबी जानते थे। जब उसने हाथ जोड़े तब मौलवी साहब ने पीछे मुड़कर उससे कहा? अरे! यह क्या कर रहे हो।

तुम अब मुसलमान हो गए हो। तुम्हें मालूम है मुसलमान द्वारा किसी बुत की पूजा करना इस्लाम में हराम है। तब उस जाट मुसलमान ने मौलवी साहब से कहा! मौलवी साहब आप जो कह रहे हैं वह अपनी जगह सब ठीक है लेकिन दुश्मनी इनसे भी करना ठीक नहीं है।

मैंने एक दिन प्रो. कुंवरपाल सिंह जी से उनके कक्ष में अकेले में कहा था। सर, आपको मालूम है कि मैं अनुसूचित जाति का हूं। उन्होंने मुझसे कहा था नहीं! मुझे नहीं मालूम है और तुमने जो कहा! वह भी नहीं सुना है। तुम अनुसूचित जाति के हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, पारसी हो, सिक्ख हो, इससे मुझे क्या फर्क पड़ता है। मेरे लिए इतना काफी है तुम एक अच्छे, सुशील और होनहार छात्र हो। मैं कुम्हार के अवा में दिखावे का पका हुआ नहीं बल्कि पक्का कम्युनिस्ट हूं मुझे हिन्दू-मुस्लिम धर्म में कोई रुचि नहीं है। किसी धर्म के भेदभाव को भी नहीं मानता हूं बल्कि इंसानियत को मानता हूं और उस पर अमल भी करता हूं। तुम देखते हो मेरे हिंदुओं से अधिक मुसलमान दोस्त हैं। हम समाज की सेवा करते हैं हम देश के सच्चे सिपाही हैं और जहां तक हमारा बस चलेगा वहां तक जाति और धर्म से ऊपर उठकर मानवता के लिए सच्चे मनोयोग से कार्य करते रहेंगे!

27

यह बात उन दिनों की है जब मैं अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ा करता था। उन दिनों अलीगढ़ किसी दंगे-फसाद के चलते बंद हो जाया करता था। उस बंद के दौरान लोगों का जीना मुश्किल हो जाया करता था। जाड़े के दिनों में बंद होने का इतना अधिक असर नहीं होता है लेकिन गर्मी के दिनों में इस बंद का असर इतना भयंकर होता था कि लोग अपनों के लिए पागल तक हो जाया करते थे। उनको सरकार की पुलिस के लोग गोली मार दिया करते थे। उन दिनों बिजली न होने पर लोगों की क्या हालत होती थी। इस बात को आज सोचकर ही दिल दहल जाता था। अपने बच्चों की बीमारी में कभी-कभी दवा के अभाव में कितनों ने अपने प्राण गंवाए होंगे। इसका हिसाब किसी सरकार के गजट में नहीं मिलेंगे। इन आंकड़ों को देखना है तो हिन्दू-मुसलमान और दलित लोगों के दिलों और उन माताओं से पूछना होगा जिन्होंने उस कर्फ्यू में अपने बेटे, अपने लाल, और अपने छौने खोये हैं।

शहर के बंद होने पर विचार किया जाए। तब एक बात निकलकर सामने आती है। वह यह कि शहर खुला हुआ रहता था लेकिन लोग अपने घरों से जिलाधीश के आदेश का पालन करने तथा किसी अनहोनी घटना से बचाने के लिए भय और दहशत के कारण घर से नहीं निकला करते थे। कहने के लिए सरकार की ओर से जरूरी सामानों की आपूर्ति भी औने-पौने दामों में की जाती थी परंतु उनके लिए जिनके पास पैसे हुआ करते थे। जो गरीब थे, दिहाड़ी मजदूर थे उनका कौन रखवाला होता था। उनके लिए सरकार की कोई मदद नहीं होती थी। वे बेचारे मजबूरन रिक्शा और ढकेल लेकर काम करने के लिए अपने नौ निहालों की भूख से बेहाल होकर मरने के लिए सड़कों पर निकल आते थे। वही लोग बेचारे भीड़ में पेट भरने की खातिर मारे जाते थे। इससे बचने के लिए सरकार के पास कोई ऐसी योजना नहीं है जिससे भारत की भूखी मानवता को भूख से बेहाल दंगे के दौरान अपने प्राण न गवाने पड़ें। इसके लिए सरकार के पास भारत के हर शहर के रिक्शे चालक, ढकेल चालक, दिहाड़ी मजदूरों की तैयार सूची हो जिससे दंगे-फसाद के दौरान उन्हें खाने के लिए राशन-पानी मुहैया करवाया जा सके।

इस स्थिति पर काबू पाने के लिए उस दौरान सड़कों पर मिलिट्री की बड़ी-बड़ी तोपगाड़ियों का लाबो लश्कर के साथ सड़क पर मीलों लंबी मार्च निकाली जाती थी। जैसे मिलिट्री के जवान और तोपगाड़ियां आज आम जनता के स्वागत में उनको गार्ड ऑफ ऑनर पेश कर रहे हों। सड़क और हसरत मोहनी हॉस्टल के कमरे के बीच की दूरी मात्र पांच मीटर की रही होगी लेकिन हम बिना आवाज किए चुपचाप मार्च को देखते रहते थे। इसके सिवाय हम और क्या कर सकते थे। हम चाहे जितने बहादुर बनते रहे हो लेकिन हमारे दिलों में भी डर समाया हुआ रहता था। समाचार पत्रों की अफवाह और गलत आंकड़ों की खबर की बातों से यूनिवर्सिटी के छात्र कहीं भड़क जाते। तब वे छात्रावासों में रह रहे हिन्दू छात्रों को गाजर-मूली की तरह कच्चा चबा सकते थे।

यह हमारे मन का वहम् मात्र था। यूनिवर्सिटी के छात्रावासों में स्थिति इससे कहीं बेहतर थी। खाना भले न मिला अथवा कम मिला हो लेकिन किसी भी मुस्लिम छात्र ने उस दंगे के दौरान हमसे उंगली तक नहीं छुआई थी। उन दिनों दिन-रात प्रोक्टोरियल मॉनिटरिंग दल के सदस्य नियमित दौरे करते रहते थे। इस दल में कुलपति, प्रोवोस्ट, वार्डन और प्रोक्टर और विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफेसर आदि

होते थे। दंगे के दौरान भी छात्रावासों में बड़े सद्भाव शांति का माहौल रहता था। जबकि शहर में हाहाकार मचा हुआ रहता था।

मुझे याद है हम लोग हशरत मोहनी हॉस्टल के कमरों में दंगे के दौरान डरे और सहमे भूखे-प्यासे बैठे होते थे। सन् नब्बे के दंगे के दौरान जिलाधीश के आदेश से सब कुछ बंद करवा दिया गया था। मैस में राशन भी नहीं था। कई दिन हम भूखे-प्यासे ही रहे थे। यूनिवर्सिटी की कैंटीन में तीन छोटी-छोटी पूरी और एक कटोरी दाल के सहारे तीन दिन काटे थे। उन दिनों डर के मारे भूख भी नहीं लगा करती थी। चारों तरफ हा-हाकार मचा हुआ था। अखबारों की झूठी खबरों से शहर क्या पूरे राज्य और देश में तहलका मचा दिया था। सैकड़ों मरीजों और छात्रों का कत्लेआम की खबरों से दिल में दहशत व्याप्त हो गई थी।

जब उस दंगे-फसाद पर सरकार ने काबू कर लिया था। मैं तब लगभग पंद्रह दिनों के बाद में अपने घर लौटकर आया था। तब तक मेरे गांव में मेरे माता-पिता का रो-रोकर बुरा हाल हो गया था। उन दिनों उनके पास मिलने-जुलने और आने-जाने वालों का तांता लगा रहता था। गांव और पड़ौस के गांवों के सब लोग उन्हें इस दुःख की घड़ी में धीर बंधाने के लिए आते-जाते रहते थे। मेरे माता-पिता दोनों ने अपना खाना-पीना छोड़ दिया था। वह लोगों के बहुत समझाने-बुझाने और बहुत कहने पर जीने भर के लिए एक-दो निवाले के टूक खा लिया करते थे। उन्होंने मुझे बताया था। उन्हें भूख-प्यास ही नहीं लगती थी।

मेरे पिता को हर एक दिन गुजरने के बाद दूसरे दिन आने वाले नये अखबार से किसी नई चमत्कारी सूचना की आशा रहती थी। मेरे माता-पिता को उन दिनों दिन-रात न नींद आती थी और न उन्हें चैन पड़ता था। वे दोनों पूरा-पूरा दिन और पूरी-पूरी रात बैठे-बैठे ही गुजार दिया करते थे। मैं उन दिनों जब तक वापस लौटकर गांव नहीं आ गया था तब तक दंगे की खबर गांव के सभी लोगों के सामने जोर-जोर से बुलंद आवाज में दिन में कई-कई बार पढ़ी जाती थीं क्योंकि अखबार एक-दो होते थे और उसे पढ़ने और सुनने वालों की संख्या दस-बीस और कभी-कभी पचास भी हुआ करती थी।

जब मैं मुस्लिम यूनिवर्सिटी से दंगे के बाद लौटकर वापस अपने गांव वापस आ गया था तब जाकर हमारे घर में रोटी बनी थी। उन दिनों मेरी चिन्ता में घर में किसी को खाना अच्छा ही नहीं लगता था। पिताजी बिना खाना खाये हुए दुबले होते

चले जा रहे थे। उन्हें इस बात का गम खाये जा रहा था। घर से जवान लड़का उठ गया और उसकी कोई खोज खबर भी नहीं लग पा रही है। उनको इस बात का भी मलाल था कि वे अपने बेटे को अंतिम बार देख भी नहीं पाये। उन्हें दूसरा सबसे बड़ा गम यह था कि अब उसकी जवान पत्नी और बाल-बच्चों का क्या होगा? उनकी नैया कैसे पार लगेगी?

मैं उस दिन लगभग पंद्रह दिनों के बाद अपने घर लौट कर आ पाया था। मेरे घर लौटकर आने पर ही सब लोगों ने उस दिन हाथ से बनाई गई पानी की नमकीन रोटियां बड़े स्वाद और मन से लाल मिर्च की चटनी के साथ खाई थीं। आज बड़े दिनों के बाद मैंने मां के हाथों से बनाया हुआ स्वादिष्ट भोजन किया था। मुझे उन रोटियों में सोंधी-सोंधी महक आ रही थी। यही रोटियां मेरे और मेरे समाज का सदियों भाग्य रही हैं। अब तो पूड़ियां भी बेस्वाद लगती हैं। उस रात मुझे नींद नहीं आ पाई थी। उस रात मुझे आकाश सितारों से भरा हुआ जगमग-जगमग करता हुआ नजर आ रहा था। मैं पूरी रात न जाने किस मदहोशी में तारे गिनता रहा था। ब्रह्ममुहूर्त में मेरी तंद्रा को मोरों की केंकों की ध्वनियां ने भंग किया था। उस समय मोरों की केंकों की ध्वनियां पूरे परिवेश में गुंजार रही थी। कोयल कहीं झुरमुट में बैठी अपने सुरीले कंठ से मधुर रागिनी छेड़ चुकी थी। उस समय एक नई सुनहरी सुहावनी सुबह का आगाज हो रहा था।

●●●

डॉ. उमेश कुमार सिंह

शिक्षा : एम.ए. अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी (A.M.U.) अलीगढ़, एम.फिल. एवं पी-एच.डी. जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी (J.N.U.) नई दिल्ली।

◆महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा में अध्यापन एवं भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान समरहिल, शिमला में सह-अध्येता।

◆विजिटिंग प्रोफेसर हिंदी चेयर के पद पर अजरबैजान यूनिवर्सिटी ऑफ लैंग्युएज़िज, बाकू, अज़रबैजान में हिंदी अध्यापन कार्य।

◆आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयार्क में वर्ष 2007 में भारत सरकार के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के रूप में सह-भागिता।

प्रकाशित कृतियां : ◆गुरु नानक देव और संत रविदास की कविता : एक तुलनात्मक अध्ययन ◆वृंद नीति : समाज और संस्कृति ◆पहली रात का अंत (कहानी-संग्रह) ◆आठवां विश्व हिंदी सम्मेलन (संपादित पुस्तक) ◆समुद्र मंथन ◆सागर शुक्ति ◆सागर बोध ◆लहरें (संपादित पुस्तकें)।

संप्रति : असि. प्रोफेसर,
साहित्य विभाग (हिंदी), साहित्य विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, वर्धा-442005 (महाराष्ट्र) भारत

संचलभाष : 0-9422411194, 0-9423307797

ई-मेल : umesh_inu@rediffmail.com